गदर के फूल

अमृतलाल नागर

गदर के फूल

[अवध क्षेत्र की १८५७—५८ ई० की जन-स्मृतियां]

—एक डायरी—

श्रीअमृतलाल नागर

प्रकाशन शाखा
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रकाशक :

प्रकाशन शाखा,
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

मूल्य ४.५०

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

मुद्रक :

प्रेम प्रिंटिंग प्रेस,
गोलागंज, लखनऊ

सत्तावनी क्रान्ति के

अठारह वर्षीय तरुण सेनानी

अभिनव अभिमन्यु श्री बलभद्र सिंह

(चहलारी के ठाकुर)

और

उनके साथ स्वदेश की इंच-इंच भूमि के लिये अन्तिम बूंद तक रक्तदान करने वाले

नवाबगंज बाराबंकी के युद्ध क्षेत्र के

अभूतपूर्व रणबाँकुरे

छह सौ हिन्दू-मुसलमान पुरखों

को

प्रतीक स्वरूप

यह श्राद्ध आयोजन

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

सविनय अर्पित—

पितृपक्ष ७, शाके १८७९
स्वतन्त्रता संग्राम शताब्दी, १९५७ ई०

अमृतलाल नागर

दो शब्द

सत्तावनी क्रान्ति सम्बन्धी अपने उपन्यास के लिये ऐतिहासिक सामग्री एकत्र करते हुए मुझे लगा कि अपने उपन्यास के क्षेत्र—अवध—में घूम-घूम कर गदर सम्बन्धी स्मृतियाँ और किंवदंतियां आदि एकत्र किये बिना मेरी गढ़ी हुई कहानी में झकोले रह जायेंगे। यों भी गदर की किंवदंतियों या बातों को सुनानेवाले व्यक्ति अब छीजते जा रहे हैं। सत्तावनी क्रांति के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण से लिखे गये इतिहास के अभाव में जनश्रुतियों के सहारे ही इतिहास की गैल पहचानी जा सकती है।

हमारे देश में स्वजनों की चिता के फूल चुने जाते हैं। सौ वर्ष बाद ही सही मैं भी गदर के फूल चुनने की निष्ठा लेकर अवध की यात्रा का आयोजन करने लगा।

प्रसंगवश एक दिन उत्तर प्रदेश के सूचना-संचालक भाई भगवतीशरण सिंह से यह जिक्र छिड़ा। उनके और उनके विभाग के सहयोग से मेरा काम बहुत सरल हो गया। भगवती भाई मेरे मित्र हैं, उन्हें मेरे औपचारिक कृतज्ञता-ज्ञापन की आवश्यकता नहीं।

पुस्तक २१ जुलाई से लिखना आरम्भ कर १६ सितंबर को पूरी की। चि० ज्ञानभद्र दीक्षित ने इसकी पांडुलिपि लिखी। मैं उन सब व्यक्तियों और पुस्तकों के प्रति आभारी हूँ जिनके सहयोग से यह कार्य कर सका।

साहबज़ादा कौकब कदर से प्राप्त बेगम हज़रतमहल के एक बहुत ही धुंधले और छोटे फ़ोटोग्राफ़ से मेरे छोटे भाई चि० मदन ने उनका पोर्ट्रेट चित्र बनाया है।

अमृतलाल नागर

चौक, लखनऊ।

ग़दर के फूल

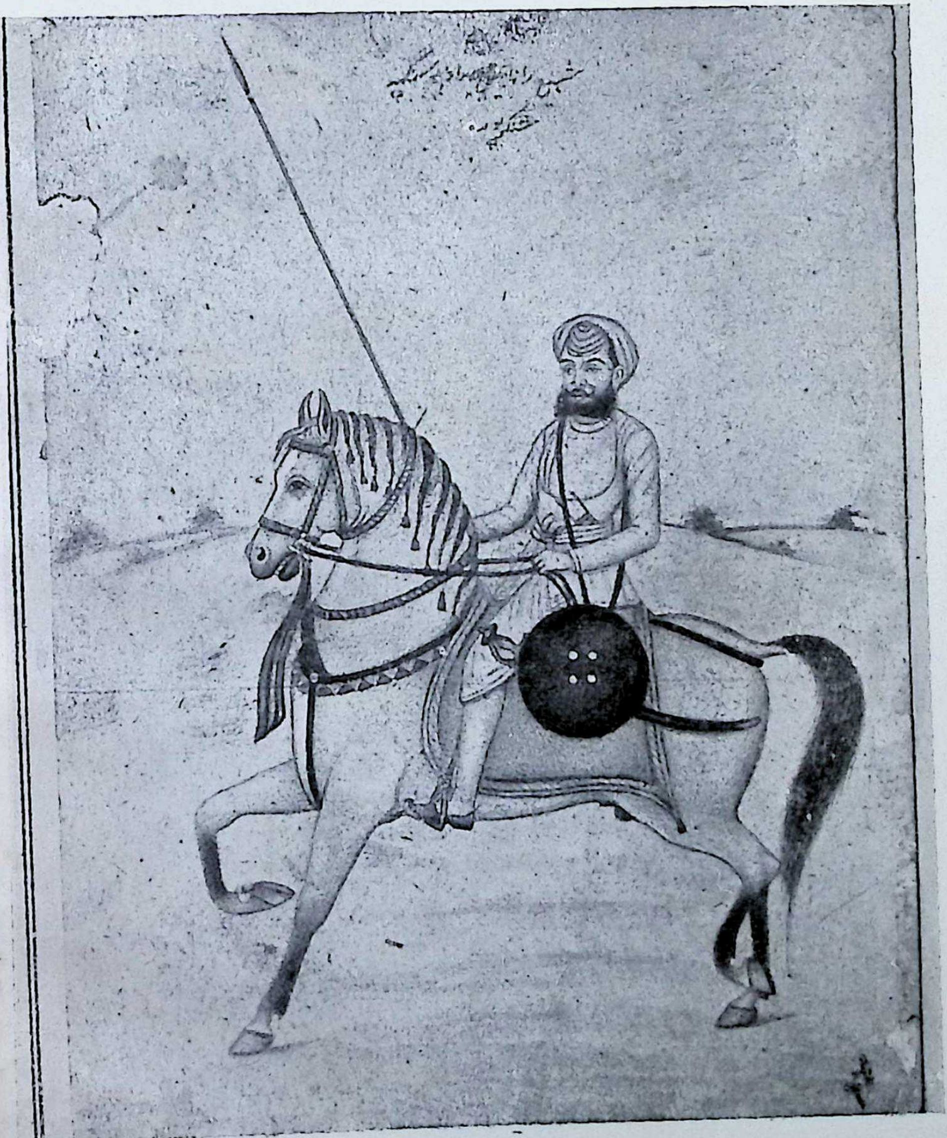

राणा वेणीमाधव बख्श

डा० डिल्ली रमण रेड्डी
कल्याणी रेड्डी स्मारक
पुस्तकालय

बाराबंकी

४ जून, मंगलवार । मेरी यात्रा का पहला दिन ।

नवाबगंज बाराबंकी की लड़ाई सत्तावनी क्रान्ति के संग्राम में मार्के की लड़ाई हुई थी । सर होपग्राण्ट के संस्मरण और सर विलियम रसल की डायरी में नवाबगंज के युद्ध का वर्णन तथा युद्ध के नायक चहलारी नरेश बलभद्र सिंह रैकवार के अद्भुत शौर्य का वृत्तान्त पढ़ कर ही यहाँ आया हूँ । चहलारी प्रायः गदर के बाद से ही बहराइच ज़िले का एक अंग बन गया है, इससे पहले वह सीतापुर ज़िले से जुड़ा हुआ था; बाराबंकी क्षेत्र से उसका कोई सम्बन्ध न था । सुप्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार की ग़दर सम्बन्धी सद्यःप्रकाशित पुस्तक में यह पढ़ने पर कि सत्तावन की क्रान्ति असंगठित और अनियोजित थी, मुझे लगा कि जहाँ तक अवध का सम्बन्ध है मजुमदार महाशय का यह वक्तव्य कदापि लागू नहीं हो सकता । उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास लिखने के हेतु नियुक्त शिक्षा विभाग के अण्डर सेक्रेटरी, मेरे विद्वान् मित्र डाक्टर अतहर अब्बास रिज़वी ने मुझे ऐसे कई पत्र दिखलाये थे जो राजा वेणीमाधव बख्श और मौलवी अहमदुल्ला शाह ने अवध के समर संगठन के सम्बन्ध में एक दूसरे को लिखे थे । इसके अतिरिक्त मेरे सामने अवध के कम से कम तीन ऐसे नायकों का विवरण था जिन पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि वे मात्र अपने या अपनी रियासत के बचाव के लिये लड़े थे । शंकरपुर ज़िला रायबरेली के राणा वेणीमाधव बख्श, गोंडा के राजा देवी बख्श सिंह और चहलारी के ठाकुर बलभद्र सिंह, ये तीनों व्यक्ति निश्चितरूप से अवध की स्वतंत्रता के लिये लड़े थे और इन तीनों में से एक ने भी अंग्रेज़ों के सामने न तो हथियार ही डाले और न सिर झुकाया । अट्ठारह वर्ष के नौजवान बलभद्र सिंह ने तो समर में अनोखी वीरता दिखलाते हुये अवध की स्वतंत्रता के लिये अपने प्राण निछावर किये थे ।

मैं उसी युद्ध के सम्बन्ध में किंवदंतियां और लोक साहित्य के प्रमाण बटोरने आया

हूँ। मन में एक धुकपुकी भी है कि यदि जन साधारण से ऐसी सामग्री प्राप्त करने के सम्बन्ध में मेरी धारणा असत्य निकली तो ?---ऐसी आशा तो नहीं। अगर लखनऊ में मुझे कुछ ऐसे लोग मिल सकते हैं; तो बाहर भी उनका अकाल नहीं होना चाहिये। प्रश्न यह भी है कि अगर बाराबंकी में मुझे 'कुछ नहीं' के बराबर ही सामग्री मिली तो क्या आगे की यात्रा करना उचित होगा ? मैं अपना समय, पैसा और सरकारी पैट्रौल खर्च करने का अधिकार तभी तक रखता हूँ जब तक कि उसका सदुपयोग भली भाँति करूं और इस भ्रमण का महत्व सिद्ध कर दिखाऊँ। इस तरह की बातें उठने पर मेरे मन में बार-बार यह विश्वास भी जागता है कि मेरा तीर औचक अँधेरे में नहीं छूट रहा, सफलता मिलनी ही चाहिये। यदि बाराबंकी में मुझे अधिक ऐतिहासिक सामग्री न प्राप्त हुई तब भी कम से कम दो अन्य ज़िले घूमे परखे बिना मुझे हताश नहीं होना चाहिये। अस्तु।

बहुत से लोग शायद यह न जानते हों कि जो स्थान इस समय बाराबंकी के नाम से प्रसिद्ध है, वह दर अस्ल नवाबगंज कहलाता है। बंकी और बारा ग्राम दोनों ही वहाँ से दूर हैं। ज़िला सूचनाधिकारी श्री लक्ष्मीसहाय गुप्त उत्साही नवयुवक लगे। उन्होंने अपने ज़िले का सत्तावनी क्रान्ति से सम्बन्धित इतिहास सरकारी सचना के लिये भलीभाँति एकत्र किया है। उन्होंने बतलाया कि यहाँ १० मई से पहले जब उक्त तिथि को मनाने की बात आई, तो स्थानीय अधिकारियों के एक डिनर में यह शंका उठाई गई कि नवाबगंज के युद्ध में मारे जाने वाले चहलारी नरेश बलभद्र सिंह वास्तव में देशभक्त वीर थे या नहीं। कुछ लोगों का ख्याल था कि वह ग़दर के नायक नहीं हो सकते क्योंकि अंग्रेज़ों ने नवाबगंज में उनकी क़ब्र बनवाई थी, जो अब तक मौजूद है। डिनर में एक किंवदंती का हवाला भी दिया गया जिसके अनुसार बलभद्र सिंह बारात लेकर आ रहे थे। उस ज़माने के क्षत्रिय राजे रजवाड़ों की बारात के अनुसार ही उनके साथ भी तोपें बन्दूकें और लाव लश्कर था। अंग्रेज़ों ने समझा कि दुश्मन लड़ने आ रहा है; धावा कर दिया। चहलारी नरेश और उनकी फ़ौज मारी गई। बाद में अंग्रेज़ों को पता चला कि बलभद्र सिंह उनका दोस्त था तो उन्होंने बलभद्र सिंह की क़ब्र बनवा दी। डिनर में श्री अहमद क़िदवाई उर्फ़ अच्छन साहब भी मौजूद थे। उन्होंने अपने मामा से चहलारी वाले की वीरता के अनेक क़िस्से सुन रक्खे थे। अच्छन साहब ने उक्त किंवदंती को असत्य माना और प्रमाण के रूप में अपने मामू से चहलारी नरेश सम्बन्धी प्राचीन आल्हा भी प्राप्त करने का निश्चय किया।

श्री गुप्त की बातें सुनकर मेरे मन में सर होप ग्राण्ट द्वारा 'सिपॉय वार' नामक पुस्तक में लिखित नवाबगंज युद्ध के हमारे सेनानियों और सैनिकों के अद्‌भुत् शौर्य का विवरण घूमने लगा। सर होप उस युद्ध के शत्रु पक्षीय महा सेनानी थे। उन्होंने भारत में अनेक स्थलों पर लड़ाइयां लड़ीं, हमारे बड़े-बड़े रणबाँकुरों से लोहा लिया था; परन्तु नवाबगंज के युद्ध में उन्हें जैसे अभूतपूर्व लड़वैयों से सामना करना पड़ा वैसे पहले नहीं देखे थे। और उनमें भी एक तो—एक ही था।

'लण्डन टाइम्स' के रिपोर्टर और उक्त युद्ध के एक शत्रु पक्षीय सेनानी सर विलियम रसल ने उस अनोखे 'एक' का नाम भी लिया है—बलभद्र सिंह चहलारी।

सोच लिया, अच्छन साहब से वह आल्हा प्राप्त किया जायगा।

दरियाबाद

चूँकि दरियाबाद से ही इस ज़िले में क्रांति आरम्भ हुई थी इसलिये ज़िला सूचना अधिकारी के साथ मैंने पहले दिन दरियाबाद चलने का ही प्रोग्राम बनाया। दरियाबाद कांग्रेस के प्रधान श्री जगन्नाथ प्रसाद निगम उस दिन नगर में ही थे। श्री गुप्त उन्हें ले आये; वे हमारे साथ हो लिये। प्रेसट्रस्ट आफ़ इन्डिया के स्थानीय प्रतिनिधि श्री रामस्वरूप वाजपेई वकील और 'हिन्दुस्तान समाचार' के प्रतिनिधि श्री इन्दुप्रकाश जी भी हमारे साथ चले। इन स्थानीय सज्जनों का साथ मेरे लिये लाभप्रद रहा। श्री निगम ने अपने क़स्बे के सम्बन्ध में गज़ेटियर तथा स्थानीय किंवदंतियों से अच्छी सामग्री संग्रह की थी। बात-बात में वे बड़े उत्साह के साथ अपनी जेब से छोटी सी डायरी निकालकर हवाले पेश करते और फिर चट से उसे जेब में रख लेते थे। जगह छोटी हो या बड़ी, वहाँ का निवासी अपने स्थान को जब बड़े प्यार से महत्व देना आरम्भ करता है तब मुझे बहुत अच्छा लगता है। जिसने अपनी धरती को प्यार न किया वह मनुष्य कितना ही बड़ा क्यों न हो मेरी नज़र में बहुत छोटा होता है क्योंकि उसका व्यक्तित्व आतम उपेक्षा अथवा आतम प्रवंचना की विकृति को आधार बना कर पनपता है। हाँ, यही धरती का प्रेम यदि अपनी ही सीमा में सिमट जाय, दूसरे के ऐसे ही भाव को मनुष्य सराह न सके तो उसे भी मैं घातक मानता हूँ।

दरियाबाद बाराबंकी से लगभग २८ मील दूर लखनऊ फ़ैज़ाबाद मार्ग पर आबाद है। लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व मुहम्मद इब्राहीम शर्क़ी के एक सूबेदार दरिया ख़ाँ द्वारा यह क़स्बा बसाया गया था। गदर में ध्वस्त होने तक ज़िले का

सदर मुक़ाम यही था । शानदार क़स्बा था, चौंतीस फाटक थे, मोहल्लों के नाम उसके पुराने वैभव का पता बतलाते हैं—मुहल्ला मुर्हरिरान यानी सरकारी क्लर्कों का मुहल्ला, मुहल्ला मखदूम ज़ादान यानी पूज्य और पवित्र लोगों का मुहल्ला, मुहल्ला चौधरियान, मुहल्ला मुग़लान इत्यादि । इस क्षेत्र के ताल्लुक़ेदारों में हड़हा के सूर्यवंशी तथा दरियाबाद खास के कायस्थ बली परिवार के लोग प्रमुख हैं ।

यह सुनते सुनाते चले जा रहे थे । मार्ग में राम सनेही घाट पड़ता है । बाबा राम सनेही के सम्बन्ध में मुझे यह बतलाया गया कि वे बड़े ही पहुँचे हुये व्यक्ति थे । गदर के ज़माने में बाबा ने फ़ैज़ाबाद से लखनऊ की ओर आती हुई अंग्रेज़ी सेनाओं से अपने शिष्यों सहित मोर्चा लिया था और जूझ गये थे । बाबा राम सनेही का चमत्कार बड़ा प्रसिद्ध है । कहा जाता है कि ग़दर के काफ़ी बाद अंग्रेज़ों ने उनके समाधि-स्थल के पास से सड़क निकालने का आयोजन किया । बाबा की समाधि सड़क में ही नप जाती थी अतः उसे खोद डालने की आज्ञा हुई । मज़दूर सहम गये, उन्होंने कहा कि बाबा की समाधि हमारा अत्यंत पूज्य स्थान है, हम इस पर फावड़ा नहीं चला सकते । गोरे हाकिम ने इस पर अविश्वास प्रकट किया, और समाधि को खोद डालने का पुनः आदेश दिया । मजदूर बोले कि सरकार, हमको तो डर लगता है, पहला फावड़ा आप चलायें ।

कहते हैं कि अविश्वासी गोरे का बड़ा अनिष्ट हुआ और उसके बाद ही यह आदेश निकला कि सड़क भले ही टेढ़ी हो जाय मगर समाधि सुरक्षित रहेगी ।

गदर से सम्बन्धित बाबा राम सनेही के विषय में जानकारी बटोरने की इच्छा हुई । हम लोग राम सनेही घाट पर उतरे । लखनऊ फ़ैज़ाबाद मार्ग के दाहिनी ओर, बाराबंकी से लगभग छब्बीस मील दूर कल्याणी नदी के तट पर राम सनेही घाट स्थित है । स्थान बड़ा ही रम्य है । कल्याणी के दोनों ओर पलाश वन बड़ा ही सुहावना मालूम पड़ रहा था । बाबा राम सनेही की समाधि कल्याणी की सतह से काफ़ी ऊँचे एक टीले पर है । पास ही राम सनेही घाट का डाक बँगला भी बना है । बाग बगीचा भी है । जगह का हरा-भरा पन और एकान्त मुझे कुछ दिनों के लिये वहीं टिक जाने को रह-रह कर बुलावा देने लगा । खैर यह तो फुरसत की बात है ।

बाबा राम सनेही की समाधि देखी । समाधिस्थल देखते ही मुझे शक हुआ । ऊँचे चबूतरे पर उल्टी नाँद का स्तूप-सा बना हुआ था । आम तौर पर ऐसी समाधियों के साथ मैंने महात्माओं के जीवित समाधि लेने की बातें सुनी थीं । जो

जलाये जाते हैं उनकी समाधि पर स्तूपनुमा वस्तु नहीं होती। मैंने अपने बारावंकी के साथियों से यह शंका प्रकट की और कहा कि इसे देखकर बाबा के ग़दर में मारे जाने के प्रमाण तो नहीं मिलते। वे सभी प्रायः एक स्वर में वोले "नहीं साहब, मारे तो ये ग़दर में ही गये थे।"

हो सकता है; फिर भी आसपास से पता तो लगाना ही चाहिये, मैंने सोचा। बाग़ में एक बूढ़ा माली दिखलाई पड़ा, उससे पूछा : "बाबा का गदर मा गोरन ते लड़े रहे ?"

"नाहीं। उनका कोई मार नाहीं सकत रहै। आपै बिरमांड मा साँस चढ़ाय के समाधी लिहिन रहैं।" बूढ़े का उत्तर सुनकर वाजपेई जी, गुप्त जी और निगम जी तीनों ने ही उसे अपने प्रश्नों से घेर लिया। बूढ़ा बोला: "हम भाई युहु नाहीं बताय सकिति, बाबा के घरै के लोग हियाँ नगिचहै रहति हैं उनका मालुम होई।"

सड़क के उस पार, पास ही बाबा के वंशज रहते थे। हम वहाँ पहुँचे। ऊँचे टीले पर, जो किसी प्राचीन काल के बड़ी ईंटों वाले खंडहर का परिचायक था, बाबा रामसनेही का मकान बना हुआ था। सामने और बाईं ओर छप्पर पड़े थे। बच्चे खेल रहे थे, एक बूढ़ी माई बैठी कंडे पाथ रही थीं। हमने नीचे से ही गोहार लगाई। निगम जी ने बाबा के वर्तमान वंशज के संबंध में पूछा। पता लगा वे कहीं गये हैं। खैर, बूढ़ी माई से ही प्रश्न किया गया। उन्होने भी बाबा के ग़दर में या कभी किसी की सेना से लड़ने की बात को अस्वीकार किया; केवल समाधि खुदने वाली किंवदंती का ही समर्थन किया। मेरे पत्रकार मित्रों को काफ़ी निराशा हुई। उनमें से एक सज्जन तो बाबा को ग़दर का हीरो बनाकर उनका माहात्म्य अख़-बारों में छपवा भी चुके थे। उन्हें सबसे अधिक निराशा हुई। आगे चल कर बाज़ार शेमियर गंज में एक परिचित बड़े बज़ाज़ की दूकान पर मित्र मंडल मुझे ले गया। मुझ से कहा कि दूकान के बड़े मालिक डाक्टर साहब अवश्य ही इस घटना पर प्रकाश डाल सकेंगे, वे पुराने आदमी हैं, और इन जगहों के बारे में उनकी काफ़ी जानकारी है। सत्तावनी क्रान्ति में अनेक फ़क़ीरों ने बड़ा हिस्सा लिया था इसलिये बाबा राम सनेही का युद्ध करना तनिक भी अनहोनी वात नहीं थीं, फिर भी समाधि देखकर मुझे उनके ग़दर में मारे जाने पर शक अवश्य था। लेकिन मेरे बाराबंकी के मित्रों का छान बीन के लिये सदाग्रह करना भी स्वाभाविक ही था, उनके क्षेत्र का एक हीरो कम हुआ जा रहा था। शेमियर गंज के डाक्टर साहब ने भी बाबा के ग़दर में भाग लेने की कथा को ग़लत बतलाया।

अक्सर प्रसिद्ध पुरुषों के साथ में ग़लत कथायें भी जुड़ जाती हैं और चूँकि सड़क के निमित्त गोरों द्वारा बाबा की समाधि खुदवाने की बात उठी थी इसलिये गदर के मौसम में किसी ने बाबा को, जहाँ सूई न समाय वहाँ फावड़ा चला कर, गदर का हीरो बना दिया। चलो अच्छा ही हुआ, एक ग़लत फ़हमी साफ़ हुई।

दरियाबाद पहुँचे। खंडहरों का क़स्बा है। निगम जी हमें पहले क़िला दिखाने ले गये। पहुँचने पर सामने ऊँचे टीले पर एक बिल्डिंग बनी है। यह दरियाबाद का स्कूल है। भारत सेवक समाज का शिविर चल रहा था। बाहर कपड़े पर उसका संकेत पट टँगा था। ऊपर चढ़ते ही फ़र्श पर एक बड़े इँदारे के निशान दिखलाये गये थे। स्कूल की बिल्डिंग एक ओर बनी थी बीच में बहुत बड़ा मैदान था और उसके दूसरे सिरे पर भी कुछ कमरे बने हुये थे। मैदान क़िले के अन्दर ही था। राम जाने पुराने ज़माने में यहाँ क्या बना होगा, क्या न बना होगा। दक्षिण पश्चिम की ओर क़िले की चहार दीवारी के कुछ भाग अवश्य बचे हैं। वहाँ पहुँचने से पहले एक टूटी तोप के तीन हिस्से पड़े हुये देखे। क्रिकेट के गेंद जैसे गोले छोड़ने वाली छोटी तोप रही होगी।

हम लोग दीवार पर चढ़े। यह क़िले के पश्चिमी भाग की दीवार थी। नीचे नाला था जो कभी क़िले की खाई का काम करता होगा। उसके बाद दूर तक ऊँचा नीचा मैदान दिखलाई पड़ रहा था। कहा जाता है कि सौ वरस पहले यहाँ पर एक मुहल्ला आबाद था जो पूर्व पश्चिम के कोने पर कटरा रौशनलाल से लेकर क़िले के दक्षिण तक फैला हुआ था। पूर्व पश्चिम का कोना इस समय घने पेड़ों से आबाद है जिसमें महुआ के पेड़ अधिक हैं।

श्री निगम ने बतलाया कि अंग्रेजों ने क़िले पर आक्रमण करने के लिये पहले इस मुहल्ले को ध्वस्त किया, क्योंकि घरों की आड़ होने से क़िले पर तोपें नहीं चल पाती थीं। निगम जी ने अपनी डायरी खोल कर इतिहास बतलाना आरंभ किया। क़िले के छः बुर्ज़ थे छहों पर तोपें रहती थीं। ग़दर के ज़माने में हरप्रसाद चकलेदार यहाँ रहते थे जिन्होने रण क्षेत्र में वीर गति पाई। पूर्व दिशा में मुख्य फाटक था और उससे लगा हुआ ही दूसरा स्थान आज तक तोपखाने के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं यह क़िला बारहवीं सदी में मुहम्मद ग़ोरी के समय बना था और अकबर के काल में मिर्जा अब्दुर्रहमान यहाँ के हाकिम थे।

हम लोग तोपखाना भी देखने गये। तोपखाने वाले भाग में इस समय पन्द्रह बीस कच्चे घरों की आबादी है। वहाँ के एक निवासी श्री मोहनलाल नामक

पैंसठ-अड़सठ वर्ष के वृद्ध हमारे पथ प्रदर्शक बन गये; हमें इतिहास बताने लगे: "कौनौ जमाना मा भैया युहु सब बड़ा आलीसान बना होई। अब तौ यह बात है कि बहुत बारीक नजर ते एक-एक चीज देखै तौ समझ मा आवति है कि कइस आलीसान रहा होई। हम बहुतु गौरु किया है भइया। देखौ तुमका एक जगह देखाई कइस मुनौअरी काम बना है।"

मोहनलाल जी हमें सामने वाले घर के दरवाज़े पर ले गये। पास ही किसी पुराने चबूतरे की एक पट्टी-सी बची दिखलाई दे रही थी। उस पर चूने का पलस्तर था और उम्दा नक्क़ाशी की वेल बनी थी। उसके पास बैठते हुये वेल पर उँगलियाँ दौड़ा कर मोहनलाल बोले: "मुनौअरी काम है। अब को बनवाई!" मोहनलाल जी उदास हो गये। निगम जी ने उनसे पूछा:

"हियाँ तोप के गोला कहाँ ते निकलत हैं?"

"आओ, तुमका बताई।" कह कर मोहनलाल जी फिर अपने घुटनों पर हाथ टेक कर उठे। एक घर की दीवार के पास आकर बैठ गये: "हियाँ ते निकरत हैं गिर्राबी गोला।" यह कह कर उन्होने पास ही खड़े एक युवक से फावड़ा लाने को कहा। दीवाल के पास ही कोने से एक खूँटा गड़ा था उसे उखड़वाया फिर कोना खुदवाने लगे। उनका अन्दाज़ था कि ऊपरी सतह पर ही गोले गड़े हैं, परन्तु आस पास गड्ढा खोदने पर एक भी गोला दिखलाई न पड़ा। बोले: "ई लौंडे ससुर कउनौं चीज नाइं राखत।" यह कह कर उन्होंने और खोदने का आदेश दिया और साथ ही साथ यह भी कहने लगे कि अधिक गड्ढा खोदने से संभव है दीवार का यह कोना बैठ जाय। मैंने उन्हें मना किया। गिर्राबी गोले कोई ऐसी अजीब चीज़ नहीं थी जिन्हे देखने के लिये मैं किसी की दीवार खुदवाता। मेरे मना करने पर भी उन्होने फावड़े के एक दो हाथ चलवा ही दिये। जब न मिले तो उन्हे तैश आया, युवक के हाथ से कँपित हाथों फावड़ा छीन कर खुद उठे। मैंने उनका हाथ पकड़ लिया, कहा रहने दीजिये। वे बोले: "नाहीं हम आप का देखउबै करब नाहीं तौ कइहौ मोहनलाल झूठ ब्वालत रहै।" मैंने कहा मुझे आप की बात का विश्वास है। यहाँ ज़रूर गोले दबे होंगे।

"अरे, गाड़ी खाँड़ गोला दवे हैं, एकु दुइ थोरे हैं।" इसके बाद वे हमें एक और जगह दिखलाने ले चले। वड़ी सड़क की ओर क़िले अर्थात् आज के स्कूल के फाटक के पास आकर उन्होंने एक क़ब्र दिखलाई और बोले! "हमरे बाप बतावत रहैं,

और सब बुजुरुग लौग बतावत रहैं कि यू कबर नकली आय । ईमा ग़दर वालेन के हथियार धरे आँय ।"

मोहनलाल जी अपने आस-पास के खंडहरों के प्रति पुरातात्विक दृष्टि रखते हैं । उन्हें अपने आस-पास की एक-एक चीज़ के प्रति जानकारी रखने का उत्साह है । वे हमारे साथ ही चलने लगे ।

अध्यापक तुलसीराम भी हमारे साथ हो लिये । मुहल्ला मुर्हरिरान की छत्ता मंज़िल का इतिहास सुना । वहाँ सारे ज़िले का सदर दफ्तर था । जिस समय अंग्रेज़ आये उस समय शेख नज़फ़ अली मुर्हरिर शाही थे । अँग्रेज़ों ने उनसे दफ्तर सौंप देने के लिये कहा । शेख जी बोले कि "हुज़ूर काग़जात सहेजने में कुछ वक्त तो ज़रूर लगेगा । आप मुझे एक दिन की मोहलत दें, परसों मैं सब कुछ आपके हवाले कर दूँगा ।" अँग्रेज़ राज़ी हो गये । उनके जाते ही वे कमियार के राजा शेर बहादुर सिंह से सारा हाल कहने गये । राजा साहब नें कहा कि काग़ज़ात हरगिज मत देना । राजा साहब ने रातों रात डोलियां भेजीं । नज़फ़ अली के बीबी बच्चे और महत्वपूर्ण काग़ज़-पत्र कमियार भेज दिये गये । फिर भी बहुत से काग़जात बाक़ी बचे । इन्हे इकट्ठा कर कपड़ा और मोम का पलस्तर चढ़ा कर ज़मीन में गाड़ दिया गया । शेख साहब भी नौ दो ग्यारह हो गये । तीसरे दिन अंग्रेजों को जब 'कुछ' और 'कोई' न मिला तो क्रोध में आकर तोप से छत्तामंजिल को ध्वस्त कर दिया ।

छत्ता महल खेत हो रहा है । कटरा मोहर्रिरान एक उजाड़ बस्ती है । दस बरस पहले तक ऐसे उजाड़ स्थानों को देख कर मेरे ज़ामने भावना के उद्वेग में अक्सर भूत आ जाया करते थे । अब यह सब नहीं होता । बस्तियां उजड़ती रहती हैं और बनती भी रहती हैं । हमारे पुरखों की विभिन्न पीढ़ियों ने उन विनाशों की बड़ी पीड़ा सहकर नई आबादियां बसाईं थीं । वे निश्चय ही अपने कष्ट के कारण अपने शत्रुओं से घृणा कर सकते थे । उनका शत्रु अंग्रेज़ हो मुग़ल, पठान, हूण अथवा कुषण हो—कोई भी हो—हमारा शत्रु बर्बरता है । सभ्यता उस वातावरण का संहार करती है जो समाज में बर्बरता और अनाचार उत्पन्न करते हैं । मैं इन खण्डहरों से, उनकी कहानियों से अब यही सबक लेता हूँ । कटरा मोहर्रिरान में ही कपूरथला नरेश का भाई मारा गया था, मोहनलाल ने उसका नाम गुलाबसिंह बतलाया । सत्तावनी क्रान्ति में अंग्रेज़ों और सिक्खों का गठबंधन आज के बौद्धिक वातावरण में कुछ अजीब और उलझाने वाली बात लगती है । यह बात भी ध्यान में

आती है कि जितने छोटे राजे-रजवाड़े सामन्त हमारे यहां थे उनमें से अधिकांश अंग्रेज़ों का साथ दे रहे थे। ज़ाहिर है कि उन्हे अपनी बिरादरी के अन्य भूपतियों से भय था। और यह भय ही फूट का कारण बना।......

सामने ही जौनपुरी मेहराब का वड़ा फाटक दिखलाई दिया। कहा तो यह जाता है कि यह अल्मास अली खां के दीवान लाला रौशन लाल ने बनवाया है। मगर मेरा ख़याल है कि यह फाटक मुहम्मद इब्राहीम शर्क़ी के सूवेदार, इस क़स्वे को आवाद कराने वाले दरिया खां की निशानी है।

जो हो, कटरा-रोशनलाल में पुरानी याद दिलाने वाली रोशनलाल की सराय और एक मस्जिद है। लाला रौशनलाल कायस्थ थे। वे चलतेपुर्ज़े आदमी थे, मालिक की आँखों में धूल झोंक कर अपनी रियासत खड़ी कर रहे थे। दिलजलों ने जाकर अल्मास खां से शिकायत की। वे एक दिन अचानक दरियाबाद आये। लाला रौशनलाल के गोयन्दे भी शिकायत करने वालों से कम चतुर न थे। रौशन-लाल को यथा समय सूचना मिली और उन्होंने सराय के पास ही एक मस्जिद बन-वाना भी शुरू कर दिया।

अल्मास खां की सवारी आई, पूछा कि रौशनलाल क्या बनवा रहे हो? दीवान रौशनलाल वोले: "हुज़ूर को इस राह से आंने जाने पर नमाज़ अदा करने में तकलीफ़ न हो इसलिये मस्जिद बनवा रहा हूँ।"

खेतों में खड़े किये जाने वाले 'धोख' की तरह मस्जिद बनवा कर दीवान रौशन-लाल मालिक का माल हड़प कर गये।

मस्जिद में एक पत्थर लगा है जिस पर अरबी में कुछ अंकित है। बहरहाल मस्जिद १२०३ हिज़री में यानी गदर से उनहत्तर वर्ष पहले बनी थी, यह उस पत्थर से मालूम हो जाता है। लोगों ने बतलाया कि इस जगह का पुराना नाम अल्मास गंज था। बाद में यह जगह कटरा रौशनलाल के नाम से प्रसिद्ध हुई।

बातों-बातों में, प्राचीन इतिहास के वातावरण में ऐतिहासिक किंवदन्तियों के जुलूस निकल पड़े। निगम जी एक बात छेड़ते तो मोहनलाल जी या अध्यापक तुलसीराम जी उसमें चार बात और जोड़ते। हममें से हर एक को—सुनने और सुनाने वालों को रस मिल रहा था। निगम जी वोले कि कटरा रौशनलाल में आज से सौ सवा सौ साल पहले शाम के वक्त कंधे से कंधा छिलता था। इस जगह की हमारे यहाँ वही रौनक़ थी जो लखनऊ में चौक की थी। उस वक्त दरियाबाद की आवादी पच्चीस हज़ार के लगभग थी।

मैंने फ़रमाइश की कि ऐसे गीत बिरहे या कवित्त वग़ैरह जिनका संबंध ग़दर से हो, मुझे यदि कोई सुना सके तो उपकार मानूंगा।

श्री मोहनलाल बोले "अरे, आल्हा बिरहा की का कउनौ कमती आय। मुदा जो दुइ चार दिन पहिले से मालुम होइ जात तौ लोगन का बुलाय लेइति। औ ऐसे एकाध कबित्त तौ हमहू का आदि होई—"

यह कह कर श्री मोहनलाल जोश में हाथ बढ़ा कर सुनाने लगे—

हता जनाना साहगंज का, लौंडा हटा भिठौली क्यार।
अड़िगा राजा चहलारी का, बंकी बिखम बजी तलवार॥

अब इसकी व्याख्या आरंभ हुई। मोहनलाल जी समझाने लगे कि कि 'हता' माने मारा गया और हटा माने भाग गया, 'समुझ्यो ?' उन्होंने इस तरह पूछा मानो मास्टर लड़के से पूछ रहा हो। मैंने कहा, यह तो समझ गया मगर शाहगंज वाला कौन था ? उसका कोई समुचित उत्तर मुझे न मिल सका। अयोध्या के राजा मानसिंह शाहगंज के अधिपति भी थे लेकिन वो मरे नहीं अंग्रेजों से मिल गये थे। मोहनलाल जी बोले: "अरे अंगरेजन ते मिलिगे तौन मरे हे समान हैं।"

इस पर ज़ोरदार ठहाका पड़ा। मोहनलाल जी मेरी ओर यों देखने लगे मानो उन्हें यह हँसी अपनी शान के खिलाफ लगी। बोले: "हम का कुछु झूठु कहा ? अरे, जब साहगंज वाला को रहै, और कइसे हता, ई बताय नहीं पाये औ आप कह्यो कि मानसिंह रहे, तौ हम कहि दिया कि जो छत्री होइ कै दुसमनन ते मिलिगे उइ मरे समान आयँ।" मैंने उन्हे आश्वासन दिया कि आप की बात पर ही फ़िलहाल मैंने अपना विश्वास स्थापित किया है। जब कभी असली शाहगंज वाला मिल जायगा तब चाहे यह धारणा बदल दूँ।

अध्यापक तुलसीराम जी बोले: "अच्छा 'हता' शब्द का अर्थ तौ तुम ऐसे समुझाय दियो अब 'हटा' बताओ। कहाँ ते हटिगा भिठौली क्यार राजा ?"

"अमां अपनी बात ते हटिगा और कहाँ ते हटा।" फिर अपनी बात मुझे समझाते हुए मोहनलाल जी बोले: " बात यह भै कि बेगम जौन रहैं तौन भिठौली मां रहैं। भिठौली वाला कहिसि कि अब आप केरि रच्छा मैं नाइ कै सकति हौं। हमार मान का नाहीं रहा। तब बेगम बिचरउनी भाग गईं। ई तरह ते भिठौली वाला अपने बचन ते हटा कि नाइं हटा ? मर्द थ्वारय हटत हैं अपनी बात ते, लौंडे हटति हैं।"

जब ऐसे शास्त्रार्थ गर्मा जाते हैं तब सुनने वाले को मज़ा भी आता है और नई

नई बात भी सामने आती हैं। जो बातें शायद यों याद करने पर अनायास न आयें वे भी बहस की गर्मी में खट से उतर आती हैं। अध्यापक जी भी सुनाने लगे कि—

आई बदरी होइगा घाम।
आज पड़ा हड़हा से काम ॥

इसकी कथा सुनाते हुए अध्यापक जी ने बतलाया कि कटरे वाले लगान नहीं देते थे तो ठाकुर बद्रीसिंह चकलेदार ने उन पर चढ़ाई की। कटरे वालों ने हड़हा से सहायता माँगी और पाई। हड़हा वाले सूर्यवंशी थे। इस से कवि ने घाम का उल्लेख किया है और बद्री सिंह को बदरी याने बादल बना दिया है।

मोहनलाल जी बोले: "अरे, ई गदर के कवित्त सुनि हैं। इनका कुछ अंटु-संटु न सुनाओ। चहलारी वाले राजा का कवितु सुनाओ।" मोहनलाल जी की टोक-टाक मज़ा दे जाती थी, इससे लोगों की स्मृतियों से नई-नई बातें निकालने का एक बहाना भी बन जाता था। अध्यापक महोदय ने निम्नलिखित कवित्त सुनाया—

"चहलारी को नरेश निजदल मो सलाह कीन,
तोप को पसारा जो समीपै दागि दीना है।
तेगन से मारि मारि तोपन को छीन लेत,
गोरन को काटि काटि गीधन को दीना है।
लंदन अंग्रेज तहाँ कंपनी की फौज बीच,
मारे तरवारिन के कीच करि दीना है।
बेटा श्रीपाल को अलेंदा बलभद्र सिंह,
साका रैकवारी बीच बाँका बाँधि दीना है॥"

सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ। बलभद्र सिंह के प्रति मेरा श्रद्धा भाव बढ़ रहा था। मैं बहुत उत्सुक था कि सत्तावनी क्रांति के इस अमर नायक के संबंध में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करूं, किन्तु तुलसीराम जी को और कुछ विशेष रूप से मालूम न था।

"हमै यादि तौ बहुत से कवित्त रहैं पर ई समय कोई उठि नाहीं रहा है। पहिले बहुत याद रहे। टिकरा बाबुआन मां ठाकुर रामपाल सिंह के पास बहुत से कवित्त हैं।"

"सत्तावनी क्रान्ति के संबंध में?" मैंने पूछा।

"का कह्यो आप?" तुलसीराम जी ने पूछा।

मैं समझ गया, पूछा "गदर के संबंध में।"

"हाँ हाँ, गदरै के संबंध में। बहुत से हैं।"

"तो फिर ले चलिये।"

"वह यहाँ नहीं हैं।"

सुन कर निराशा हुई। ख़ैर। मैंने फिर पूछा कि अच्छा आप लोगों के नाते रिश्तेदारों में या परिचितों में बहुत से ऐसे अवश्य होंगे जिनके पुरखों ने ग़दर में अंग्रेजों से युद्ध किया होगा। या तो वे किसी राजा की सेना में रहे हों या अपने गाँव पर अंग्रेजों द्वारा चढ़ाई के वक्त जूझे हों।"

"हाँ, हाँ, हमारा ही वंश था।" हमारे दल में एक नये व्यक्ति भी राह चलते शामिल हो गये थे, वे बोले।

स्वाभाविक रूप से मेरी काग़ज कलम उनका नाम-ग्राम पूछने लगी। भिलौना निवासी श्री हरिदत्त पांण्डेय ने खट से नाम गिना डाले। तारापुर के बेनी पाठक लड़े, ठाकुर औतार सिंह लड़े, हँसौर के रामसेवक पाँड़े लड़े। शाही ज़माने में झाऊलाल पाठक बड़े सुन्दर थे। चकलेदार ने उन्हे देखकर एक बार कोई भद्दी सी बात मज़ाक में कह दी। पाठक को बात बहुत अखरी परन्तु पी कर चले आये। घर आकर अपने पिता से कहा कि आप से आज्ञा लेने आया हूँ। बड़े पाठक जी ने बेटे की बात सुनकर कहा तुम से इतना सवर कैसे हुआ कि यहाँ तक मेरी आज्ञा माँगने आये। झाऊलाल पाठक यह सुनते ही स्वयं भी घर से ऐसे निकले जैसे बहादुर की म्यान से तलवार निकलती है।

मैं सोचने लगा पिछला समय भी कितना अजीव और भद्दा सा था। आम तौर पर लोग बीते हुये युगों की बात करते ही वैभव से आत्म विभोर हो उठते हैं। बचपन से सुनता चला आ रहा हूँ, पुरखे बड़े बूढ़े बातें करते थे कि हमारा ज़माना ऐसा था और वैसा था और आज का समय कुछ नहीं, आज घोर कलजुग है। मैं समझता हूँ कि सभी युगों और सभी पीढ़ियों के पुरखे यह वाक्य कहते-दोहराते चले आये हैं। बात में व्यक्तिगत भावना का लगाव तो अवश्य है परन्तु बारह आने उर्फ़ ७५ नये पैसे भर यह वक्तव्य बड़ा भ्रामक और असत्य है। चालीस पार कर चुकने के बाद ढाल पर आकर इधर दो तीन वर्षों से अब मेरे मन में भी कभी-कभी बड़ी तेज़ी से यह विचार आता है कि पुराना ज़माना बड़ा अच्छा था। अकसर पुरानी स्मृतियां सिनेमा के चित्र की तरह सामने आ जाती हैं। बहुत से चेहरे, पुरानी शानदार महफ़िलें, वो नवाबी ज़माने के अदब क़ायदे, आदाबो-अल्क़ाब जो हमने बड़ी मेहनत से सीखे थे, वो मान्यतायें जो उस समय बहुत बड़ी मानी जाती थीं, जो हमारे घर में बड़े बूढ़ों के साथ थीं उन्हें हमने भी स्वीकार कर लिया।

उदाहरण के लिये सम्पन्न घरों में पुरुषों का, आम तौर पर गृहपति का, थाली में जूठन छोड़कर उठना एक आम रिवाज सा था। दावतों में लोग इस क़दर तकल्लुफ़ से खाते थे कि जूठन पत्तल में कम से कम तीन चौथाई या आधी बचती थी। अमीरों की जूठन से ग़रीब पला करते थे। आज की सभ्यता में यह जूठन गिराना ऐसा घनघोर पाप और असभ्य नियम माना जाता है कि जिसका हद हिसाब नहीं। जो लोग रीति रिवाजों को, अपने बचपन और जवानी के चलन को बिना सोचे विचारे ही जस का तस अपना लेते हैं उन्हे हृदय से नये नियम स्वीकार करना बड़ा कठिन मालूम पड़ता है। अकालों की खबरों और मँहगाई की फाँसी से मजबूर होकर उन्होंने अपनी आदतें बदली तो हैं मगर नई आदतों के प्रति उनका ममत्व नहीं है। वे समाज के उस सहज भाव को ही सत्य स्वीकार कर चुके थे। इसलिये अपने बचपन और गुज़री जवानी के दिनो को वे ज़ोर-ज़ोर से गोहराते हैं।

यों तो हर दो पीढ़ियों में विरोधी तत्व होते ही हैं। हम वर्तमान युग का एक चलता हुआ उदाहरण लें, आजकल नवयुवकों में बुलग़ानिन फ़ैशन की दाढ़ी रखने का चलन क्रमशः ज़ोर पकड़ रहा है। उनके मुँछमुण्ड अभिभावकों को यह खलता है। वे हैरत और परेशानी से कहते हैं कि आजकल के लड़कों को न जाने क्या हो गया है; हमारे बचपन में ऐसा नहीं था। मेरे सामने दो पीढ़ी पहले का एक चित्र आ जाता है। जब इस देश में मुँछमुण्डा कर्ज़न फ़ैशन आया था तब क्या भारतीय घरों में कम गदर मचा था ? जिन घरों के लोग पहले पहल विलायत गये थे उन्होने अपने समय और समाज को क्या कम टक्करें दी थीं ? मुँछमुण्ड और विलायती हवा वाले नवयुवकों के बड़े बूढ़ों ने क्या तब यह नहीं कहा था कि 'आज के लड़कों को न जानें क्या हो गया है ?'

सन् १८५७ की क्रान्ति निश्चित रूप से ऊपर बखानी गई मुँछमुण्डन क्रान्ति से कई हज़ार-गुना अधिक वज़नी कारणों से हुई, यह निर्विवाद है। सन् ५७—५८ में जन साधारण के जो असंख्य लोग अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़े वे दरअस्ल अपनी अनेक प्रकार की गहरी घुटनों के खिलाफ़ भी लड़ रहे थे। भारतीय प्रजा मरता क्या न करता वाली स्थिति में जानी अनजानी सैकड़ों विवशताओं के प्रति जूझी थी— अँग्रेज़ों से युद्ध तो एक ज़बरदस्त बहाने के रूप में ही हुआ था।

यदि हम यह न मानें तो हमारे सामने एक बड़ी भारी समस्या यह आती है कि ग़दर के बाद ही तुरन्त भारतीय जन भावना का नक्शा एकाएक कैसे बदल गया ? जिस अवध के विद्रोही रूप को सन् सत्तावन् के अँग्रेज़ लेखकों ने जन-स्वातंत्र्य का

प्रबल भाव रूप माना है, वही अवध ग़दर के सात-आठ वर्षों के अन्दर ही बड़ी तेज़ी से अंग्रेज़ी पढ़ने वाला बन गया। सन् १८६४—६५ में अवध के १४०० सरकारी स्कूलों में पाँच हज़ार विद्यार्थी अँग्रेज़ी पढ़ रहे थे। यह क्या केवल राजनीतिक गुलामी के कारण ही संभव हुआ था ? मैं तो समझता हूँ कि नई शिक्षा को अपनाने की इस तेज़ी में सदियों की सामाजिक घुटन से उबरने की इच्छा भी थी। हमारे लगभग एक सदी पहले के पुरखों को अपना ज़माना पसन्द नहीं आ रहा होगा तभी तो वे उसे बदलने के लिये अग्रसर हुए।

सन् सत्तावन के बाद सारा देश एक दम से नया हो उठा और फिर दिनों दिन उसी दिशा में उसका विकास भी होता गया। अँग्रेज़ी भाषा के सहारे उसने अपनी स्वतंत्रता खोने से अधिक पाई। उसने अपने देश के दार्शनिक सांस्कृतिक और साहित्यिक वैभव को नये सिरे से पाया। वह अपने समाज की अनेक प्रकार की गंदगियों से जूझ कर उन्हे हटाने में समर्थ हुआ। सत्तावनी क्रान्ति में दरअस्ल हमारी तरह-तरह की कमज़ोरियां ही हारीं। ग़दर के बाद के भारतीय नवयुवक उन कमज़ोरियों का नाश करने के लिये तरह-तरह से कटिबद्ध होने लगे थे। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि वह पिछला ज़माना, जिसकी प्रशंसा हमारे पुरखे हमसे और हम अपने नौजवान बच्चों से करते हैं, कई दृष्टियों से निहायत गंदा और घुटन भरा था।

विगत वैभव के गुण ग्रहण करना ही यदि विगत वैभव की पूजा करना है तब तो मैं उसे निश्चित रूप से सराहनीय समझता हूँ। अन्यथा पिछले ज़माने पर कोरी 'आहें' भरना मुझे बड़ा ही मूर्खता पूर्ण और नामर्दी का काम लगता है। वे सचमुच कायर होते हैं जो समय के वार नहीं सह पाते हैं। हममें शक्ति थोड़ी हो या अधिक, यह बहस की बात नहीं, सवाल तो यह है कि हम उसे निकालते और आज़माते कितना है। हम भले ही वनस्पति घी के युग में रहते हों, जीवन संघर्ष अपनी चरम चोटी पर हो, मगर यह क्यों बिसरायें कि जैसे भी हो, जितने दिन महीने, या वर्ष हो, हमें जीना है। तब जीवन को ढंग समेत उठाने का प्रयत्न करना ही चाहिये। जहाँ परिस्थितियां एकदम मजबूर भी कर दें वहाँ भी यह क्यों भूलें कि आज नहीं तो कल अवश्य ही इस परिस्थिति को बदलना है। हम आनेवाले कल से आँख न मीच लें और यथा शक्ति अपने आज को पहचाने, जूझें और अपनायें। यह ऊँचे दर्शन या उपदेश की बात नहीं, वैसी ही मजबूरी है जैसी कि सन् ७-८ से लेकर पहली लड़ाई के बाद के ज़माने तक देखने में आई; यानी जब विलायत से लौटे

हुए बहुतों को पुराने समाज ने स्वीकार किया था। पुरानी मान्यताओं की दृष्टि से यह वैसी ही मजबूरी और नया यथार्थ सत्य है जैसा कि आज अनेकानेक दहेज़ न दे सकने वाले मिडिल क्लास घरों में डिगरी शुदा लड़कियों से नौकरी कराना।

खैर तो हम फिर से सत्तावनी समय में आ जायँ। मार्ग में मैंने अपने आस-पास के सज्जनों से उस खजाना लूटे जाने का चरचा उठाया, जिसके कारण ग़दर के इतिहास में दरियाबाद सरनाम हुआ। मुझे पता लगा कि क़िले से दो मील दूर वह गोरा बाग उर्फ़ गोरा बैरक है जहाँ सिपाही विद्रोह आरंभ हुआ था और बहुत से गोरे मारे गये थे। अध्यापक तुलसीराम ने गोरा बाग वाली लड़ाई की एक कथा सुनाई। हड़हा वाले नायब ठाकुर रामसिंह की अंग्रेज़ों से गोरा बाग में लड़ाई हुई थी। राम सिंह हार गये। फिर अग्रेज़ों से कहा गया कि राम सिंह की सेना, मांझा नामक एक स्थान में छिपी है। उनके मारने के लिये अंग्रेजी सेना के घुड़सवार भेजे गये। रामसिंह की सेना झाऊ के बन में छिपी थी, अंग्रेजों के आते ही राम सिंह की सेना ऐसे उठ के निकल पड़ी मानो धरती से उगी हो। इस तरह अचानक आक्रमण कर राम सिंह की सेना ने अंग्रेज़ों को बहुत काटा।

छापेमार लड़ाई के नमूने के तौर पर यह भी एक अच्छी कथा है। ग़दर में छापेमार युद्ध का हमारी ओर से बड़ा ही प्रयोग हुआ था। मुझे तो ऐसा लगता है कि यह छापेमार लड़ाई हमारे देश की बड़ी पुरानी चीज़ है। यह बड़ी-बड़ी संगठित सेनाओं का परिचायक नहीं बल्कि जातीय अथवा ग्राम संगठनों द्वारा व्यवहार में लाया जानेवाला युद्ध कौशल है। शिवा जी इसी तरकीब से लड़ते थे। राणा भीम सिंह ने अरावली की पहाड़ियों में औरंगज़ेब को यों ही घेर कर छापा मारा था। हमारी सेनाओं में जब जन संख्या खूब अधिक होती थी तो हम सम्मुख मैदान लेते थे, कम संख्या होने पर छापे मारी काम आती थी।

मेरे आस-पास के मित्र पुराने राजाओं की आपसी लड़ाइयों के भी प्रसंग उठा रहे थे। वह थोथी ठकुरई की बातें मुझे बड़ी भोली सी लग रही थीं। लौट कर हम फिर पुराने किले और नये स्कूल में आ गये जहाँ कि भारत सेवक समाज का शिविर चल रहा था। वहाँ हमारे लिये चाय का आयोजन किया गया था।

इस चाय की बैठक में एक बड़ा लाभ यह हुआ कि ग़दर के क़िस्से सुनने-सुनाने वालों की एक नई भीड़ मुझे और मिल गई। दरियाबाद के राय अभिराम ब्ली, सिकरौरा के ज़मीदार अजब सिंह और उनके साथी अल्लाबख्श, ये सभी सत्तावन के वीरों में थे। अल्लाबख्श, कयामपुर के आगे बारिन बाग रोड पर अंग्रेजो से लड़ते हुये मारे गये।

अजब सिंह इतने बहादुर थे कि अंग्रेज उनका सिर काट ले गये और लखनऊ के म्यूजियम में रख दिया । वहाँ वह बहुत दिनों तक रक्खा रहा ।

'हड़हा के राजा तौ बहुत भोले भाले रहे पर उनकी रानी रतन कुँवर नायब की मदद लैके जाती रहीं ।' रानी रतन कुँवर, बरकटहा (जिसे अब कयामपुर कहते हैं) के ठाकुर, रानीमऊ के ताल्लुकदार, और कमियार के शेर बहादुर सिंह,—यह सब राणा बेनी माधव के संघ में थे और ग़दर में लड़े थे ।

हड़हा में एक कहावत यह भी है कि रानी हड़हा ने सिकरौरा कयामगंज आदि को मिला कर रुदौली को मुसलमानों से जीतने की योजना बनाई थी । पर तब तक अंग्रेज़ जीत गये ।

किसी ने इसका प्रतिवाद किया, कहा कि यह घटना ग़दर की नहीं बल्कि उस समय की है जब अमेठी के मौलवी अमीर अली ने अयोध्या में जेहाद किया था ।

लिखते-लिखते मेरी इच्छा होती थी हाथ मशीन हो जाँय । सामग्री इतनी थी कि मैं उठा नहीं पाता था ।

हम फिर गलियों में निकल पड़े । श्री पलटनी दरियाबाद के सबसे बूढ़े व्यक्ति हैं । उनकी आयु लगभग नब्बे पंचानबे वर्ष की है । पलटनी के दादा बेचन चौधरी दरियाबाद और रुदौली के तोपखाने के चौधरी थे । श्री पलटनी ने संक्षेप में दो बातें बतलाई—"गोरा बाग माँ छावनी परी रहैं । बहुत गोरा मारेगे अउरु खजाना लुटा । फिर दुसराय के अँगरेजन क दिन आवा, हियां बड़ी भगदड़ परी । दरियाबाद के लोगन क कमियार म सरन मिलत रहै । औ छै द्वारा रहे जहाँ परजा के लोगन क सरन मिलत रहै ।"

"यह छै द्वारा कौन थे ?" मैंने पूछा ।

"अब यू हाल हमका नाही मालूम । जउन बुजुरगन ते सुना तउनै मालूम है ।"

मेरे लिये इतना ही बहुत था । एक-एक कथा से जुड़कर इस यात्रा के बाद मेरे सामने सन् १८५७ का जो चित्र आयेगा उसी पर अपनी दृष्टि टिकाऊँगा । इस समय जो मिलता चल रहा है वही मूल्यवान है ।

हम लोग दरियाबाद के ताल्लुकेदार के घर आये । बली परिवार माथुर कायस्थों का है । हमारे समय में इस परिवार के राय राजेश्वर बली एक प्रमुख व्यक्ति हुए हैं । वे अंग्रेज़ी हुकूमत में यू० पी० सरकार के मंत्री भी रहे हैं । इस घराने के श्री सुरेन्द्रनाथ बली अपनी संगीत संयोजनाओं के लिये प्रसिद्ध हैं । आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से उन्होंने ऊँची कुर्सी भी पाई है और मेरे मित्र भी हैं । इस परि-

वार में शक्ति की उपासना होती है और कृष्ण की भी। अकबर के समय में यह परिवार यहां आकर बसा। इनके पुरखे शाही क़ानूनगो बनकर आये थे। अपने कृष्ण प्रेम को इनके पुरखों ने अपने राज के बहुत से ग्रामों के नाम बदलकर सिद्ध किया है। बाराबंकी ज़िले में बली परिवार की रियासत में आपको गोकुला, नंद गाँव, बरसाना, वृन्दावन सभी मिल जायेंगे।

यहां भी ग़दर की बातों के सिलसिले में 'छै द्वारा' का प्रसंग छिड़ा। मालूम हुआ कि पसका, कमियार, शाहपुर, धनावा, आटा और परसपुर—यह रियासतें छः द्वारा कहलाती थीं, तथा बली परिवार से इनकी दाँतकाटी रोटी थी। कमियार के ठाकुर शेरबहादुर सिंह बलियों के कमाण्डर इनचीफ़ थे।

ग़दर में बली परिवार के लोग यह स्थान छोड़कर कमियार चले गये थे।

उक्त परिवार के वृद्ध सज्जन का नाम मेरी नोट बुक में पेंसिल से लिखा होने के कारण दुर्भाग्य वश मिट गया है। बहरहाल उन्होने आगे की बात बढ़ाते हुये कहा: "प्रताप बली रियासत के मैनेजर थे। ख़ज़ाने की कुंजी उन्हीं के पास थी। अंग्रेज़ों ने गोरा बाग़ में उनके चारों ओर नंगी तलवारों का घेरा डालकर कहा कि कुंजी दो। ये बोले कि मैं तो कारिन्दा हूँ, मेरे पास कुंजी कहां? तब अंग्रेज़ों ने इन्हें डराना धमकाना शुरू किया। तो फिर, हमारे खानदान में देवी का इष्ट तो था ही, प्रताप बली ने देवी को याद किया। इधर हमारे घर में जब खबर आई तो प्रताप बली साहब की मां देवी के मन्दिर में गईं। वहां जाकर देखा तो मूर्ति नदारद! अब आप ही समझ सकते हैं कि उनके ऊपर कैसा संकट आ गया, एक तो लड़के की जान पर बन आई थी और दूसरे घर से देवी ही चली गईं। वह बेचारी दुखी होकर रोने लगीं। फिर कुछ ही देर में उनके देखते ही देखते मूर्ति अपनी जगह पर वापस आ गई। प्रताप बली की मां एकदम अचम्भे में आ गईं कि यह कैसा चमत्कार हुआ। थोड़ी देर में प्रताप बली भी आ गये। मां ने उनकी बलायें लीं, आशीर्वाद दिया और बोलीं कि मैंने तो समझा था कि आज मैं हर तरफ़ से मुसीबत में फँस गई हूँ। उधर तुम्हारी यह ख़बर आई और इधर मन्दिर में आकर देखा तो देवीजी नहीं थीं।"

इस पर प्रताप बली ने कहा "देवी को तो मैंने याद किया था और वही मुझे बचाने भी गई थीं।"

कुचला स्वाभिमान, देवी देवताओं के प्रति अंध श्रद्धा जमाकर कैसे उठता है इसका यह एक सुन्दर प्रमाण है। अंग्रेज़ों से राजा भले हारे पर राजाओं की इष्ट देवियों

और देवताओं ने अंग्रेज़ों को अपनी शक्ति का परिचय दे दिया। धर्म के नारे को लेकर उठने वाली क्रान्ति में ऐसी कथायें गढ़ जाना न तो अस्वाभाविक है न कठिन ही।

इस परिवार की देवी ने एक बार और अपना परिचय अंग्रेज़ों को दिया। ग़दर के दिनों में जब अंग्रेज़ों के पैर फिर से जम गये तब दरियाबाद का ज़िला दफ्तर अंग्रेज़ों ने इन्हीं के महल में रक्खा था। उस ज़माने में अंग्रेज़ों ने इनके पूजाघर को अपवित्र करने के लिये उसमें अपने घोड़े बाँधे। रात को सब घोड़े मर गये, तब जानकारों ने अंग्रेज़ों से कहा कि इस घर की देवी बड़ी सच्ची हैं, उनसे आप लोगों को बिगाड़ नहीं करना चाहिये। इसके बाद अंग्रेज़ों ने पूजाघर में घोड़े बाँधने का हठ छोड़ दिया। बहुत सी अंग्रेज स्त्रियां उन दिनों इसी घर में रहती थी। शेमियर साहब कमिश्नर इन्हीं के घर में पैदा हुआ था। एक बार जब वह इनके महल में आया तो उसने अपने जन्म स्थल को देखने की इच्छा प्रकट की। वह कमरा देख कर बोला: "ओ दिस इज़ द प्लेस व्हेयर आई वाज़ बॉर्न ?"

बलियों के महल के बाहर उनके राज्य की जेल भी बनी थी।

रंजीत सिंह नाम के एक व्यक्ति इनके सिपाहियों में थे। वे कुछ अंग्रेज़ी पढ़े थे। वे जाकर अँग्रेज़ों से मिल गये और इन लोगों को धोखा दिया। बाद में अँग्रेज़ों ने इनसे पाँच गाँव छीन कर रंजीत सिंह को दे दिये।

मैंने राय अभिराम बली के संबंध में पूछा। मालूम हुआ वह राय प्रताप बली के भतीजे थे।

"मैंने सुना है उन्होने ग़दर में बहुत बड़ा हिस्सा लिया है।" मैंने पूछा।

"नहीं साहब, हमारे यहाँ ग़दर में किसी ने हिस्सा विस्सा नहीं लिया।"

"तो आपके यह पाँच गाँव क्यों ज़ब्त हुये ?"

"यह नहीं जानता लेकिन सुना है कि ग़दर के बाद अँग्रेज़ों ने सबकी ज़मीने ज़ब्त कर लीं और फिर नये सिरे से ताल्लुकेदारों को सनदें बाँटी। सिर्फ़ बौंडी रियासत को ज़ब्त कर लिया।"

चलिये, बली परिवार की कहानी भी ग़दर के क़िस्सों की झोली में पड़ गई।

राय राजेश्वर बली के पुत्र ने अपने पिता के संस्कृति प्रेम के नमूने दिखलाये। घर के हाल में राय राजेश्वर बली ने अजंता गुफाओं से प्रेरणा लेकर छतों दीवारों और खम्भों पर दरियाबाद के एक चित्रकार से ही चित्र अंकित कराये थे। अच्छी

चित्रकारी थी। महल का एक भाग भी उन्होंने अजन्ता शिल्प का बनवाया था।

उनके घर में गवर्नर आये, सराह गये। अवनीन्द्र नाथ ठाकुर आये, बली परिवार का सांस्कृतिक वैभव देखकर प्रसन्न हुये। राय राजेश्वर बली महोदय को एक जगह ज़मीन खुदवाते हुये विष्णु की मूर्ति मिल गई थी। मैंने उसे भी देखा; नवीं-दसवीं शताब्दी की सुन्दर कला कृति थी।

मार्ग में लौटते समय श्री रामस्वरूप वाजपेई से ग़दर संबंधी बातों की चर्चा चलाता रहा। उन्होंने मुझे बतलाया कि बेगम हज़रत महल सीतापुर से होकर नहीं वरन् बाराबंकी से गई थीं। लखनऊ से चलकर २३ मार्च १८५८ को आईं। वहाँ से देवा होते हुये भयारा पहुँचीं, जहाँ उन्होंने कल्याणी नदी पार की। फिर १६ अप्रैल १८५८ को बदोसराय के पास हज़रतपुर में जो कि वाजपेई जी के कथनानुसार बेगम हज़रत महल के नाम पर बसा है। राजाओं से मशविरा हुआ और यह तय हुआ कि हम अंग्रेज़ों से मुक़ाबिला नहीं कर सकते। यह १६ अप्रैल १८५८ की बात है। उसके बाद वे महादेवा गईं। महादेवा से भिठौली पहुँचीं। ५ दिसंबर सन् ५८ को जब भिठौली तबाह हो गई तब वो बौंडी से राजा देवी बख्श की मदद लेने गोंडा पहुँची। वहाँ से नानपारा और फिर नेपाल चली गईं। मुझे वाजपेई जी का यह नक्शा समझ में न आया। 'बेगमाते अवध के ख़ुतूत' में एक जगह लिखा है कि लखनऊ छोड़ने के बाद बेगम बिसवां और बाड़ी की तरफ गईं जो सीतापुर में है। 'क़ैसरउत्तवारीख़' के अनुसार भी उनका जाना सीतापुर ज़िले से होकर ही बतलाया गया है।

श्री रामस्वरूप वाजपेई को इस बात पर विश्वास नहीं होता था। वह कहने लगे: "यहाँ महादेवा वग़ैरह में बेगम के आने की बात बड़ी प्रसिद्ध है। अभी कल ही मेरी एक साहब से बात हो रही थी। वे इसी बाराबंकी ज़िले के रहनेवाले हैं। दीनदयाल दीक्षित उनका नाम है। यों रहते लखनऊ में हैं। सेक्रेट्रियट में पोलिटिकल पेंशन के मोहकमें में काम करते हैं। उनके पुरखों का ग़दर में बड़ा भाग रहा है। उन्होंने भी मुझसे यही कहा था।"

मैंने वाजपेई जी की बात काटी तो नहीं परन्तु बड़े चक्कर में पड़ गया।

लखनऊ आने पर मैंने श्री दीनदयाल दीक्षित से उनके ग़दर में भाग लेने वाले पुरखों का इतिहास माँगा। दीक्षित जी ने मुझे अपनी जानकारी लिखकर दे दी।

वह इस प्रकार है—

"ज़िला बाराबंकी में कस्बा बदोसराय के उत्तर में और घाघरा नदी के दक्षिण

में लगभग दो मील की दूरी पर हजरतपुर नाम का एक ग्राम है। इस ग्राम के चारों ओर पक्की ईंटों की दीवार बनी है और चारों कोनों पर बुर्ज हैं। नवाबी शासन काल में यह एक किला था जो अब ध्वस्त पड़ा है।

"सन् १८५७ की क्रान्ति में लखनऊ पतन के पश्चात् बेगम हज़रत महल युवराज बिरजीस क़दर, नाना धोंडूपंत, राणा वेणी माधव सिंह, बौंडी के राजा हरदत्त सिंह तथा गोंडा नरेश राजा देवी बख्श सिंह गुप्त रूप से यहीं एकत्र हुये थे। नवाब गंज, बहराम घाट आदि स्थानों पर देश भक्त वीरों ने मोर्चे लगा दिये थे ताकि पीछा करने वाली अंग्रेजी सेना को मार्ग में ही रोका जा सके। देशभक्त वीरों तथा विद्रोही सैनिकों को अंग्रेज़ों का मार्ग अवरुद्ध करने का भार सौंपा गया था; कुछ विश्वस्त चुने हुये वीरों को इन नेताओं ने अपने साथ रक्खा था। वे लोग अपने नेताओं की रक्षा के हित अपने प्राण देने को तैयार थे।

"इन्ही रक्षकों में हज़रतपुर क़िले के पूर्व में लगभग चार मील की दूरी पर स्थित ग्राम आर्य मऊ के पं० भवानीशंकर दीक्षित तथा उनके ज्येष्ठपुत्र प्रयाग दत्त भी थे। ग्राम तासीपुर के शिवराम उपाध्याय तथा ग्राम खोर निवासी शंकरी बख्श के पूर्वज भी इनके साथ थे।

"रात को लगभग दो वजे इन नेताओं ने अपने रक्षकों के साथ चौका घाट तथा सरदहा घाट से घाघरा नदी को नौकाओं पर चढ़कर पार किया। प्रातः काल वे घाघरा के उस पार राजा बौंडी की गढ़ी में पहुँच गये! यहाँ बेगम हज़रत महल ने अपने बहुमूल्य ज़ेवरों को रक्षकों में पुरस्कार स्वरुप वितरित किया। अंग्रेज़ी सेना बहराम घाट तथा नवाब गंज क्षेत्र में आगे बढ़ने से रोक दी गई थी। बहराइच ज़िले से नेताओं का यह दल गोंडा ज़िले में प्रवेश करता हुआ नेपाल की ओर बढ़ रहा था। अंग्रेज़ी सेना इस दल का पीछा कर रही थी। बौंडी गढ़ को अंग्रेजी सेना ने धराशायी कर दिया। गोंडा के गढ़ में राजा देवी बख्श सिंह पीछा करने वाली अंग्रेज़ी सेना को रोकने के लिये डट गये। तब तक यह दल तुलसीपुर पहुँच चुका था। तुलसीपुर से यह दल देवी पाटन के आगे सरबा-मार्ग से नेपाल में प्रवेश कर गया। तुलसी पुर की रानी ने अंग्रेज़ी सेना को रोकने के प्रयत्न में वीर गति प्राप्त की।

"राजा देवी बख्श का साथ छूट गया था; अब केवल नाना साहब, बौंडी के राजा, बेगम हज़रत महल, बिरजीस क़दर और उनके रक्षकों में पं० भवानीशंकर दीक्षित, उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रयाग दत्त तथा अन्य विश्वस्त लोग साथ थे।

"नेपाल के घने जंगलों में बहुत से साथी बीमार होकर स्वर्ग सिधार गये। बेगम हज़रत महल और नाना साहब में मतभेद हो गया। वेगम युवराज और अपने साथियों को लेकर काठमांडू की ओर चली गईं; नाना साहव और भवानीशंकर दीक्षित उत्तर पश्चिम के घने जंगलों की ओर वढ़ते गये। आगे चलकर भवानी शंकर दीक्षित का स्वर्ग वास हो गया। वन में उनका दाह संस्कार उनके पुत्र प्रयाग दत्त ने किया। नाना साहब ने प्रयाग दत्त को यह परामर्श दिया कि वे नेपाल के किसी गाँव में जाकर वस जाँय और अपने पिता का क्रिया कर्म करें। उन्होंने यह आदेश भी दिया कि भवानीशंकर दीक्षित के पुत्रों में जिस किसी से भी हो सके अपने पिता की गया अवश्य करे जिससे कि उनकी आत्मा को मुक्ति मिल जाय। यहीं पर नाना साहब ने शेष जीवन संन्यासी रूप में बिताने का निश्चय किया और प्रयाग दत्त से कहा कि यदि संभव हुआ और कष्ट मय जीवन से वच गये तो भारत के तीर्थों का दर्शन करेंगे। उन्होने प्रयागदत्त को एक सांकेतिक प्रश्न बत-लाया था जिसके आधार पर वे अथवा उनके कोई वंधु भारत के किसी तीर्थ स्थान में नाना साहव का दर्शन कर सकते थे। नाना साहव लटजीरे के चावलों का भोजन करते थे और उसकी जड़ को भी खाते। लटजीरे के चावलों में कई दिन तक क्षुधा को रोकने की शक्ति होती है। सांकेतिक प्रश्न इन्हीं चावलों पर था।

"गोंडा तथा बौंडी की रियासतें जब्त कर ली गईं। भवानीशंकर दीक्षित का गाँव आर्यमऊ राजा हड़हा को दे दिया गया। दीक्षित जी के अन्य पुत्र बड़ौदा तथा उदयपुर की रियासतों में चले गये और वहाँ की सेनाओं में भर्ती हो गये। दीक्षित बंधुओं का यह परिवार लगभग पचीस वर्षों के उपरान्त आर्य मऊ वापस आया। पं० प्रयागदत्त दीक्षित भी कुछ काल के उपरांत नेपाल से अपनी जन्म भूमि वापस आ गये थे। उन्होंने अपने भाइयों को अपने पिता के स्वर्ग-वास की कहानी तथा नाना साहब का संकेत बतलाया। प्रयागदत्त के छोटे भाई लालताप्रसाद अपने पिता की गया करने और भारत के समस्त तीर्थों का दर्शन करने के लिये चल पड़े क्योंकि पिता की गया करने के पूर्व पुत्र के लिये भारत के समस्त तीर्थों का दर्शन करना अनिवार्य था। इस तीर्थ यात्रा में पं० लालताप्रसाद ने तीर्थराज प्रयाग में सांकेतिक प्रश्न के आधार पर नाना साहब के दर्शन किये। नाना साहब ने प्रसन्न होकर बम्बई में मुद्रित सटीक रामायण की एक पुस्तक उपहार स्वरूप प्रदान की। यहीं से लालताप्रसाद नाना साहब के साथ बद्रीधाम की यात्रा को चले गये। मार्ग में लालताप्रसाद का देहावसान हो गया। तत्पश्चात उनके चौथे भाई महावीर प्रसाद दीक्षित ने भारत के समस्त तीर्थों की यात्रा कर अपने पिता की गया की।

उन्होने भी संकेत के अनुसार नैमिषारण्य में नाना साहब के दर्शन किये थे तथा उन्हे यह भी सूचित किया था कि आप के आदेशानुसार मैंने अपने पिता की गया कर उनकी आत्मा को मोक्ष दिला दिया ।

"नाना साहब दीर्घजीवी थे । उनका देहावसान १९३६ के लगभग नैमिषारण्य में हुआ था, ऐसा समाचार पत्रों में शंका के साथ प्रकाशित किया गया था ।

"यह निश्चित है कि नाना साहब के जीवन के शेष दिन साधुवेष में भगवद् चिन्तन में बीते, और उन्होंने भारत के समस्त तीर्थों के दर्शन किये ।

"लेखक भवानीशंकर दीक्षित का प्रपौत्र है । उपरोक्त कहानी उसने अपने पितामह पं० महाबीर प्रसाद दीक्षित से सुनी थी । सन् १८५७ की क्रान्ति में जो हथियार प्रयोग में लाये गये थे उनमें से कुछ लेखक के घर की एक दीवार की नीव में गड़े हैं । कुछ हथियार स्व० भवानीशंकर दीक्षित द्वारा बनवाये गये कुयें में, जो कि एक बाग़ में है, पड़े हैं । कुछ हथियार एक खेत में गड़े हैं । नाना साहब द्वारा दी गई रामायण को लेखक ने सन् १९५२ में त्रिवेणी संगम प्रयाग में विसर्जित कर दिया, क्योंकि उस पुस्तक का काग़ज बहुत जीर्ण हो गया था पृष्ठ छूते ही चूर-चूर हो जाते थे ।

"मेरा विश्वास है कि यदि नैमिषारण्य में वयोवृद्ध सन्यासियों से जाँच पड़-ताल की जाय तो संभव है कि नाना साहब के जीवन के संबंध में कुछ और भी बातें प्रकाश में आ जाँय ।"

श्री दीक्षित के इस वक्तव्य के नानाराव से संबंधित अंश की जाँच पड़ताल तो नैमिषारण्य पहुँच कर करनी ही है, परन्तु जहां तक बेगम हज़रत महल के बारा-बंकी मार्ग से भिठौली पहुँचने की बात है, अनेक प्रमाणो की मौजूदगी में उसे मैं सहसा मानने को तैयार नहीं ।

'सवानहात-ए-सलातीन-ए-अवध' में अंकित है कि बेगम आलिया की सवारी आलम बाग से निकली, भरावन पहुँचीं । यहाँ से बाड़ी होकर ख़ैराबाद पहुँचीं, फिर महमूदाबाद के राजा नवाब अली ख़ां के घर मेहमान हुईं, फिर भिठौली गईं, वहाँ से बौंडी में दाख़िल हुईं ।'

'बेगमात-ए-अवध के ख़ुतूत' नामक पुस्तक में वाजिद अली शाह की एक पत्नी सरफ़राज़ बेगम लखनवी ने मटिया बुर्ज कलकत्ते में रहने वाली दूसरी बेगम अख़्तर महल को एक पत्र लिखा था कि "...क़रीब शाम मय बिरजीस क़दर के पीनस में सवार होकर नाका आलम बाग़ की तरफ़ से मय मम्मू ख़ाँ के घोडे पर सवार लखनऊ से रवाना हो गईं । रास्ते में राजा मर्दन सिंह ज़मींदार तुमरुदी से पेश आया ।

मौलवी अमादुद्दीन देवी उर्फ़ मौलवी मुहम्मद नाज़िम विस्वाने बाड़ी तीन कोस से इस्तक़बाल जनावे आलिया के वास्ते आये...वहां यह मशविरा हुआ कि बरेली को चलें।"

मेलिसन द्वारा दिया हुआ मार्ग भी यही सिद्ध करता है। 'वेगमात-ए-अवध के ख़ुतूत' में वेगम के बरेली जाने की बात अंकित है। बरेली से भिठौली पहुँचना अटपटा मार्ग लगता है। हो सकता है कि उर्दू छापे में भिठौली को ग़लती से बरेली लिख दिया गया हो।

जो भी हो, श्री वाजपेई द्वारा बतलाया हुआ बाराबंकी ज़िले का कुर्सी, देवां भयारा, हज़रत पुर, महादेवा होकर भिठौली पहुँचने का मार्ग सही प्रतीत नहीं होता।

भयारा

पाँच जून। सुबह हम लोग भयारा के लिये चल दिये। हमें अच्छन साहब के मामू शेख़ अब्दुल अली क़िदवाई महोदय से मिलना था। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ कि बाराबंकी में बलभद्र सिंह चहलारी नरेश की क़ब्र को लेकर जो भ्रम फैला हुआ था उसे अच्छन साहब ने अपने इन्हीं वयोवृद्ध मामा साहब की बातों और इनके द्वारा सुनाये गये बलभद्र सिंह संबंधी एक आल्हा के कुछ अंशों के बल पर निवारण किया था।

गन्ने के खेत मार्ग में अधिक दिखलाई दिये। कल भी ग़ौर किया और आज इस समय भी, गांव में जगह-जगह प्रथम पंचवर्षीय नल कूप योजना, सहकारी बीज बीज भंडार उद्यान, स्कूल और अस्पतालों के नामपट टंगे दिखलाई देते हैं। मिट्टी बलुहा है, जो खेती के लिए उत्तम बतलाई जाती है। चारों ओर अंतरिक्ष के किनारे खड़े वृक्ष विशाल मैदानों वाली भूमि को बड़ी किनार दार परात के समान बना देते हैं। मुझे मैदानों से मोह है। यों पहाड़ भी बहुत अच्छे लगते हैं; ऊंची नीची चोटियाँ सांप की चाल की तरह टेढ़ी मेढ़ी सड़कें, पेड़ों की हरियाली या दूर दिखलाई देने वाली हिमानीचोटियाँ मन को मोह लेती हैं। पहाड़ में प्रकृति रहस्यमय लगती है। यह सब होते हुए भी मैदानों की विशालता मुझे बहुत आकर्षित करती है। मैदानों में प्रकृति की उदारता अनन्त सी लगती है। जो हो, यह तो अपनी अपनी रुचि की बात है। बहरहाल यह मालूम हुआ कि वाराबंकी ज़िला गन्ने के अलावा अफ़ीम के लिए भी प्रसिद्ध है। नवाबी लखनऊ को ज़िला बाराबंकी ही अफ़ीम चटाया करता था।

नहर के किनारे किनारे हम भयारा पहुँच गये। भयारा ग्राम का पंचायत घर एक दम आधुनिक शैली का बना हुआ है। बच्चों के खेलने के लिये चरखी, झूला

वग़ैरह भी लगे हैं। कच्ची झोंपड़ियों के बीच में यह शहरी किस्म की इमारत एक नये युग का संकेत कर रही है। पन्द्रह बीस वर्षों बाद पंचायत घर की यह इमारत पुरानी पड़ जायगी, गाँवों में नये मकान बन जायेंगे, बिजली पहुँच जायगी, सड़कें उम्दा और पक्की हो जाँयगी। एवमस्तु।

पंचायत घर के निकट ही फूस के एक छप्पर के नीचे चारपाई पर वे बुज़ुर्ग विराजमान थे, जिनसे मिलने के लिए हम आये थे। बाद आदाबो अल्क़ाब के बातचीत शुरू हुई। शेख साहब ने फरमाया: "जो कुछ मुझे मालूम था वह अच्छन को लिख कर भेज चुका हूँ। वे उसे किसी अखबार में शाया करायेंगे। बहरहाल आप इतनी दूर से तशरीफ़ लाये हैं, जो कुछ जानता हूँ आपको जरूर सुनाऊँगा। ग़दर में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ आग तो भड़क ही चुकी थी। मौलवी अहमदुल्ला शाह ने गाँव गाँव में ऐसा जोश फैलाया था कि दल के दल अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ लड़ने के लिये तैयार हो गये थे।

"जब बेगम हज़रतमहल ने हार कर लखनऊ छोड़ दिया तब महादेवा में चहलारी के राजा के साथ जितने राजा थे, वे सब इकट्ठा हो गये। बेगम भी थीं, चंर्दा और बौंडी के राजा भी थे। उन्हीं के साथ मेरे दादा शेख़ यासीन अली क़िदवाई भी मय अपने सिपाहियों के थे। महादेवा बहुत पुराना तीरथ है। महाभारत के ज़माने में युधिष्ठिर महाराज ने महादेव जी की मूरत को वहां पर असथापित किया था। बहरहाल वहाँ हिन्दुओं और मुसलमानों ने क़स्मे खाई। हिन्दुओं ने महादेव जी की मूरत पर हाथ रख कर क़सम खाई और मुसलमानों ने कुरान पाक़ हाथ में लेकर क़सम खाई कि फ़िरंगियों से जमकर लोहा लेंगे।

"मेरे बचपन और जवानी के दिनों तक ज्योरी गाँव का एक भागू नाई मुसलमान था। शाही ज़माने में वह रफ़ी अहमद क़िदवाई के परदादा शुजाअत अली के पास नौकर था। उसने ग़दर देखा भी था और ख़याल लिखा था। बाद में उसने पेशा गंधी का कर लिया था और जब कभी हमारे यहाँ आ जाता तो हम उससे अपने दादा के और ग़दर के क़िस्से ख़ूब सुना करते थे। उसी भागू नाई का ख़याल जितना कुछ मुझे याद था और जो कुछ मेरे जैसे चंद बूढ़ों को याद था मैंने अच्छन को लिख कर भेज दिया है। जो कुछ मुझे याद है आप को सुनाये देता हूँ बाकी आप अच्छन से काग़ज़ लेकर लिख लीजियेगा। उस आल्हे को सुनाते सुनाते भागू की यह कैफ़ियत हो जाती थी कि बदन की एक एक नस तन जाती थी और बड़े जोश में आ जाता था, लेकिन राजा बलभद्र सिंह का नाम आते ही आँखों में

आँसू आ जाते थे और आवाज कमजोर पड़ जाती थी। वह सब मैं लिखकर भेज चुका हूँ।"

(अच्छन साहब ने भागू की वह महत्वपूर्ण रचना बाराबंकी से प्रकाशित होने वाली 'विश्ववाणी' को दे दी थी।) रचना इस प्रकार है:—

'बिच ओबरी के मैंदनवा मां साहब लोगन किहिन पड़ाव।
देस के राजा एक ठौरी होइगे लैं लैं रामचन्द्र का नाव॥
तोपैं गरजीं अंगरेजन की धरती अगिनि दिहिन बरसाय।
जेहिके लागै तोप का गोला ऊकी धजा सरग मँड़राय॥
जेहिके लागै सीसे का डंडा देहिया टूक टूक होइ जाय।
अरे गोसइयाँ परलै होइगै राजे भागे पीठि देखाय॥
भागा राजा बौंडी वाला जेहिका हरदत्त सिंह था नांव।
भागा राजा चरदा वाला जेहिका जोतसिंह था नाँव॥
राजा कहिये चहलारी वाला जेहिके बाँट परी तरवार।
ब्याह क कँगना कर मां बाजै लक्खी मौर देय बहार॥
हाथी घिरिगा जब राजा का महावत गया सनाका खाय।
बोला महावत तब राजा ते भैया दीन बंधु महराज॥
मरजी पावौं सहजादे की तुरतै चहलारी देऊँ पहुँचाय।
सुनिकै राजा राहुटु होइगा करिया नैन लाल होइ जाँय॥
बोला राजा चहलारी वाला जेहिका बलभद्र सिंह नाव कहाय।
हटजा हटजा मेरे आगे से तेरा काल रहा नियराय॥
धरम छत्री का यू नाही है भागै रण ते पीठ देखाय।
अरे महावत हाथी बैठा दे सोने कड़ा देहौं दोनो हाथ॥
घोड़ा मँगाइस खासे वाला राजा कूदि भया असवार।
जैसे भेड़हा भेड़िन पैठे वैसे फौजन माँ गा सिधियाय॥
पूरब मारे पच्छिम धावे राजा उत्तर दक्खिन करे संहार।
ग्यारह साहब ठौरे मारिसि औ गोरन की गिनती नाय॥
मारि पचासन का हनि डारिसि जिनका भागत रस्ता नांय।
तीन घरी मा परलै कीन्हिसि गोरा भागे जान बचाय।
तब महराजा चहलारी को देस मां नाव अमर होइ जाय।
होइगा नांव तोरा लंदन मा कोई तेरे बराबर नांय॥

इस अधूरे आल्हे की जितनी पंक्तियाँ बुज़ुर्गवार शेख साहब को उस समय याद थीं मुझे पुराने ज़माने के जोश के साथ सुनने को मिलीं। शेख़ साहब को सुनाते हुये ख़ुद इतना भावोद्रेक हुआ कि आँखों में आँसू आ गये, कहने लगे राजा बलभद्रसिंह की बातें कहते-सुनते मुझे लगता है कि जैसे मैं अपने दादा का हाल ही सुन रहा हूँ।

मैंने पूछा– "आप अपने दादा साहब के बारे में कुछ बतलाने की तकलीफ फ़रमायेंगे ?"

शेख़ साहब ने उत्तर दिया – "मेरे दादा इसी भयारा गाँव में रहते थे। उनकी ज़मींदारी बहुत बड़ी थी। आप यह समझें कि किदवाई लोग साढ़े सात सौ बरसों से अवध में बसे हुये हैं —"

"क़ता कलाम होता है, माफ़ कीजिए, ये क़िदवाई लोग आये कहाँ से ?" मैंने पूछा।

"यह तो साहब हमें नहीं मालूम, मगर यह जानता हूँ कि क़िदवाइयों के पास बावन गाँव थे —

बावन गाँव क़िदवारा।
सबसे बड़ा भयारा॥

तो यह भयारा हमारे खानदान की ज़मींदारी में शुरू से रहा है और जब कि महादेवा से हिन्दू मुसलमान फ़ौजें हज़ारों की तादाद में लखनऊ की तरफ बढ़ीं तो हमारे गाँव भयारा के पास से ही उन्होंने कल्यानी नदी पार की। मेरे दादा शेख यासीन अली साहब क़िदवाई भी अपनी छोटी मोटी टुकड़ी लेकर क़ौम के जांनिसारों के हुजूम में शामिल हो गये। देखिये, मैं आप को यह बतला दूँ कि हमारी हार की वजह यही थी कि हमारी फ़ौज एक बेक़ायदा भीड़ थी जबकि अँग्रेज़ों के साथ बाकायदा फ़ौजें थीं। मुल्की लोग बहुत बहादुरी से लड़ कर भी इसीलिये हारे। जैसा आपको भागू के ख़याल से मालूम होगा, नवाबगंज की लड़ाई में चर्दा और बौंडी के राजा भी बलभद्रसिंह के साथ थे। मगर जब लड़ाई बिगड़ी तो इन लोगों के पैर उठ गये। बहादुर तो बस एक बलभद्रसिंह था। ख़ैर, तो मेरे दादा भी लड़े उनके सारे सिपाही कट गये। उनके घोड़े को गोली लगी। वह लेके भागा और अरहर के खेत में जा गिराया। मेरे दादा ख़ुद भी ज़ख्मी थे। रात को किसान उन्हें उठा ले गये। बच जाने के बाद बहादुर की हालत कुछ अजीब हो जाती है। लड़ाई में जूझ जाना आसान है मगर फाँसी चढ़ कर मरना

किसी को अच्छा नहीं लगता। इसलिये फाँसी के डर से मेरे दादा भागे-भागे फिरे। इलाक़ा दूसरों के पास चला गया। बाद में जब कि यह ऐलान हुआ कि जिन्होंने लड़ाई के मैदान के अलावा किसी निहत्थे गोरे, मेम, बच्चे को नहीं मारा उसे हम माफ़ कर देंगे, तब मेरे दादा अदालत में हाज़िर हुए, यह बयान दिया, तब यह भयारा हमें वापस मिला।"

"क़िदवाइयों में आप के दादा साहब के अलावा और कौन कौन लड़े ?" मैंने पूछा।

"आम तौर से किदवाइयों ने ग़दर में कोई हिस्सा नहीं लिया।"

"इसकी कोई ख़ास वजह थी ?"

"खास वजह यह थी कि अवध के बादशाह से हमें कोई दिलचस्पी न थी। क़िदवाई लोग़ बाग़ी थे। शाही फ़ौजें आये बिना मालगुज़ारी भी अदा नहीं करते थे और फ़ौजें आने पर भाग जाते थे। इसकी एक वजह थी। बक्सर की लड़ाई में सत्रह सौ क़िदवाई नवाब शुजाउद्दौला के साथ शरीक हुए थे। यह सब के सब वालंटियर थे। जब शुजाउद्दौला हारकर भागने लगे तो क़िदवाइयों ने कहा कि आप तो बादशाह हैं, मुँह दिखा लेंगे। मगर हम हार कर कहां जायें। लिहाजा वे सत्रह सौ लोग वहीं जूझ गये। बड़ी बूढ़ियां बतलाया करती थीं कि क़िदवारे में ख़बर आने पर एक ही दिन में क़िदवाइयों की सत्रह सौ बीवियों की चूड़ियाँ टूटी थीं। इसके बाद ही क़िदवाई लोग हुकूमत से बददिल हो गये। फिर, बादशाह की ओर से उनके बच्चों की परवरिश नहीं हुई। उनकी तादाद भी घट गई। नतीजा यह हुआ कि क़िदवाइयों में 'अपारच्यूनिज्म' (अवसरवादिता) आ गया। हम लोग सुन्नी हैं मगर बादशाही में बहुत से क़िदवाई अपने को शिया लिखाये हुए थे। जहांगीराबाद वाले भी शाही में अपने को शिया लिखाते थे और बराबर सुन्नी रहे। जहाँ तक मेरा ख़याल है मेरे दादा को छोड़ कर ग़दर में क़िदवाइयों ने कोई शिरकत नहीं ली। आम तौर पर जहांगीराबाद का-सा रोल ही रहा।"

"हाँ, मैंने होपग्राण्ट की किताब में जहांगीराबाद के मुतल्लिक़ पढ़ा था ––"

"जहांगीराबाद वाले दोनों के साथ दग़ाबाज़ी कर रहे थे। क़िदवाइयों में सबसे बड़े ज़मीदार थे। इन्होंने किसी का साथ न दिया ; इसीलिये ज़क़ उठानापड़ा।"

शेख़ साहब से मिलकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। बड़े साफ़ग़ो आदमी, एक-एक बात को इस तरह समझा कर कहते थे जैसे घर के लड़कों से घर की बातें कह रहे हों। पाँच मिनट की जान पहचान, यहाँ से जाने के बाद फिर कभी शायद

शेख साहब की ज़ियारत करने का मौक़ा नसीब हो या न हो मगर उतनी देर तक मैं यही अनुभव करता रहा कि मानों वे मेरे ही मुहल्ले के बड़े बुज़ुर्ग हैं, सदा से मिलते-जुलते आये हैं, किसी तरह का भी परायापन अनुभव नहीं किया। मैंने उनसे इज़ाज़त ली।

चलते वक्त कहने लगे : "आप यह अच्छा काम कर रहे हैं। इसे तो बहुत पहले ही किसी को करना चाहिये था। पुराने बुज़ुर्गों के हालात पढ़ते हैं तो फ़ख़्र होता है, मगर ग़दर के वाद का रंग कुछ और हो गया और बहुत शर्मनाक भी। मेरी ज़िन्दगी पर आप सच मानिये सबसे ज्यादा असर चहलारी का है, लगता है कि अपने ही दादा के क़िस्से हैं जो मुझ पर गहरा असर करते हैं। हमारे यहाँ क़िदवाइयों में एक रफ़ीअहमद का ख़ानदान भी बेदाग़ रहा। उसका जो नतीजा हुआ वह भी दुनियाँ ने देखा। रफ़ी ऐसा आदमी होना मुश्किल है।"

जहांगीराबाद

हम लोग भयारा से नहर के किनारे किनारे जहांगीराबाद की ओर चले। जहांगीराबाद के बारे में जिस दोतरफ़ा चाल की बात मैंने अभी शेख़ अब्दुल अली साहब से सुनी, वही सर होपग्राण्ट ने अपनी किताब में लिखी है। 'सिपॉयवार' में लिखा है: "२२ अप्रैल (सन् १८५८ ई०) को मैंने सुना कि पड़ोस में ही अवध का एक मज़बूत मिट्टी का कोट जहांगीराबाद में है। वह घने जंगल से घिरा हुआ है और उसमें जाने के लिये कुछ एक रास्ते तो हैं मगर आम तौर पर उस जंगल में धँसना नामुमकिन है। यह कोट राजा रज्ज़ाक़ बख्श का है जो कि ग़दर में बराबर दोतरफा चाल चलता आया है। मैंने सोचा कि उसे सबक़ देना उचित होगा। उसी दिन सुबह वह हमारे कैंप में आया, बड़ी बड़ी सलामें झुकाईं और हमारे प्रति अपने सदव्यवहार और स्वामिभक्ति का बखान करने लगा। उसने कहा कि उसके पास तीन तोपें हैं जो वह हमें देने के लिये आया है। मैंने अपने साथ घुड़सवारों की दो टुकड़ियाँ लीं और उस जंगल से गुजरते हुए कोट के फाटक तक पहुँचा। अन्दर मोटे कँटीले पौधों और बाँस का एक घना जंगल था जिसमें से होकर आगे बढ़ना असंभव सा ही था। हम लोग एक बहुत सँकरे और कष्टदायक मार्ग से होकर अन्त में उस वेहूदा मिट्टी के मकान तक पहुँचे जिसे वह अपना महल कहता था। लोग बड़ी शराफ़त से मिले और हम से कहा कि तोपें कमिश्नर के पास

भेज दी गई हैं लेकिन हमारे एक सिख ने एक ऐसी छिपी हुई जगह से दो तोपें निकाल लीं जहाँ कि किसी का ध्यान ही नहीं जा सकता था। छिपी हुई सामग्री का पता लगाने में सिख प्रसिद्ध हैं। हमने फ़ौरन फाटक तुड़वा डाला और नौ पाउण्डर तथा छः पाउण्डर तोपें निकाल लीं। मैंने राजा से बैल मँगवाये। आने पर देखा कि वे सरकारी जानवर थे जिसे उस बुड्ढे शैतान ने चुरा लिया था। एक हिन्दुस्तानी ने मुझे एक और छिपी हुई तोप के संवंध में सूचना दी। वह उस फाटक के पास ही थी जिससे हम आये थे। खोजने पर एक नौ पाउण्डर तोप मिली जो दोहरी मार 'ग्रेपशाट' और 'राउण्ड शाट' कर सकती थी। और इस तोप का मुँह उसी सड़क की ओर था जिससे हम आये थे। तोप वड़ी ख़ूबी के साथ ढँकी और छिपाई गई थी और उसमें धीमे धीमे सुलगने वाली वत्ती भी लगा दी गई थी। यह सब देख कर बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ। उसी समय एक अफ़सर ने यह सूचना दी कि उसने राजा के घर में बहुत से सरकार-द्रोही काग़ज़ात पाये हैं। तब मैंने निश्चय कर लिया कि उस बुड्ढे ख़ूसट को अव किसी हालत में भी बख्शना मुनासिब नहीं। दूसरे ही दिन मैंने नवाबगंज से ब्रिग्रेडियर हार्स फ़ोर्ड की कमान में एक सेना उस जंगल और कोट को ध्वस्त करने के लिये भेजी। सेना ने जंगल जला दिया और क़िला ध्वस्त कर मिट्टी में मिला दिया गया।"

सर होपग्राण्ट के इस विवरण के अतिरिक्त मैंने यह भी सुना था की अंग्रेज़ी सेना के गुरखे और अंग्रेज़ सिपाहियों ने महल की स्त्रियों को बेइज्जत किया, राजा रज्ज़ाक़ बख्श को अस्सी अन्य व्यक्तियों के साथ फाँसी दी और उनकी लाशें जलते हुये जंगल में झोंक दीं। इन दोनों प्रकार की बातों के साथ जहांगीराबाद के संबंध में मेरे मन में कई प्रश्न उठ रहे थे। समझ में नहीं आता था कि राजा रज्ज़ाक़ बख्श को देशभक्त माना जाय अथवा गद्दार ? जिस क़िले में अंग्रेज़ों को धोखा देकर मारने का प्रवंध हो और जहां उनके विरुद्ध षड़यंत्र करने के काग़ज़ात पाये गये हों उसे सहसा देशद्रोही मान लेना कठिन प्रतीत होता था। फिर अंग्रेजों ने जैसा बदला लिया वैसा किसी साधारण अपराधी से नहीं लिया जाता। ऐसा लगता है कि अंग्रेज़ों को इस बात का पक्का विश्वास हो गया था कि राजा रज्ज़ाक़ बख्श महज़ उन्हें धोखा देने के लिये ही उनसे मिले हुए थे। देशभक्तों के साथ हार्दिक सहयोग था। दूसरा प्रश्न यह उठता है कि यदि अंग्रेज जहाँगीराबादी सामन्त कुल से इतने क्षुब्ध हो उठे थे तो उन्हें जहांगीराबाद की गद्दी पर बहाल क्यों किया ?

मैंने शेख़ साहब से यह सुना था कि राजा रज्ज़ाक़ बख्श के वंशज भयारा में रहते हैं और जहांगीराबाद की गद्दी पर राजा नौशाद अली के वंशज राज्य करते

हैं। जब वाजिद अली शाह गिरफ्तार हुये तब नौशाद अली नमकहलाली दिखलाते हुए उनके साथ साथ कलकता तक गया था लेकिन शेख़ साहब के अनुसार वह अंग्रेज़ों का जासूस था और इसी कारण से जहांगीराबाद की गद्दी उसके हिस्से में आई।

शेख़ साहब का बतलाया हुआ 'नौशाद अली' नाम भी ग़लत है। सन् १८९३ ई० में प्रकाशित पदवीधारी राजा नवाबों के आदि के परिचय ग्रन्थ, सर रोपर लेथ-ब्रिज द्वारा संकलित और लिखित 'दि गोल्डेन बुक ऑफ़ इंडिया' में जहांगीराबाद की रानी ज़ेबुन्निसा का परिचय देते हुये निम्न लिखित इतिहास अंकित है:—

"रानी ज़ेबुन्निसा का जन्म २८ अक्टूबर १८५५ में हुआ था। ७ अप्रैल १८८१ को उसने अपने पिता स्व० राजा फ़रज़न्द अली खाँ की गद्दी पाई। फ़रज़न्द अली को राजा का खिताब अवध के भूतपूर्व बादशाह वाजिदअली शाह ने दिया था, जिसे ब्रिटिश सरकार ने भी परंपरागत पदवी माना। जहांगीराबाद की रियासत के स्वामी राजा रज्ज़ाक बख्श थे, जो पुत्रहीन मरने के कारण रियासत अपने दामाद फ़रज़न्द अली खाँ के लिये छोड़ गये। फ़रज़न्द अली लखनऊ के सिकंदर बाग का दारोग़ा था। अवध के अंग्रेज़ी राज्य में मिलाये जाने से तीन वर्ष पूर्व उसके भाग्य ने उसकी सफलता के लिए एक अच्छी परिस्थिति उत्पन्न कर दी। फ़रज़न्द अली बहुत सुन्दर था। एक बार वाजिदअली शाह सिकंदर बाग घूमने गये; नवयवक की सुन्दरता से प्रभावित होकर उन्होंने उसे खिलअत बख्शी तथा महलों में आने का आदेश दिया। शाही कृपा के एक संकेत पर ही फ़रज़न्द अली की उन्नति का मार्ग तेज़ी से खुल गया। प्रभावशाली ख्वाजासरा बशीरुद्दौला फ़रज़न्द अली को चाहता था। उसके प्रयत्नों के कारण फ़रज़न्द अली को एक फ़रमान द्वारा जहांगीराबाद के राजा का पद मिला। वाजिदअली शाह के दरबार से फ़रज़न्द अली खाँ का संबंध जुड़ गया। सन् १८५६ में वाजिदअली शाह के पदच्युत होने पर फ़रज़न्द अली उनके साथ कलकत्ता गया वहाँ उसने कुछ समय तक निवास किया। ग़दर में उसका भाग प्रमुख नहीं था तथा शीघ्र ही उसने अपने आप को सरकार के प्रति समर्पित भी कर दिया। १८६० में अपनी रियासत के अन्दर कार्य करने लिये उसे असिस्टेन्ट कलेक्टर की सत्ता प्रदान की गई।"

इस प्रकार जहांगीराबाद के ध्वंस और उसकी गद्दी के बहाली के कारण स्पष्ट हो जाते हैं। संभव है कि वाजिदअली शाह और उनके प्रभाव शाली ख्वाजासरा के दबाव से राजा रज्ज़ाक़ बख्श को फ़रज़न्द अली से अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये मजबूर होना पड़ा हो। राजा रज्ज़ाक़ बख्श के जीते जी ही फ़रज़न्द अली को

बादशाह की ओर से राजा का खिताब मिला। इसलिये संभव है कि रज्ज़ाक़ बख्श ने नई परिस्थिति को प्रसन्न मन से स्वीकार न किया हो, और वह मन ही मन अपने दामाद और शाह से नाराज रहा हो। ऐसी परिस्थिति में तो रज्ज़ाक़ बख्श को (यदि वो व्यापक चेतना का मनुष्य नहीं था तो) अपना बदला लेने के लिये अंग्रेज़ों से मिल जाना चाहिये था। सर होपग्राण्ट के अनुसार रज्ज़ाक़ बख्श उससे मिलने गया था, और सर होप को जहाँगीराबाद की तरफ़ से दुमुही चाल चले जाने का पता भी लग चुका था। ऐसी परिस्थिति में रज्ज़ाक़ बख्श के कारनामों का सही अन्दाज़ नहीं लगता। यदि रज्ज़ाक़ बख्श अपने दामाद का विरोधी था तो अपने क़िले में अंग्रेजों द्वारा ब्रिटिश द्रोही क़ागज़ात और तोपें पकड़े जाने पर उसने अपने दामाद की चुग़ली क्यों नहीं खाई? ऐसा करने पर वह अपने ऊपर पुराने शासक़ द्वारा आरोपित दामाद फ़रज़न्द अली को चुटकियों में तबाह कर सकता था, भले ही उसकी बेटी पति के जीते जी विधवा हो जाती अथवा अपने बाप से लड़ कर कलकत्ता चली जाती।

इससे तो यही सिद्ध होता है कि रज्ज़ाक़ बख्श ही अँग्रेजों के प्रति विद्रोह कर रहे थे। अपनी शारीरिक सुन्दरता रूपी योग्यता के बल बूते पर सिकंदर बाग़ का दारोग़ा भाग्य के करिश्मे से राजा हो गया। अयोग्य व्यक्ति यदि भाग्यवश ऊँचे दरजे की सफलता पा जाता है तो उसमें क्वचित् ही आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है। अयोग्य व्यक्ति हर युक्ति से अपना पद सँभालता है, उसके लिये हीन से हीन-तम् चाल भी चल सकता है। संभव है कि जनश्रुति के अनुसार फ़रज़न्द अली अंग्रेजों का गोयन्दा बनकर वाजिदअली के साथ कलकत्ता गया हो। यह विचार करने की बात है कि राजा रज्जाक बख्श की दुतरफ़ा कारगुजारी को उनकी बदनीयती माना जाय अथवा अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ एक चाल?——एक ऐसी चाल जो भोंडी तरह से चली गई और असफल हो गई।

जहांगीराबाद की शहादत में राजा रज्ज़ाक़ बख्श और उनके दामाद राजा फ़र-ज़न्द अली क्या साझीदार थे? एक साझीदार के तबाह होने पर दूसरा उस से तुरंत चेत कर, साझा तोड़ अपना मुनाफ़ा बचाने की फ़िराक़ में लग गया हो। हर तरह से सोच कर हम राजा रज्ज़ाक बख्श के व्यक्तित्व को हीन मानने का कोई कारण नहीं देखते। राजा रज्जाक बख्श शत्रु पक्ष के सर होप ग्रांण्ट जैसे मेधावी सेनानी को मिठबोले बन कर नष्ट करने का आयोजन कर, उसे अपने क़िले में आमंत्रित कर ले गये होंगे। उनकी चाल फ़ेल हो गई यह और बात है।

शत्रु पक्ष के उन प्रबल मेधावी सेनानियों को छल, कल, बल से मार कर स्वपक्ष को संकट से उबारना इस देश की कोई नई रीति नहीं है। महाभारत में ऐसी युद्ध नीति के अनेक प्रमाण हैं।

मुझे लगता है कि राजा रज्ज़ाक़ बख्श निःसन्देह स्वतंत्रता संग्राम के संगठन-सूत्र में बँधे हुये थे। उनकी शहादत को गुनाह बेउसूल मानने को जी नहीं चाहता। अपने जीते जी अपने दामाद को जहांगीराबाद का राजा बनाने वाले शाह के प्रति राजा रज्ज़ाक़ बख्श की निष्ठा तो हो नहीं सकती, इसलिये हमारा यह वृद्ध पुरखा निश्चय ही देश स्वतंत्रता के लिये कारगुज़ारी करते हुए मारा गया।

क्या ही अच्छा हो यदि वे काग़ज़ात जो सर होपग्रांण्ट ने जहांगीराबाद के मिट्टी के महल से पाये थे पुरानी सरकारी फ़ाइलों में उसी तरह दबे पड़े हों जैसे राणा वेणीमाधव और मौलवी अहमदुल्ला शाह आदि के पत्र दबे पड़े थे तथा जिनका उद्धार मेरे विद्वान मित्र डा० रिज़वी ने किया है।

ग़दर के नायकों में अनेक ऐसे हैं जो मुझे नक़ली लगते हैं और जिनका ढिंढोरा पीटना अब बंद हो जाना चाहिये। और बहुत से ऐसे नायक हैं जो अब तक छिपे पड़े हैं या दुर्भाग्य वश ग़लत मूल्यांकन के शिकार हो गये हैं। मैं केवल राजा-रजवाड़ों में ही नहीं बल्कि जन साधारण के उन शहीदों को भी पहचानना चाहता हूँ जो हमारी प्रणामांजलि प्राप्त करने के पूर्ण अधिकारी हैं। मुझे एक नये शहीद का नाम ठाम मिलता है तो मुहावरे की रीति में मेरा एक सेर ख़ून बढ़ता है। मैं कोरी व्यक्ति पूजा या विगत वैभव की रोमांटिक परिपाटी का पुजारी नहीं। परंपराओं को इसलिये पहचानना चाहता हूँ कि उनमें कौन सी ऐसी सशक्त हैं जो हमें आज भी अपने समय और परिस्थितियों से जूझने के लिए नया रूप धारण कर प्रेरणा दे सकती हैं। सौ वर्ष पहले के लोग भले ही देश को नक्शे के रूप में न जानते हों मगर अपनी धरती की मिलकियत अपने पास रखने की चेतना—वह स्वाभिमान उनमें ज़रूर था। और यह देशभक्ति का बीज नहीं तो फिर है क्या ?

शारदा नहर के किनारे-किनारे हवा के सरसराते झोकों की तरह विचार एक के बाद एक कड़ी में बँधे चले आ रहे थे। बीच-बीच में मेरा पुराना सफ़री साथी पान का बटुआ भी खुलता ही था। आज की यात्रा में भी भाई इन्दु प्रकाश साथ थे। गुप्त जी और इन्दु प्रकाश जी, दोनों ही बड़े सज्जन नवयुवक हैं, मेरी दृष्टि को बाहर कहीं उलझे हुए देख कर बातचीत से मुझे नहीं सताते। 'पिकअप' की दूसरी बर्थ पर स्थानीय बातों में अपने को उलझा लेते हैं। हाँ, जब पान का बटुआ

बेगम हज़रतमहल

खोलता हूँ तब इन्दु प्रकाश जी तुरन्त मेरी ओर मुख़ातिब हो किसी न किसी रूप में किन्हीं शब्दों में यह प्रश्न अवश्य कर लेते हैं: "तो आपको हमारे ज़िले से 'मैटर' पाने में अब तक कोई निराशा तो नहीं हुई ? आप की आशा से कम मैटर तो नहीं मिल रहा है हमारे ज़िले से ? आप के साथ-साथ हमें भी अपने ज़िले के सम्बन्ध में बहुत सी नई सूचनायें मिल रही हैं, इससे हमें तो बड़ा लाभ हो रहा है, पता नहीं आपकी आशा के अनुसार आपको मैटर मिला या नहीं ?" मैं हर बार इन्दु प्रकाश जी को यह आश्वासन दे देता हूँ कि अपनी यात्रा के पहले ज़िले में मेरी बोहनी अच्छी हुई है। एक बार, अभी-अभी मैंने कह दिया कि एक प्रश्न का उत्तर मुझे अभी तक किसी ने नहीं दिया।

इन्दु प्रकाश जी और गुप्त जी दोनों ही घबरा कर मुझे इस तरह देखने लगे मानों स्वयं उनसे ही कोई बहुत बड़ी ग़लती हो गई हो।

मैंने कहा: "कई लोगों से पूछा कि जब ग़दर हुआ तब मुल्क़ी लोगों में कुछ गुण्डे तो नहीं शामिल हो गये थे, जिन्होंने ग़दर के हुल्लड़ में स्वयं अपने पास पड़ोसियों को ही लूटा पीटा हो ?"

इन्दु प्रकाश जी चिन्तित होते हुए बोले: "हाँ, इसका तो उत्तर नहीं मिला आपको। वैसे तो हमारा ज़िला क्रिमिनल है, मगर शायद ग़दर की राष्ट्रीय भावनाओं के कारण हमारे यहां के गुण्डे भी उस समय ईमानदार सिपाही बन गये हों।"

मुझे हँसी आ गयी, जिसे मन ही मन दबा गया, कहा: "आप की बात से आपके ज़िले का गौरव बढ़ता है।"

भाई मेरे उत्तर से संतुष्ट हो गये। बड़े भले युवक हैं।

शारदा नहर के बाईं ओर सूखे बाँसों के झुण्ड के झुण्ड ज़मीन तक झुके हुए दिखलाई पड़ने लगे। बीच-बीच में हरियाली। मैदानों की हरियाली और मस्ज़िद की ओर दिखलाई पड़ने वाली पलाशों की लाली के बीच लम्बे-लम्बे पुराने वंशवृक्षों का ख़ाक़ी रंग बाँसों को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व दे रहा है। नहर के किनारे पर भी पलाश और रूसा छाया हुआ है। बाँईं ओर मस्जिद, उसके पास सूखे बाँसों का झुण्ड, फिर जहांगीराबाद का आलीशान महल और दूर-दूर पर ताड़ के वृक्ष—सब मिल कर इस जगह के नये-पुराने इतिहास का संकेत दे रहे हैं।

इन्दुप्रकाश जी बोले: "यही पुरानी गढ़ी का क्षेत्र है जिसे सर होपग्राण्ट ने तबाह किया था। बाँस के जंगल अब तो बहुत काफ़ी साफ़ हो गये हैं। एक बार पहले,

यानी आज़ादी से पहले जब मैं यहाँ आया था तब काफ़ी थे। इस नहर के पुल से लेकर महल तक शाम को ऐसी रौनक़ रहती थी जैसी आपके कैसरबाग़ में रहती है। कई बार अंग्रेज़ गवर्नर भी यहाँ आये हैं।"

हम लोग पुल पार कर महल की ओर आये। दाहिनी ओर एक बड़ी मस्जिद है जिसका कुछ हिस्सा अधबना ही रह गया है। जहांगीराबाद महल ख़ासा शानदार बना है। मुझे सर होपग्राण्ट की बात याद आ गई। राजा रज्ज़ाक बख्श के मिट्टी के महल को देख कर वह बहुत तप गया था, राजा की बेटी के वंशजों का यह राजसी वैभव देख कर सर होप को शायद तसल्ली होती। ताल्लुक़ेदारों के महलों की शान बान आम तौर पर ग़दर के बाद ही बढ़ी है। अवध में आम तौर पर वैसी ही घने जंगलों से घिरी, मिट्टी की गढ़ियाँ थीं जैसी कि सर होप ने सौ बरस पहले इस स्थान पर देखी थीं। बाराबंकी ज़िले भर में ऐसी अनेक गढ़ियाँ थीं जो गदर के बाद ध्वस्त कर डाली गयीं।

महल सूना था। राजकुल से लेकर मैनेजर तक पहाड़ों पर चले गये थे। माल-ख़ाने के दारोग़ा मिले। वे हमें पुरानी गढ़ी वाला मैदान दिखलाने ले गये। गदर का हाल उन्हें कुछ नहीं मालूम, पुरानी रवायतें भी बहुत नहीं सुनीं, केवल इतना अन्दाज़ है कि पुराना कोट कहाँ से कहाँ तक फैला हुआ था। — "पहले कोट की खन्दक़ैं दिखाई पड़त रहीं। औ पुराना महल बस इसी जगह पर था जहाँ यह महल है। पुराना महल मिट्टी का रहा। शाही वख्तों में राजा रहे सो माल गुज़ारी वग़ैरह न देवैं, सो आगज़नी होय, लूटे जाँय, भागे भागे फिरैं। यही हाल था, यही के मारे पुराने राजा लोग मिट्टी के महल बनावत रहैं और बचाव के लिये ख़न्दकैं औ बीहड़ बीहड़ जंगल, यही सब इन्तज़ाम करत रहैं। अब ये बाँस जौन आप देख रहे हैं उसी पुराने वख्तन के हैं। फल जाने पर अब सूख गये है। अरे अब तो सब जंगल वंगल काट के खेत बनाय लिये गये हैं। जंगल से बड़ी आराम रही। मगर अब सब बाँसों की जानै निकल गईं। यही हाल है।"

मैंने पूछाः "आप को राजा रज्ज़ाक़ बख्श के बारे में कोई जानकारी हो तो बतलाइये।"

कुर्ते से बटुआ निकाल कर एक चुटकी तम्बाकू मुँह में डालते हुए माल दारोग़ा बोलेः "हिशटरी की तौ साहब हमैं कुछ ख़बर नहीं, मगर यह सुना है कि बड़े राजा रज्ज़ाक़ बख्श तौ फ़कीर रहैं। रामपुर के महन्तन के यहां जाँय, उई इनके यहां आवैं, यही हाल रहा।"

कुर्सी

जहांगीराबाद भी देख लिया । हम लोग अब कुर्सी की ओर रवाना हुए। लखनऊ और क़र्बोजवार में वाराबंकी ज़िले की कुर्सी का वही माहात्म्य है, जो भोगाँव, शिकारपुर और बलिया का है । कुर्सी के बारे में बड़े-बड़े लतीफ़े चलते हैं । अभी हाल ही में यहाँ एक मज़ेदार क़िस्सा हो गया । कुर्सी के किसी व्यक्ति की अन्य गाँव के किसी व्यक्ति से अदावत हो गई । बड़ी तेज़ कहा-सुनी हुई । उसके बाद ही कुयें में एक लाश पाई गई जिसकी सही शिनाख्त न हो सकी । कुर्सी के किसी लाल बुझक्कड़ ने वहाँ के दारोग़ा से यह कहा कि हो न हो यह लाश उसी व्यक्ति की है, जिसका स्थानीय व्यक्ति से झगड़ा हुआ था । दारोग़ा जी ने विश्वास कर लिया और वह स्थानीय व्यक्ति हत्या के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया। वह बेचारा धर-धर कहे कि मैंने हत्या नहीं की मगर उसकी सुने कौन ? खैर, गिरफ्तार होने वाले व्यक्ति के घर वाले किसी तरह उस व्यक्ति को जाकर ले आये जिसकी हत्या होना सिद्ध हो चुका था । मैजिस्ट्रेट बोले कि दारोग़ा पर कुर्सी का कुछ न कुछ असर तो होना ही चाहिये ।

वैसे कुर्सी का इतिहास किंवदंतियों के अनुसार बहुत प्राचीन है । इसका पुराना नाम लवकुशी बतलाया जाता है। रघुवंशी रामचन्द्र के बेटों लव-कुश ने इसे बसाया था । किसी समय यह पंडितों का घर था। सन् १०३० में सैयद सालार मसूद के आक्रमण के समय, अवध गज़ेटियर के अनुसार, यहाँ भरों का राज्य था । जनवार राजपूतों का इतिहास भी इस स्थान से जुड़ा हुआ माना जाता है । पंडितों की इस प्राचीन नगरी के निवासियों के संबंध में जहांगीर-नामा में 'अहमक़ाने-क़ुर्सी' लिखा है । शायद इसके बाद ही कुर्सी का नाम चकल्लसी प्रयोग में लिया जाने लगा । कोरे पंडित लोग व्यावहारिक दृष्टि से मूर्खतायें तो करते ही हैं । अस्तु ।

ग़दर में कुर्सी ने अपना जल्वा दिखलाया था, या यों कहिए कि इस स्थान को ग़दर का जल्वा देखने के लिए मजबूर होना पड़ा । कुर्सी लखनऊ से केवल सोलह मील दूर है। २१ मार्च सन् १८५८ में मौलवी के पराजित होने के कारण, लखनऊ के पतन के बाद भागी हुई फ़ौजें यहाँ इकट्ठा हो गईं । ज़िला गज़ेटियर में लिखा है कि जब लार्ड क्लाइड ने अंतिम रूप से अवध की राजधानी पर अपना अधिकार जमा लिया तब विद्रोही सेना का बहुत बड़ा भाग, भागकर, पत्थर वाले पुल से होता हुआ बाराबंकी के रास्ते से घाघरा की तरफ़ बढ़ा । समाचार मिला

कि लगभग चार हज़ार विद्रोहियों ने कुर्सी में मोर्चा साधा है। तदनुसार ब्रिगेडियर होपग्राण्ट को आदेश दिया गया कि २३ मार्च के तड़के ही जाकर वह विद्रोहियों को तितर-बितर करे। सर होप की यहां पर देशभक्त सेनाओं से मुठ-भेड़ हुई और विजयश्री भी लाभ हुई थी।

दोपहर, भर-धूप में हम लोग कुर्सी के चौधरी महमूद हसन ताल्लुक़ेदार के यहाँ पहुँचे। हमारे आने का उद्देश्य सुनकर चौधरी साहब ने फ़रमाया: "साहब हमने तो आज तक नहीं सुना कि कुर्सी में ग़दर हुआ था। क्या गज़ेटियर में लिखा है?"

मैंने कहा: "जी हाँ।"

"हो सकता है साहब। बहरहाल मेरे सुनने में नहीं आया। ख़ैर, अब आप आये हैं तो इसका पता लगाया ही जायगा। मौलवी साहब के यहाँ चलते हैं। अगर मालूम होगा तो उन्हें ही मालूम होगा। उनके यहाँ पुरानी किताबें हैं, शायद किसी में यह हाल लिखा हो। बाक़ी सब लोग तो जाहिल हैं।"

मैंने कहा: "मेरा काम ऐसे लोगों से भी निकल सकता है। जो सत्तर अस्सी बरस पुराने बुज़ुर्ग होंगे उन्होंने अपने बुज़ुर्गों से ग़दर की बातें सुनी होंगी। मौलवी साहब के अलावा ऐसे बुज़ुर्गों से भी मेरी मुलाक़ात करवायें।"

चौधरी साहब ने अपने अनुचरों से गाँव के बुड्ढों के संबंध में पूछा। पता लगा कि अमुक और अमुक बड़े "पुरनियां" आदमी हैं। मगर इतनी दूर चलकर यहाँ नहीं आ सकते हैं। मैंने कहा, हम लोग वहीं चले चलेंगे।

प्राचीन 'ढूहों' की बस्ती से हम लोग गुज़रने लगे। आसफ़ी लखौरियों के अलावा जगह जगह उससे कुछ बड़ी और मोटी लखौरियाँ, भरों की लखौरियाँ दिखलाई पड़तीं थीं जो यहाँ के पुराने इतिहास की गूँगी गवाह थीं।

सरकारी बीज भंडार के चबूतरे पर हम लोगों ने आसन जमाया। दोनों वृद्ध वहीं आस पास रहते थे और हमारे पहुँचते ही एक सज्जन आ गये। घुटा सिर, मूँछ विहीन सफ़ेद दाढ़ी, नंगे बदन, लम्बी झुकी हुई देह को लठिया पर टिकाये हाजी अब्दुस्समद तशरीफ़ लाये। एक तो यों ही बुढ़ापे के मारे चलने फिरने से लाचार थे दूसरे पैर में पट्टी बँधी थी। बीस क़दम दूर से आते आते भी उन्हें क़रीब दो तीन मिनट लग गये। आने पर मैंने उनसे प्रश्न किया। कमज़ोर थकी आवाज़ में उन्होंने कहा: "हमारे जमाने की तो बात है नहीं, सुनी सुनाई बातें हैं सो वह भी अब ज़ईफ़ी की वजह से ठीक ठीक याद नहीं रहीं।"

मैंने कहा: "आप को जो कुछ याद हो सुनाइये।"

"वालिदा हमारी बताती रहीं कि गोरे इधर से आये। तोपखाना था मस्जिद के पीछे। गोरे दक्खिन की तरफ से आये। मितैला की तरफ़ यहाँ के लोग और सिपाही भागे"।

मैंने पूछा: "मितैला कहाँ है" ?

चौधरी महमूद हसन साहब ने बतलाया कि कुर्सी से लगभग डेढ़ मील दूर क़ाज़ी बाग़ के पास मितैला का तालाब है।

मितैला से मित्र अर्थात सूर्य से संबंधित प्राचीन नाम की ध्वनि आ रही थी। जो हो।

हाजी साहब फिर कहनेलगे: "तो, मितैला के तालाब के पास गोरों ने घेरा। वहाँ गोरों ने बड़ा क़त्ले आम मचाया। वालिदा कहतीं थीं कि जब हम लोग भागे तो बस भागे-भागे ही फिरे।"

आस पास दस पाँच लोग जुट आये थे, उन्ही में से एक वृद्ध जो हाजी साहब की अपेक्षा कम उम्र के लगते थे, बोले: "यू सुनाई परत है कि पहिले अंग्रेज रहे, फिर तीन महीने ग़दर रहा, फिर अंग्रेज आय गये।"

हाजी साहब ने भी एक बात सुनायी: "हमारे यहाँ के एक जुलाहे सिपाही थे वो (लखनऊ की) छतर मंजिल में नौकर थे। दरिया पार कर भाग कर आये थे। कहते थे कि मुल्की आदमी लूट पाट में पड़ गए। इसीलिये अंग्रेज़ों को मौक़ा मिल गया।"

दूसरे बुज़ुर्ग़ श्री ख़ुर्शेद दर्ज़ी भी इसी समय पहुँच गये। ख़ुर्शेद मियां हाजी साहब की अपेक्षा लगभग दस वर्ष बड़े, नब्बे की आयु के थे, परन्तु उनका स्वास्थ्य हाजी साहब की अपेक्षा अच्छा था।

ख़ुर्शेद दर्जी ने बतलाया: "क़ाज़ी बाग में गोरन से लड़ाई भयी। मदारपुर कुर्सी का ही एक पुरवा है, हुआं मार काट मची और अली ख़ां के तालाब के पास पीछे हटत-हटत मितैला मां शाही फ़ौज़ हार गई।" कह कर ख़ुर्शेद दर्ज़ी साहब ने हाजी अब्दुस्समद की ओर देखा, मानो समर्थन चाहते हों। हाजी साहब अपनी खोपड़ी सहलाते रहे। श्री ख़ुर्शेद ने अपनी बात फिर आरंभ की बोले: "हियां मुस्तक़िल लश्कर रहा, तोपखाना रहा और जहां चौधरी साहब की कोठी है हुँआं कोतवाली रही।"

"तोपख़ाना यहाँ मुस्तक़िल तौर पर रहता था, या शाही फ़ौज के साथ आया था ?"

"नहीं, तोपख़ाना बराबर रहत रहे। कुछ फ़ौज तोपखाने में रही। कुछ शाही

फ़ौज वाजिदअली शाह की भाग कर क़ाजी बाग़ में आय कर ठहरी।"

हाजी—"लश्कर दौरे पर आवा करत रहें।"

खुर्शेद—"हमरे बाबा रहे। उन्हें एक बार शाही फ़ौज पकड़ लै गयी बेगार करावै की ख़ातिर। हमरे बाबा ज़रा गुस्सैल रहे। उनते यू बरदाश्त नाही भवा। गुस्सा में आय के कुँवा मा कूदि गये। कहा लेव पकड़ौ यहाँ से। उन्हैं जान देना गवारा रहै बेगार देना नहीं। औ यहाँ रिसालदार रहत रहे। रिसालदार की रंडी की कबर तोपख़ाना मुहल्ले में हैं। औ उइ इलाका बराबर नजूल रहा। पुराने जमाने ते आज तलक उइ नजूले में है। जमीदारी कबहूं नाहीं रही उयि इलाके में"।

"अच्छा, यह बतलाइए कि गोरों और शाही फ़ौजों की लड़ाई यहां कितने दिन रही"? मैंने पूछा।

"अरे हजूर, दिन विन कहाँ, लड़ाई आनन फानन माँ खतम होइगै। अंग्रेजन की फ़ौज़ैं बड़ी मार काट मचाइन, बुज़ुरुग बतावत रहैं"।

इसके बाद दोनो वृद्ध मौन हो गये। उन्हें अब कुछ भी स्मरण नहीं आ रहा था।

चौधरी साहब हमें मौलवी साहब के यहां ले गये। ऊँचे टीले पर देवा शरीफ़ के सुप्रसिद्ध संत हाजी वारिस अली शाह के दादा गुरु की दरगाह और उनके वंशजों का घर बना है। पास ही एक मस्जिद है, जो बाबर के समय में बनी बतलायी जाती है।

मौलवी साहब के घर में डी० डी० टी० की सेना मच्छरों से घमासान कर रही थी। मौलवी साहब बड़े व्यस्त थे, फिर भी उन्होंने हमारा स्वागत किया। उन्होंने कहा: "ज्यादा तो मुझे कुछ मालूम नहीं जनाब, बहुत मुख्तसिर सा हाल यह मालूम है कि लखनऊ की हार होने पर वहां से कई बेगमात भाग कर आयी थीं, शुरफ़ा की औरतें पैदल आयीं, बेचारीं सब जंगलों में भागी-भागी फिरीं, चोरों ने मारा, फ़ौजियों ने लूटा, बड़े-बड़े मसायल हुए। बेग़मात के साथ गाड़ी भर अशर्फ़ियां और ज़ेवरात थे, मगर सुना कि अंग्रेज़ों की फ़ौज़ें आ रही हैं, तो बेचारी सब छोड़ छाड़ कर भागीं। लालू के बाप दुल्लू ने गाड़ी अपने यहाँ ले ली, तभी से बड़ा आदमी हो गया। बस इससे ज्यादह और कुछ मैं नहीं जानता"।

मौलवी साहब के यहां पुरानी हस्तलिखित धार्मिक पुस्तकों का बड़ा अच्छा संग्रह है। नवाबी के ज़माने में लखनऊ में अरबी और फ़ारसी लिपि की सुन्दर कलात्मक लिखावट लिखने वाले कई लोग थे, उनके कुछ उम्दा नमूने मौलवी साहब

के यहाँ हैं। मौलवी साहब में आलिमों जैसी वेखुदी और मस्ती है। चौधरी साहब ने फ़रमाया कि मौलवी साहब ज़रा किसी से कहिये सुनिये, आप की ज़रा सी कोशिश से ही यह चीज़ें अच्छे दामों पर बिक जायेंगी। आपके सारे दुख दूर हो जायेंगे।

"अजी वक्त अपने आप अपनी फ़िक्र कर लेता है। हम क्यों झंझट में पड़ें; जब वक्त आयेगा, उसे मंज़ूर होगा, बिक जायेंगी।"

मौलवी साहब के दर्शन कर बड़ा प्रसन्न हुआ। उनके घर के आँगन में नाली पर दो तीन बहुत बड़ी-बड़ी ईंटें बिछी हुई देखीं। मन पुरातत्व वाले कोठे पर चढ़ गया। जबसे मेरे पड़ोसी लक्ष्मणटीले ने अपनी विभिन्न प्रकार और कालों की ईंटों से मेरे बैठक घर को म्यूज़ियम बना दिया है, तब से यह रोग मेरी पुरातत्व की नीम हकीमी पर खतरये--जां होकर लग गया है। एक बार सुप्रसिद्ध विद्वान् आदरणीय भाई डॉक्टर मोतीचन्द्र जी ने मुझसे कहा भी कि ज्यादा ईंटों के फेर में न पड़ो, सिर फूट जायगा। पर क्या करूँ, लगी नहीं छुटती। जबतक इन ईंटों का सार ज्ञान मुझे नहीं मिल जाता तब तक सिर भले फूटे, मगर हम इन गलियों आना जाना न छोड़ेंगे।

ख़ैर तो जी न माना और हम मौलवी साहब से बात बनाकर पूछ बैठे:—"यह ईंटें क्या आप ने नाली को ढँकने के वास्ते ख़ास तौर पर ढलवाईं थीं ?"

मौलवी साहब ने फ़रमाया: "जी नहीं। आप जिस मकान में बैठे हैं वह एक पुराने क़िले पर बना है जो कि भरों का था। उनसे यह इलाक़ा हमने लिया। तब हमारा यह मकान बना। अक्सर खोदने पर ऐसी और इससे कुछ छोटी ईंटें वग़ैरह निकल आया करती हैं।"

लगभग बाईस तेईस इंच लम्बी और दस ग्यारह इंच चौड़ी ईंटें एक पुराने ऐतिहासिक युग की निशानियां हैं। ईश्वर जाने ये भर या भारीशव लोग कहाँ ग़ायब हो गये? उत्तर प्रदेश पर इस गौरवमयी जाति का बड़ा ऋण चढ़ा है। भारतीय इतिहास को भारतीय दृष्टि से देखने वाले अमर विद्वान् डॉक्टर काशी प्रसाद जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'अन्धकार युगीन भारत' में भारशिवों का जी खोलकर बखान किया है। भरों, भारशिवों और भरवटिया यादवों के संबंध में उन्होंने कुछ संकेत भी किये हैं। प्रमाण के अभाव में वह केवल संकेतों के सहारे ही सत्य को देख और दिखा सके। हमारे देश अथवा प्रदेश का कोई विद्वान् यदि डॉक्टर जायसवाल के काम को आगे बढ़ाये तो शुभ हो। थोड़े से बाबू साहबों के अलावा, जो कलसे भर पानी में एक 'टीसपून-फुल' नमक या शकर के समान हैं,

भारतीय समाज अब भी परंपराओं का अंधनिष्ठ पुजारी है। भारतीय जन की नेत्र-हीना निष्ठा को प्राचीन और सही इतिहास के नेत्र प्रदान कर के ही आज के वैज्ञानिक युग की प्रगति का महत्व समझाया जा सकता है, हम अपनी विद्या अविद्या, योग-भोग के वैभव, क्रूरता कठोरता और फूलों से भी सुकुमार कोमलता के साथ एक भावुक राष्ट्र हैं। हमारे संतों की परंपरा बुद्ध से लेकर गाँधी तक महाभाव सिद्ध पुरुषों की परंपरा है। भारतीय किसान में जो सुन्दरतम है वह गांधी, सूर, तुलसी, कबीर, समर्थ रामदास, नानक, नरसी, चैतन्य आदि में हमें देखने को मिला है।

मौलवी साहब के यहाँ से हम चलने ही वाले थे कि ख़बर आई, हाजी साहब और ख़ुर्शेद दर्ज़ी साहब को एक बात और याद आ गई है; उन्होंने बुलवाया है। हम लोग चल कर उन बुज़ुर्गों की सेवा में उपस्थित हुए। हाजी साहब बोले: "देखिये बुढ़ापे का मग़ज़ है कुछ बातें निकल जाती हैं। आप के जाने के बाद हम दोनों खयाल दौड़ाने लगे। हमने कहा भाई ये तो हमारे बुज़ुर्गों का हाल लिखा जा रहा है तो हम लोगों को ख़याल दौड़ाना चाहिये। फिर इनके ख़याल में भी एक बात आई और मुझे भी कुछ बातें याद आईं। मैंने कहा आप को तकलीफ़ देकर बुलवा लूं।

उनका उपकार मानते हुए मैंने कलम कॉपी सँभाल ली। हाजी साहब ने दो बातें बतलाईं। एक तो यह: "वालिदा कहतीं थीं कि जब बेगम बिरजिस क़दर को लेकर आईं तो जगह-जगह ज़ेवर और अशर्फ़ियां कुँओं में फेंकती चलीं।" दूसरी रवायत यह सुनाई: "गोरों ने बादशा वजिदआली शाह से कहा कि या तो बारह कोस का राज ले लो या सवा लाख रुपये ले लो। इस पर बेगम बोली जहां इतनी बड़ी सल्तनत गई वहां बारह कोस का क्या होगा। बादशा के ससुर नकी मियां मुतफ़न्नी रहैं वहै बादशा से गोरन का सल्तनत दिलाय दिहिन ! बाद में बिरज़िस क़दर ने कहा, तो बादशा बोले, तुम्हारे नाना ने दिला दिया मैं क्या करूँ।"

श्री ख़ुर्शेद दर्ज़ी ने एक कथा सुनाई: "गंगा बक्स—दो मील पर बेहटाई के—बाप-बेटे बड़े बहादर रहे। उयि एक अंग्रेज़ और मेम को पकड़ लाये। पिसाब के मुकाम पर मेख ठोंक दिहिन। फिर अँग्रेज़ पकड़ लै गये। लखनऊ में सिरकटे नाले पर इनके सिर काटे गये।"

मैंने पूछा: "आप लोगों में से किसी ने यह सुना है कि यहां मुल्की लोगों ने अपने ही देश भाइयों को लूटा हो ?"

श्री ख़ुर्शेद बोले: "हां, बेगमै भाग के आई हैं तौ बड़ी लूट पड़ी है। हमरे

मुल्की लोगों ने मुलुक वालन क लूटा रहा। वही म असरफिन का एक छकड़ा हमरे यहाँ के दुल्लू—"

"कौन, लल्लू का बाप दुल्लू ?" मैंने पूछा।

"हाँ, लालू क बाप।"

इन दोनों बुज़ुर्गों का उपकार मान कर मुहल्ला तोपख़ाना में श्री असग़र अली से भेंट की। उन्होंने रिसालदार की चार रंडियों की क़ब्रों के निशान दिखलाये जो अब क़रीब-क़रीब मिट्टी में मिल चुकी हैं। एक आध बुर्ज के निशानात् भी दिखलाये। श्री असगर अली ने अपनी आयु अस्सी से ऊँची बतलाई। उन्होंने चलते चलते एक बात कही: "वालिद हमार बयान करत रहैं कि अंग्रेज आये। बौंड़ी मा बेगम का पनाह मिली।"

मैंने पूछा: "यहां लूट पाट हुई"?

बोले: "नाहीं, बस्ती के लोग भाग गये रहैं"।

हाजी साहब और श्री खुर्शेद दर्ज़ी ने दुबारा बुला कर जो बातें सुनाईं थीं वे मेरे ध्यान में घूमने लगीं। हाजी साहब की वालिदा के अनुसार बेगम हज़रत महल इधर से होकर गुजरी थीं। श्री राम स्वरूप वाजपेई ने भी कल बेगम का मार्ग कुर्सी, देवा, भयारा आदि बाराबंकी ज़िले के विभिन्न ग्रामों से होकर भिठौली सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। हाजी साहब की बात उनका समर्थन करती है। श्री वाजपेई की बात ठीक है या ग़लत इसका उत्तर विशेषज्ञ विद्वान ही दे सकते हैं। मैं तो केवल जी की एक शंका निवेदन करता हूँ, बेगम हज़रत महल नहीं, बल्कि बेगमें इधर से भाग कर गई हैं। जिस दिन अंतिम रूप से लखनऊ का पतन हुआ, उस दिन अंग्रेज़ों का मोर्चा मौलवी अहमदुल्ला शाह से अटका था। बेगम दो दिन पहले ही जा चुकी थीं।

हाजी साहब की दूसरी बात, कि गोरों ने वाजिदअली शाह से बारह क़ोस का राज्य या सवा लाख रुपया की बात कही—यह घटना एक ऐतिहासिक बात की जनश्रुति मात्र है। बिरजीस क़दर की मां हज़रत महल वाजिद अली की बहुत सी बेगमों में से एक थीं। अली नक़ी ख़ां ख़ासमहल अर्थात् पटरानी के पिता थे; मगर जनता तो अपनी ही तरह से बादशाह का घर परिवार भी बाँध लेती है।

वाजिद अली शाह ने अपनी काव्य आत्म-कथा 'हुज्ने अख्तर' में इस प्रसंग को यों लिखा है :—

"बस अब तर्के तम्दीह कर ऐ जबां। सुना इब्तेदा से तू यह दास्ताँ॥
यह वाजिद अली इब्ने अमजद अली। सुनाता है अब दास्ताँ रंज की॥

डा. ... रमण रेग्मी ... रेग्मी स्मारक पुस्तकालय

कि जब दस बरस सल्तनत को हुये । जो ताले थे बेदार सोने लगे ।।
हुआ हुक्मे जरनल गर्वनरिया यार । करो सल्तनत को खला एकबार ।।
जो ये मुल्क में बैठते सेह करोड़ । उसकी यह थी बादशाही यह ज़ोर ।।
जफ़ाकश का शाहे अवध नाम है । हुकूमत का आख़िर यह अन्जाम है ।।
जो वह लाट डिल्होज़ी उस वक्त थे । मज़ामीं यह ख़त में उन्होंने लिखे ।।
रेआया बहुत तुम से नाराज़ है । तुम्हारी रियासत है बदनाम शौ ।।
रेआया न देखेंगे हरगिज़ तबाह । फ़क़त नाम के तुम रहो बादशाह ।।
महीना हर एक माह एक लाख का । मिलेगा कुछ नहीं शक़ ज़रा ।।
रेज़ीडेन्ट जरनेल औट्रम जो थे । गवरनर का ख़त मुझको वह दे गये ।।
हुआ घर में कोहराम सुनकर यह बात । वह दिन दोपहर हो गयी काली रात ।।
वह लाये ५ इस तरह की साथ फ़ौज । कि जिस तरह दरिया की आती है मौज ।।
यहाँ जुज़ इताअत न था दिल में शर । न थी ऐसे दिन की तो हरगिज़ ख़बर ।।
यह बन्दा बहुत उन दिनों था अलील । कहा दिल ने क्या सोचूं इसकी सबील ।।
अली नक़ी खां मेरे थे वज़ीर । वही मेरे हर हाल में थे मुशीर ।।
मेरे दिल में आता था हरदम खयाल । जो होना था वह हो चुका क्या मलाल ।।
करो मुहर तुम राज़ी नामे पे अब । गयी सल्तनत तो कई बे सबब ।।

इस प्रकार वाजिद अली शाह की आत्म कथा से भी उनके पदच्युत होने के साथ ही साथ उनकी उस अमनपसन्दी का परिचय मिलता है । जो किसी वीर या कुशल राजनीतिज्ञ की अमनपसन्दी नहीं, वरन् विलासी और कायर की शान्तिप्रियता है । अवध के इस अन्तिम शाह के संबंध में जितना कुछ पढ़ा है, उससे यही अन्दाज़ लगता है, वे भोले और भले थे । अपनी जवानी के आरंभिक दिनों में उन्होंने सेना की व्यवस्थित कवायद तथा राज्य शासन का उत्तम प्रबंध करने के लिये बड़ा उत्साह दिखलाया, परन्तु अंग्रेज़ों और अपने बेईमान अफसरों के चंगुल से वे मुक्त न हो सके । एक बार शासन की चिन्ता से मुक्त होने के बाद उन्होंने अपने आप को नाच रंग और विषय विलास में झोंक दिया । फिर उनके पाँव किसी नीति पर न ठहर सके । उनका भोला और भलापन विलासिता की ओर बेछूट बढ़ जाने पर उनकी विकृतियों का अन्यतम पोषक हो गया । वाजिदअली शाह के सामने जब हम उनके 'परीखाने' की एक परी, उनके एक पुत्र की माता बेगम हज़रत महल के व्यक्तित्व को देखते हैं तब वे बेगम के सामने उनके पैरों की धोवन भी नहीं ठहरते । बचपन में ही वाजिदअली की कुटनियों के चंगुल में फँसकर नर्तकी बनने वाली अज्ञात कुल शीला स्त्री का विद्रोह सही तौर पर समझने की चीज़ है । अस्तु ।

श्री खुर्शेद दर्ज़ी द्वारा बतलाई हुई रामसिंह और उसके बेटे की क्रूरता निस्सन्देह अक्षम्य कायरता का नमूना है। डाक्टर मजूमदार को भारतवासियों की इस क्रूरता के कारण महान् भारतीय संस्कृति की दुहाई देनी पड़ी है। ग़दर की इन घटनाओं के कारण लज्जा के मारे इतिहास के महान पंडित का मस्तक झुक-झुक गया है। उनकी तरह शर्म तो मुझे भी आती है, मगर मैं यह नहीं भूल पाता कि ऐसे कार्य वीरों द्वारा नहीं वरन उन लोगों द्वारा अधिक हुए हैं, जो सदियों तक अपने से अधिक शक्तिशालियों के असंख्य अत्याचार सहन करते आये थे। महान भारतीय संस्कृति की परंपरायें कमज़ोर क्यों पड़ीं, इसका कारण न देख केवल लज्जा से सिर झुका कर बैठ रहना विद्वान् का काम नहीं, अधकचरी बुद्धि वाले भावुकों का, अथवा स्वपक्ष समर्थन करनेवाले चतुर वकील का काम हो सकता है। मजूमदार महोदय ने ५७ में 'पुरबियों' की क्रूरता और नृशंसता तो देखी, मगर उनकी बहादुरी और उदारता के उदाहरण न देखे, जिनसे उनका मस्तक गौरव युक्त होकर ऊँचा उठता।

नवाबगंज की लड़ाई का अमरशहीद, तेंतीस गाँवों का साधारण ज़मींदार, चहलारी का ठाकुर बलभद्रसिंह सत्तावनी क्रान्ति का ऐसा अनुपम वीर और आचरणशील युवक था कि उसके विदेशियों द्वारा वर्णित कारनामें किसी भी भारतीय का मस्तक गौरव से ऊँचा उठा देते हैं।

सर होप ग्राण्ट लिखता है : "ज़मींदारी के तेज़ और बड़े साहसी आदमियों की एक बड़ी सेना दो तोपें लेकर मैदान में आई और हमारी पिछली क़तारों पर हमला किया। मैंने भारत में अनेक युद्ध देखे हैं, ऐसे अनेक बहादुरों को देखा है, जो विजय अथवा मरण लाभ करने का दृढ़ निश्चय कर मैदान में आते हैं; परन्तु मैंने आज तक ज़मींदारी के इन लोगों के आचरण के समान शानदार और कुछ भी कहीं नहीं देखा।......उनका सरदार लम्बा चौड़ा पुरुष था और उसके गले में घेघा था। उस व्यक्ति को किसी भी प्रकार का भय नहीं झुका पाता था।"

निन्यानवे वर्ष बाद आज भी बाराबंकी ज़िले के गाँव-गाँव में असंख्य भारतीय जन की वाणी पर चहलारी के अमर शूर बलभद्र सिंह का वास है। जिसे शत्रु मित्र सब सराहें वही वास्तविक विजेता है। अठारह वर्ष का नवयुवक बलभद्रसिंह समस्त देश के लिये, विशेष रूप से हमारे नवयुवकों के लिये चिरजीवी आदर्श रहेगा। अपने लिये नहीं, वरन अपने देश के लिये, स्वतंत्रता के लिये जूझने वाला निष्काम कर्मी अवध की धरती का यह लड़ैता लाल भारतीय वीरों के इतिहास में अभिमन्यु की भाँति सदा गौरवशाली स्थान पायेगा।

लौटने पर श्री रामस्वरूप वाजपेई को अपने ठहरने के स्थान पर प्रतीक्षा करते पाया। वाजपेई जी बोले "आप साहबदीन से भी मिल लीजिये। एक सौ चौदह बरस का बुड्ढा है। उसने नवाबगंज की लड़ाई देखी थी। पिछली १० मई को उसी के बतलाये हुये स्थान पर बलभद्रसिंह को श्रद्धांजलि अर्पित की गई थी।"

"नेकी और पूछ पूछ?" मैंने वाजपेई जी से कहा: "मैं तैयार हूँ अभी चलिये।"

शाम को लगभग पाँच बजे थे। स्टेशन के पीछे, बहुत क़रीब ही ओबरी गाँव है। श्री साहबदीन वहीं रहते थे। ओबरी के उस पुरवे के सामने ही वह मैदान था, जिसमें निन्यानवे वर्ष पहले नवयुवक बलभद्रसिंह की सरदारी में भारतीय जन ने अपने विस्मयकारी स्फूर्ति भरे युद्ध का वह शानदार इतिहास रचा था, जिसे आज के नामचीन्ह इतिहास पंडित तो भूल गये परन्तु जनता नहीं भूली। सन् १८५७ पर पोथे लिखने वाले हमारे स्वनामधन्य इतिहासकार ने अंग्रेज़ों और क्लर्क क्लास के बंगालियों की डायरियों के सहारे ग़दर वालों की क्रूरता, नृशंसता, जघंन्यता, पैशाचिकता आदि-आदि इत्यादि न जाने क्या-क्या सूंघ लिया; उसके लिये उनका मस्तक अखिल भारतीय लज्जा के भार से झुक गया। काश कि अँग्रेज़ों के ही लिखे हुए कुछ ऐसे भी अंश उन्होंने पढ़ लिये होते, जिनसे भारतीय संस्कृति और भारत की शान बहुत ऊँची होती है।

कच्ची मिट्टी के घरों वाले साफ़ सुथरे मुहल्ले मे प्रवेश किया। एक गली घूम, एक बड़े आँगननुमा मैदान को पार कर हम साहबदीन जी के पास आ पहुँचे। छप्पर के नीचे तख्त पर अपने आगे लिपटा हुआ बिस्तर रख एक दुबला पतला व्यक्ति जिसकी देह की खाल झूल रही थी बैठा, हाँफ रहा था। एक सदी से भी कुछ वर्ष अधिक के व्यक्ति को देखना, उससे बातें करना एक बहुत ही अजीब, विस्मय और उल्लासकारी अनुभव होता है। अक्सर बच्चों की तरह से मैं कल्पना करता हूँ कि मेरा एक हाथ कम से कम बीते हुये सौ सवा सौ वर्षों के भूतकाल को अपने में समेट ले और दूसरा हाथ कम से कम इतने ही आगामीं कलों को। वैसे, बात तो बच्चों जैसी लगती है परन्तु अनहोनी अथवा असंभव नहीं। खैर, होगा।

साहबदीन को दमें का आरज़ा है। दाढ़ी-मूंछ विहीन कंठीधारी भगत श्री साहबदीन के सिर में और बाईं आँख के पास मसेनुमा दाग़ हैं, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई हैं, आँखों की पुतलियाँ पथरा गई हैं, या कहूँ, अपने आप में किसी हद तक लय हो गयी हैं। साँस फूलती है मगर आवाज़ में अब तक कड़क है। कैंड़ा बतला रहा है कि बदन कभी कसरती और मज़बूत रहा होगा। मुंह में अब भी दो चार घिसी हुई दाढ़ें नज़र आती हैं।

मैंने पूछा : "आप की उम्र क्या है ?"

"चउदह के हन । बल्कि आँसव चौदहीं पूर होइकै पन्द्रहियां लागि गा होई ।"

हमारे यहाँ आयु के सौ वर्ष पूरे हो जाने पर नये सिरे से उम्र के दिन गिने जाते हैं। सौ के बाद निःसन्देह मनुष्य फिर से बच्चा हो जाता है । स्मृति खो जाती है, अधिकतर मनुष्य गोदी के बच्चों की तरह अपने हर काम के लिये परवश हो जाता है। यद्यपि साहबदीन जी अब भी परवश नहीं हुये, वे चूंकि कंठीधारी भगत होने के कारण किसी के हाथ का छुआ नहीं खाते, इसलिये स्वयं पाकी हैं । उन्हें दो बड़े कष्ट हैं और दो छोटे । बड़े कष्टों में एक तो यह है कि वे अब केवल एक समय ही भोजन कर सकते हैं; दूसरा यह कि चौदह-पन्द्रह वर्षों से वे सो नहीं पाये । कभी-कभी बैठे ही बैठे ग़फलत सी आ जाती है । तीसरी पत्नी है, वह भी लगभग ७५-८० की लपेट में है । चार पुत्र हैं, नाती पोते अनेक हैं । छोटे दुःखों का कारण आँख कान का कमज़ोर पड़ जाना है ।

श्री गुप्त ने कहा : "चहलारी के राजा का किस्सा सुनने आए हैं ।"

साहबदीन के शरीर में वैसी ही तत्परता आ गयी जैसी 'सावधान' कहते ही सिपाही में आ जाती है । मैं उनका वह सधाव देख मुग्ध हो गया ।

वे बोले : "कहां ते सुनाई ? हमका सबु आदि है ।"

मैंने कहा : "आप जैसे जी चाहे वैसे सुनायें ।"

बोले : "अच्छा ।" और उनकी साँस फूल आई , मैंने यह निश्चय कर कलम-कापी सँभाली कि ये धीरे-धीरे बोलें या तेज़, मैं इनका एक-एक शब्द ज्यों का त्यों लिपिबद्ध करूँगा ।

साहबदीन जी बतलाने लगे : "इनकी अंग्रेजन की तोपैं ई जगह कादिरघाट पर लागी रहैं औरु नबाबी की तोपैं कंपनी बाग मां लागी रहैं । तीन तोपैं रहैं ।"

"पहले अंगरेजन की हार हुइ गई। गोरा बहुत कसा । दोसर-तीसर पल्टन आई, तब हिंदुस्तान कटा, जो बड़े-बड़े नबाबी के रहैं उयि कटे । तब तौ कागज रहै नाहीं, तौ भोजपत्र पर लिखिआउज भै कि कौन-कौन नामी हैं । तब बलभद्दर सिंह का लिखिन । इनकी उमर अठारा बरस रहै । रेखैं फूटति रहैं । याकै दिन पहिले ब्याव भवा रहै । अच्छा !"

इतना कह चुकने के बाद अपनी फूलती साँस को नया दम देने के लिये वे सुस्ताने लगे; फिर कहना आरम्भ किया : "तब पीलवान कहिसि, अकि सरकार जौ हुकुम होय तौ मैं निकाल लै चलौं ।—बलभद्दरसिंह से । तौ उयि कहिनि कि हम छत्री हुइकै पीठी दिखाउब तौ लोगन के आगे मुँहुँ कैसे दिखाउब—बैठार

हाथी ! तौ हाथी बैठार दिहिस । हौदा पर से उतर पड़े । दून्हौ हाथन ते कब्जा लै लिहिनि । आदमी एक हाथे म ढाल रोकत हयि, उयि दून्हौं हाथन म कब्जा लिहिन औ उतर परे । औरु जैसी बजरा कैसी बाली नाहीं छाँटति हयि वैसे अंगरेजन का काटिन । धन्न है परमातमा उनका अइसन प्राणी । . . . . अच्छा ।"

साहबदीन जी फिर हाँफने लगे थे । कुछ देर मौन रहकर उन्होंने फिर अपनी बात बढ़ाई, कहा : "तब दुपहर भै कि दून्हौं हाथन से लड़त रहे । तौ सरकार साहेब कहिसि अकि ईका मारा न जाय पर एक गोरा घात किहिस, पीछे ते मारिस । तब दुपहर भर बिन गरदन लहास लड़ी । दूर से सब द्याखैं । तब लहास गिरी नाहीं । अच्छा !"

क्षणिक विराम के बाद फिर बोले : "तउ अंगरेज जंत्री पढ़े रहैं । तब एक औरत मँगाई गै, जब उयि लहास छुयि लिहिस तब गिर पड़े । अच्छा !"

"तब ई अंगरेज तीन पहर बनोबस्त किहिन । चला नाहीं । फिर बनोबस्त किहिन उहौ न चला । फिर तिसरी दाँयि बनोबस्त किहिन तब मुलुक मां कुछ-कुछ बनोबस्त भा । फिर रेल भराइन । जहाँ टेसन है उहाँ बँगला रहा ।

"फिर जितने राजा महराजा रहे उयि कहिन कि हजार गाँव मैं तहसीलत रहेउँ; कोई कहिसि पानसौ मैं तहसीलत रहेउँ । तौ उनका अंगरेज बाँटि दिहिन। कौनो ते एक बिस्वांसी नाहीं लिहिन ।"

साहबदीन जी अपनी बात कहकर फिर सुस्ताने लगे । मैंने पूछा : "जब गदर हुआ तब क्या आप यहीं रहते थे ?"

"जब गदर भै तब मैं जगनेहटा मां रहत रहेउँ । मोर पैदावारी वहैं के है ।"

"ये जगनेहटा है कहाँ ?"

"बरैल का मौजा लागति है ।"

"अच्छा तो आप लोग वहीं रहे ?"

"नाहीं, मोर बाप सबका लैके भिठौली भागि गे रहैं ।"

भिठौली नाम सुनकर मैंने पूछा : "क्या आपने वहाँ बेगम को भी देखा था ?"

"बेगम..........." साहबदीन की आँखें एक बार कहीं दूर भटकीं और फिर चेहरा खिल उठा, भरे मुँह से बोले : "हाँ, द्याखा रहै । हम एक महीना भिठौली माँ रहेन, तब द्याखा रहै ।"

"कैसी थीं" ? मैंने पूछा ।

"बेगम पतरे कद की रहैं । कोई से परदा नाहीं किहिन ।"

"लम्बी थीं, कि ठिगनी ?"

"न बहुत ठिगनी, न बहुत लम्बी।"

"अच्छा काली थीं, या—"

"गोरी रहैं।" साहबदीन जी ने तुरन्त बात काट कर कहा। उनकी पथराई हुई आँखों की टकटकी मानो भूतकाल से बँध गई थीं; "जस अउरत क सील धरम होत है वइसी रहैं। देउता रहैं।"

साहबदीन जी की बातों के सहारे मैं भी भूतकाल को स्पर्श कर रहा था। उनसे मिलकर मेरी वही दशा हो गई थी, जैसे बहुत प्यासे को दो चार घूंट पानी मिलने से होती है। इच्छा होती थी काश कि साहबदीन जी की तरह ही मुझे सत्तावन के नायकों में से कोई मिल जाता, जिससे उस समय के सही वाक़यात सुनने को मिलते। हमारे पास सन् ५७ का इतिहास नहीं है। उर्दू में "क़ैसरुल-तवारीख़" है, "सवानहात-ए-सलातीन-ए-अवध" है, "तारीखे अवध" है—मगर इनमें से एक भी ग्रंथ सत्तावन के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण नहीं प्रस्तुत कर पाता है। मैंने बुजुर्गों से सुना है कि बड़े घरों में, जिनका १८५७ की क्रान्ति से किसी न किसी प्रकार का सच्चा झूठा लगाव था, ग़दर की बातें बस मुँह ही मुँह में की जाती थीं। बहुतों ने अंग्रेजों के भय से पुराने काग़ज-पत्र जला दिये। एक आध जगह ऐतिहासिक मसाला सहेज कर रक्खा गया था, पर दुर्भाग्यवश सन् १९१५ की विध्वंसकारी वर्षा में वे छिपे-ढके कागज पत्र नष्ट हो गये।

साहबदीन जी से वाजपेई जी ने पूछा: "राजा कहाँ गिरे रहैं ?"

"उइ दिन हम साहब क बतावा रहै। पाँच पेड़ आम के हैं, वहैं राजा गिरे रहे। यू ओबरी आय, जेहिका असिल नाँव ओबागढ़ रहै।"

साहबदीन जी से विदा लेकर हम ओबरी के मैदान में, उस स्थान पर गये जहाँ एक क़तार में आम के पाँच पेड़ एक ओर और शीशम के दो पेड़ दूसरी ओर लगे थे। इन्हीं के बीच में वह स्थान है जहां श्री साहबदीन के अनुसार अभिनव अभिमन्यु बलभद्रसिंह ने वीरगति प्राप्त की थी। विगत १० मई के दीपदान के दिये बिखरे पड़े थे। यह स्थान बाराबंकी स्टेशन के पश्चिम में है। इसके पश्चिमोत्तर कोण में रेठ नदी के ऊपर रेल का पुल बना है। लगभग आध मील दूर वह क़ादिरघाट और शाही पुल है, जिसका ज़िक्र साहबदीन जी ने किया था, और जहाँ से रेठ पार कर अंग्रेज़ लखनऊ से इधर आये थे।

थोड़ी देर के लिए मैं अपने को भूल गया। झुटपुटी साँझ मेरी कल्पना के

युद्ध दृश्य को दूर-दूर तक फैले हुए सूने मैदान में उतार लाई। हजारों की संख्या में घुड़सवार और पैंदल सैनिक एक दूसरे से गुथे हुए एक झलक भर के लिये नजर आये। मुझे ऐसा लगा कि तोपों की गरज से धरती लरज़ रही है। जुझारू बाजों और वीरों के रण हुंकारों से बेखुदी बढ़ती चली जा रही है। घेघे वाला लम्बे चौड़े शरीर का अट्ठारह वर्षीय नवयुवक बलभद्र सिंह अपने रण कौशल से शत्रुओं के लिए प्रलय उपस्थित करता हुआ यह गिरा। और देश की आज़ादी के लिए धरती को अपना रक्तदान दे गया। वीर बलभद्रसिंह, तुम्हारा शौर्य इस देश को सदैव प्रेरणा देता रहेगा। तुम्हें शत-शत प्रणाम ! कोटि-कोटि प्रणाम !!

महादेवा

६ जून। हम लोग महादेवा के लिए प्रस्थान कर रहे हैं। मैं पिकअप पर बैठा हूँ। श्री गुप्त कार्यवशात् सामने के घर में किसी से मिलने गये हैं। पान लगाने के लिये बटुआ खोला।

नोट बुक उसी बटुए में रक्खी थी; उसे देख मन दौड़ा कि देखो आज इस कापी में क्या जुड़ता है, और 'कापी' शब्द के ध्यान से एक पुरानी बात याद आ गई। स्कूल में हमारे अंग्रेजीं के अध्यापक इस बात पर बहुत ज़ोर देते थे कि 'कापी' नहीं 'कापी बुक' कहा जाय और कापी बुक तथा नोट बुक में अन्तर माना जाय। परन्तु लड़के, सिले हुए कोरे या रूलदार काग़ज़ों की गड्डी को सदा 'कापी' ही कहते थे। अब तक आम तौर पर लोग नोट बुक या कापी बुक इत्यादि न कह कर बोल चाल में कापी ही कहते हैं। यह शब्द भले ही अंग्रेज़ी का सही, मगर अब तो हिन्दी भाषी जनता का है। और उसका रूप भी स्वतंत्र हो गया। बग़ैर अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा व्यक्ति नोट बुक या कापी बुक शब्दों के अर्थ नहीं समझ पाता परन्तु 'कापी' शब्द का अर्थ वह सही तौर पर जानता है।

विचार आता है कि 'कापी' की तरह ही हमारी बोल चाल की भाषा में 'गदर' शब्द भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व पा चुका है। बोल चाल की भाषा के इस शब्द का अर्थ अब केवल सिपाही विद्रोह तक ही सीमित नहीं रह गया। 'गदर' मचना या 'गदर' पड़ना हमारी बोल चाल के मुहावरे में है जिसका अर्थ भारी उथल-पुथल मचना है। मेरे स्कूल के मास्टर की तरह ही शुद्धता के समर्थकों को 'गदर' शब्द सत्तावनी क्रान्ति के लिये हलका और अपमानजनक प्रतीत होता है। ऐसे विद्वानों की भावना का हृदय से आदर करते हुए भी मैं अब सत्तावनी क्रान्ति को 'गदर' के नाम से पुकारने में न झिझकूँगा।

सत्तावनी गदर के संबंध में डॉक्टर मजूमदार महाशय को आपत्ति है। उनकी मान्यता है कि यह कोरा सिपाही विद्रोह था इसका जनता से कोई लगाव नहीं था, और यह असंगठित और अनियोजित था। अपनी यात्रा के इस पहले ज़िले में ही मुझे महामान्य पंडित प्रवर की यह भभकी झूठी प्रतीत होती है। सत्तावनी क्रान्ति में सिपाही विद्रोह तो था ही, साथ ही जनता भी इसमें पूर्णरूप से सम्मिलित थी, सामन्त वर्ग भी संगठित होकर विदेशी शत्रुओं को देश से बाहर निकालने के लिये प्राणपण से डटा हुआ था। गदर के आरंभ होते समय विभिन्न पूर्वी ज़िलों की सेनायें आ आ कर नवाबगंज में एकत्र हुई थीं। अवध के ताल्लुकेदार-रजवाड़े भी आये थे। ३० जून सन् ५७ को सब ने संगठित होकर चिनहट के मैदान में अँग्रेज़ों को परास्त किया था। उस दिन दरियाबाद में लोगों से गदर के कितने ही ऐसे शहीदों के नाम मालूम हुए जो जनसाधारण के प्रतिनिधि थे।

इस ज़िले में यह आमतौर पर प्रचलित है कि लखनऊ से परास्त होने के बाद बेगम हज़रतमहल बिरजीसक़द्दर को लेकर बाराबंकी ज़िले से होकर भिठौली के गढ़ में पहुँची थीं। इस बात को लेकर कल रात से मेरा मन एक नये दृष्टिपथ पर दौड़ रहा है। यह अब भी मानता हूँ कि वे इतिहासों में उल्लिखित मार्ग द्वारा ही भिठौली पहुँची थीं परन्तु यह भी सम्भव है कि वे लखनऊ या भिठौली में रहते हुये जगह-जगह के दौरे किया करती हों। रसल के कथनानुसार उन्होंने सारे अवध में उत्तेजना भर दी थी।

उन्होंने अंग्रेज़ों को मोर्चा देने के लिये ज़मींदारों के दल संगठित किये थे। इस लिये संभव है कि उन्होंने हज़रत पुर और महादेवा में राजाओं की सभायें की हों। किंवदंतियां कितनी ही ग़लत क्यों न हों फिर भी अपने अन्दर वह आमतौर पर एक बड़ा सत्य छिपाये रहती हैं, यह मैंने अक्सर पर आज़माया है।

बेगम का भिठौली में बैठना ही यह सूचित करता है कि उन्होंने एक ऐसे स्थान को चुना था जो सहसा या, आसानी से जीता नहीं जा सकता था। शत्रु की सेनाओं का वहां तक पहुँचना भी कारेदारद था।

भिठौली रैकवार राजपूतों की गढ़ी थी। बौंडी के हरदत्त सिंह, चहलारी के बलभद्र सिंह, भिठौली के गुरुबख्श सिंह, रुइया के नरपत सिंह आदि सभी प्रमुख सामन्त रैकवार राजपूत थे। बैसवारा राणा वेणीमाधव बख्श के नेतृत्व में संगठित था। भिठौली में बैठकर बेगम सब से सदा निकट सम्पर्क स्थापित कर सकती थीं।

क्या यह बात बेगम की कार्य-कुशलता पर प्रकाश नहीं डालती? स्वयं अंग्रेज़

भी स्वीकार कर चुके हैं कि नवाबगंज में बहराइच और सीतापुर के ज़मीदार लड़े— तब क्या यह सत्य स्वतंत्रता संग्राम का द्योतक नहीं ? सत्तावन का विद्रोह क्या केवल फौजी सिपाहियों तक सीमित था ?

औरों को क्या कहूँ, स्वयं मेरी ही यह धारणा थी कि गदर में भाग लेने वाले सामन्त अपने-अपने स्वार्थों के लिये लड़े, इनका कोई संगठन नहीं था। परन्तु अवध के इन छोटे-बड़े सामन्तों और बिहार के बाबू कुँवरसिंह और अमरसिंह के संगठन को देख कर मेरी पूर्व धारणा ग़लत सिद्ध हो जाती है। महारानी लक्ष्मीबाई के शौर्य और बेगम हजरत महल की कार्य-कुशलता तथा संगठन शक्ति देख कर राष्ट्र के स्वाभिमान में क्या हमारी आस्था नहीं जमती ? मौलवी अहमदुल्लाशाह और तात्या टोपे का हर जगह जा कर लड़वैयों का हुजूम बटोर लेना क्या सत्तावनी क्रान्ति को जन-क्रान्ति सिद्ध नहीं करता ?

मैं इतिहासकार नहीं, इतिहास का पंडित भी नहीं। हाँ अपने देश के इतिहास के प्रति जिज्ञासु अवश्य हूँ। हाल ही में प्रकाशित होने वाले, अपने स्वनामधन्य इतिहासकारों द्वारा लिखित सत्तावनी क्रान्ति के इतिहासों से मेरे मन में बड़ा क्षोभ है। अचानक जमी-जमाई आस्था को धक्का लगने के कारण नहीं, वरन् इसलिये क्षुब्ध हूँ कि हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमानरहित स्वनामधन्य इतिहासकारों ने एक ऐसे सत्य को, जिसका जनचेतना से बहुत गहरा लगाव है, महज़ ऊपरी तौर पर टटोल कर अपना फतवा दे डालने का दम्भ बरता है। कोई भी क्यों न हो, बड़े से बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, एक राष्ट्र के सम्मुख वह अपना झूठा दम्भ लेकर नहीं आ सकता, सत्-विद्रोह को लेकर आना और बात है।

हम लोग रामनगर रुके। मैं यहाँ के एक सज्जन का नाम—ठाम अपने साथ लिख कर लाया था। वे न मिले। रामनगर के राजा के संबंध में भी मालूम हुआ कि बाहर हैं, यद्यपि आज उनके लौट आने की आशा है। इन सज्जनों से मैं भिठौली के संबंध में जानकारी प्राप्त करना चाहता था। खैर, हम लोग कुछ देर के लिए रामनगर ब्लाक के एक अधिकारी महोदय के यहाँ रुके। वहाँ कई लोग थे। गदर बटोरने वाले आदमी से अक्सर लोगों को दिलचस्पी हो ही जाती है। बहाने से लोग बातें करने लगते हैं। एक सज्जन ने मुझे रुदौली के फ़ौजदार शाह का किस्सा सुनाया। ये फ़ौजदार शाह फ़क़ीर दरअस्ल गदर के एक सिपाही थे जो गदर बिखरने पर अपनी तलवार लिये भाग कर रुदौली पहुँच गये थे। कहा जाता है कि तलवार म्यान से निकलने पर शत्रु को

मारे बिना म्यान में नहीं जाती । इसलिये फ़ौजदार शाह की तलवार सदा बाहर ही रही और जब वे मरे तब उनकी वसीयत के अनुसार उनकी तलवार भी उनके साथ ही उनकी कब्र में दफन की गई । अस्तु ।

महादेवा पहुँचे । यह स्थान इस ज़िले में अत्यंत पावन माना जाता है । जन धारणा है कि स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर ने इस मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी ।

हम महन्त जी के द्वारे पहुँचे । उनके मकान का फाटक बहुत बड़ा था । अन्दर जोगिया ग़िलाफ़ की मसनद रक्खे एक सादे वस्त्रधारी पंडित जी विराजमान थे । यही महन्त जी थे । महन्त जी बड़े सरल और सज्जन हैं; देहरादून या हरद्वार की ओर के हैं । भोजन के लिये आग्रह करने लगे । ना कहने पर भी प्रसाद के लड्डू मँगवा कर खिलाये । महन्त जी को महादेवा के गदर संबंधी इतिहास का पता नहीं; बीस-बाईस वर्षों से ही यहाँ रहते हैं । इस स्थान पर महादेव जी की प्रतिष्ठापना के संबंध में उन्होंने कहा : "मैंने स्वयं जाँच कर देखा है । मूर्ति बहुत प्राचीन तो नहीं, फिर भी महाभारत के समय की अवश्य है । महाराज युधिष्ठिर अपने बनवास काल में यहाँ रहे थे, सब पाण्डवगण इनकी पूजा करते थे ।"

पावन क्षेत्र में प्रवेश किया, महादेव शिव के दर्शन किये । यों एक जगह अमली तौर पर भी मैं जाति पाँति और धर्म के पचड़ों से मुक्त मनुष्य हूँ, पर इसके साथ ही साथ मैं जन्म से ब्राह्मण और शैव परिवार का हूँ । मेरे ब्राह्मणत्व ने बचपन में संस्कारवश ऊँच नीच तो जाना पर किसी को नीच कह कर अपमानित करना नहीं जाना, मनुष्य से घृणा करने का संस्कार नहीं पड़ा । मेरा शिव किसी को सहसा अशिव नहीं मानता और जब मानता है तो उसके बुरे कार्य को ही। इसलिए जाति-पाँति-धार्मिक आस्था मेरी राह का रोड़ा कभी नहीं बन पाई । खैर, यह तो सफ़ाई देते हुये प्रसंग से बाहर चला गया----कहना यह चाहता था कि मैं आस्था से शैव हूँ । भोले भण्डारी को ध्यान में लाते ही मेरा मन ऊँचा उठता है, भर जाता है ।

फिर अपने आपे में आते ही कलम कापी सम्हाल ली । वहाँ के प्रधान पुजारी पंडित महावीर प्रसाद अवस्थी से महन्त जी ने इतनी देर में शायद बात कर रक्खी थी; अवस्थी जी तुरन्त बोले : "महादेवा में गदर का बड़ा इतिहास है । आइये बिराजिये, आपको विस्तार से सुनाता हूँ ।

"हाँ, तो जब चिनहट का जुद्ध समाप्त भया तो ये लोग--बेगम, हरदत्त सिंह बौंड़ी, राजा देवीबक्स गोंडा वाले, राजा गुरुबकस सिंह रामनगर वाले—ये सब यहीं

पर आयके एकत्र भये। राम चौतरा पर जहाँ रामलीला होती है ये सब जुटे और आगे का उपाय सोचा कि अब कैसे जुद्ध चलावैंगे।

"राजा देवीबकस गोंडा वाले को बाबा पर बिसेस भक्ति थी। मंदिर के अन्दर ये पत्थर का काम उन्होंने ही बनवाया और गौरीशंकर पण्डा के पूर्वज शिवगुलाम पण्डा को पाँच सौ बीघा भूमि संकल्प में दी महाराज। और ये चाँदी के द्वार हैं सो रामनगर के महाराज उदित नारायण सिंह ने लगवाये। इनके दादा ने गदर लड़े थे महराज। गुरुवकस सिंह राम नगर वाले रहे जिनके सतैसी के किले* में बेगम का बास भया था। रामनगर किला तोपन से उड़ाय दिया, यहाँ से होके ही अँगरेज लोग गये थे। यहाँ भी गोला वारी हुआ। यहाँ से जायके सतैसी का किला भी तोप से उड़ाय दिया। घाघरा के आरपार रामनगर के दो किले रहे महाराज तौ, बचाने के लिये रामनगर के राजा गुरुबकस सिंह के बेटे सर्वजीत सिंह ने कहा कि मेरा पिता से बटवारा हो गया है। पिता सतैसी में रहते हैं। मैं राजभक्त हूँ। फिर भी आपने हमारे किले को नास कर डाला। इस प्रकार तब से ही रामनगर के राजा सर्बजीत सिंह हुइ गये। राजा गुरुबकस भाग गये। गदर ठंडा होने पर आये पर राजा नहीं माने गये।

"तौ राजा सर्वजीत सिंह की कादिरजहां नाम की एक बेगम रही। राजा साहब ने प्रेमबस होकर अपना पूरा राज्य उसके नाम लिख दिया। तब उनके पुत्र राजा उदित नारायण सिंह ने मुकदमा लड़ा और अंत में जीते महराज। उन्होंने पाँच गाँव कादिरजहां बेगम को दिये और कहा कि आप हमारी माता हैं, आप के गुजारे के निमित्त यह देता हूँ। मुकदमा जीतने के उपलक्छ में उन्होंने मंदिर के किवाड़ों पर चाँदी चढ़वाई।

"बाबा का बड़ा माहात्म है महाराज। इनका प्राचीन नाम शैल मल्लिकार्जुन है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में यह एक पीठ है। यह महादेवा है महाराज। इसकी राजधानी रामनगर सो प्राचीन नाम शैलकनगर था महाराज। फिर कोई काल ऐसा आया कि शंकर भगवान का मंदिर इस स्थान से लुप्त हो गया। फिर बड़े समय के उपरान्त एक बड़े पहुँचे भये महातमा इस स्थान पर आये और रहने लगे। तौ एक दिन स्वप्न में उन्हें बाबा ने कहा कि मैं पण्डित लोधेराम अवस्थी के खेत में हूँ। मुझे निकालो। पण्डित लोधेराम हमारे पूर्वज थे महाराज, बड़े तेजस्वी शुद्ध बिद्वान ब्राह्मण थे महाराज। तौ उनसे महातमा ने कहा। फिर प्रमाण लैके खेत खुदाया तौ

---

*सत्ताइस इलाकों का क्षेत्र सतैसी कहलाता है। भिठौली का किला सतैसी क्षेत्र का प्रमुख गढ़ था, अतः सतैसी का किला भी कहा जाता था।

बाबा प्रकट भये । इसी से यह स्थान लोधेश्वर भी वाजता है । यहाँ एक पुजारी परिवार है पण्डित लोधेराम अवस्थी का और दूसरी महन्त जी की गद्दी है; चढ़ावा आधा-आधा बँटता है । ये इस स्थान का इतिहास है और बाबा का बड़ा चमत्कार है महाराज, दूर-दूर से हजारों यात्री आता है ।"

पुजारी जी तथा महन्तजी से विदा लेकर हम महादेवा से चले ।

भिठौली जाने की इच्छा मन में ही रह गयी । मार्ग दुर्गम था । एक नाला और घाघरा पार करने की समस्या थी, फिर चार मील का रेतीला मैदान था । पिक-अप के वहाँ तक पहुँचने में असुविधा थी । मैं नाव से घाघरा पार कर पैदल चलने को प्रस्तुत था, गुप्तजी भी जोश दिखाने लगे पर...पर न जा सके ।

हैदरगढ़ भी न गया । वहां नेपाल के राणा जंगबहादुर और उनकी गोरखा सेना से बाराबंकी ज़िले वालों का ज़ोरदार मोर्चा हुआ था । वहाँ से भी सामग्री मिलने की पूरी सम्भावना थी । पर इच्छा दबा गया । मेरे सामने स्वेच्छा से निश्चित की हुई एक अवधि है जिसमें मुझे अपना काम पूरा करना है । ज्ञानार्जन की धुन भी है, रोज़ की रोटी की व्यवस्था का ध्यान भी है । मैं यथासम्भव सब को साध कर चलता हूँ । यही सब सोच समझ कर भिठौली और हैदरगढ़ का प्रोग्राम काट दिया ।

फिर भी अपनी सोद्देश्य अवध यात्रा के प्रथम चरण पर मुझे यह विश्वास हो गया है कि सन् सत्तावन से संबंधित सौ वर्ष पुरानी बातें अभी एक दम से लुप्त नहीं हुईं । सबसे बड़ी बात तो यह है कि बाराबंकी ज़िले ने बलभद्र सिंह को अब तक बड़ी शान से जीवित रक्खा है । बलभद्र सिंह चहलारी के होकर भी नवाबगंज, बाराबंकी के अमर नायक हैं ।

सोल्जर बोर्ड के विश्रामगृह में, जहाँ मैं ठहरा था, एक सज्जन ने मुझे पीतल का एक वड़ा सा गोल तमगा लाकर दिखाया, कहा: "आप ग़दर की हिस्ट्री बटोर रहे हैं, यह तमगा भी ग़द्दर का ही है । जो सिपाही अँग्रेज़ो फ़ौजों के साथ लड़कर मरे थे, उनके घर वालों को इनाम में मिला था ।" दिवंगत देशद्रोहियों के पट्टे पर लिखा है, "वह स्वतंत्रता और स्वाभिमान के लिये मरा ।" यह भी अच्छा मज़ाक़ रहा ।

दूसरे दिन दरियाबाद में भारत सेवक समाज का दीक्षान्त समारोह था । बाराबंकी के उत्साही, साहित्य तथा इतिहास प्रेमी युवक डिप्टी कमिश्नर श्री शिवप्रसाद पाण्डेय के आग्रह से उसमें सम्मिलित होने के लिये रुक गया ।

शाम को गदर के वीरों का शानदार जलूस निकला । एक जगह पार्टी हुई । क़िले

के मैदान में जलसा हुआ। मुझे मतलब की एक सूचना और मिल गई। फ़तेहपुर तहसील (ज़िला बाराबंकी) के पुराने कांग्रेसी नेता श्री क़यामुद्दीन ने बतलाया कि बेगम हज़रत महल फ़तेहपुर होकर गईं थीं। उनके उस्ताद, मौलवी अबुल कासिम के वालिद, फ़तेहपुर में ही रुक गये। अशर्फ़ियों की गाड़ियां वहीं रह गईं।"

श्री लक्ष्मीसागर गुप्त भी फ़तेहपुर के ही हैं बोले, "हमारे यहाँ एक नीम के पेड़ पर तिरासी फाँसियां दी गई थीं।

दरियाबाद से ही मैं फैजावाद की गाड़ी पर सवार हो गया।

फैजाबाद

फैजाबाद, ८ जून। फैजाबाद का नाम गदर के इतिहास में मौलवी अहमदुल्ला शाह के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया है। यद्यपि यह मार्के की बात है कि मौलवी अहमदउल्ला शाह फ़ैज़ाबाद नगर या ज़िले के निवासी नहीं थे।

इन्तज़ामुल्ला शाहबी द्वारा संकलित 'बेगमात-ए-अवध के ख़ुतूत' में एक पत्र है जिसमें वाजिदअली शाह की एक पत्नी शैदा बेगम ने अपने पति को लिखा है--"घास मंडी में मौलवियों का जमाव है। सुना है कि एक सूफ़ी अहमदउल्ला शाह आये हुये हैं। नवाब चीना - टीन के साहबजादे कहलाते हैं। आगरे से आये हैं। ये भी सुना है कि उनके हज़ारहाँ मुरीद हैं और वो पालकी में निकलते हैं। आगे डंका वजता होता है पीछे अजदहाँ बड़ा होता है।"

सवान-हात-ए- सलातीन-ए-अवध के अनुसार—"अहमदुल्ला शाह फ़क़ीर रहने वाला मन्दराज या दक़न का कई बरस से लखनऊ में घसियारी मंडी में रहा करता था। मशहूर नक्क़ारा शाह इत्तिफ़ाक़न किसी इरादे से फ़ैज़ाबाद गया, सरा में उतरा था। किसी वरकन्दाज़ से फ़साद किया। क़ैद होकर नील की पल्टन में था। जब हंगामा बरपा हुआ, फ़क़ीर समझ कर छोड़ दिया गया। पहले फ़ौज ने चाहा इसे अपना अफ़सर कर हमराह सरपरस्त हों, लेकिन इसकी बातों से डरे कि हिन्दू से नफ़रत रखता है, इन्तक़ाम हनूमान गढ़ी के वास्ते भी कहता है, इससे हिन्दू मुस्लिम सूरत फ़साद निकले इससे अफ़सर न किया।"

मौलवी अहमदउल्ला शाह की प्रारंभिक जीवनी के संबंध में बहुत सी बातें प्रचलित हैं। कोई इन्हें टीपू सुल्तान का संबंधी बतलाता है, कोई इनका मूल स्थान चिंगलपटम् कोई अरकाट बतलाता है। लखनऊ के बड़े बूढ़ों में अब तक यह रवायत चली आती है कि मौलवी साहब की सवारी के आगे निशान डंका वजता चलता था और वे डंका शाह कहलाते थे। इनके सैकड़ों मुरीद थे। कहते हैं कि इनके चेले जनता के सामने अंगारे चबाने का प्रदर्शन करते थे; कहते थे कि अंगारे चबायेंगे

और आग उगलेंगे। यह भी सुनने में आया है कि ये अयोध्या की हनुमान गढ़ी पर जेहाद अथवा धर्मयुद्ध कराने के इरादे से यहां आये थे।

जो हो, मुझे यह बात तो प्राय: निश्चित् सी ही लगती है कि ईसाइयों की हुकूमत के प्रति उनका विरोध धार्मिक वैमनस्यता के कारण ही था। हिन्दुओं के प्रति हो सकता है कि आरंभ में इन्हे लगाव न रहा हो, परन्तु बाद में उनकी नीति बदल गई थी। वे अंग्रेज़ों के समान शत्रु हिन्दू रजवाड़ों के साथी भी हो गये थे। बेगम हज़रत महल की सरकार से भी उन्होंने जहाँ तक अंग्रेज़ों को हराने का प्रश्न था, समझौता किया। राणा वेणीमाधव वख्श से उनका पत्र-व्यवहार चलता था। फ़ैज़ाबाद रायबरेली, सीतापुर, लखनऊ और उन्नाव के ज़िलों में मौलवी साहब के तूफ़ानी दौरे हुआ करते थे। कहते हैं कि इनके भाषणों से आग बरसती थी। जनता में इनकी चामत्कारिक दैवी शक्तियों की बड़ी धूम थी। अस्तु।

फ़ैज़ाबाद में मौलवी साहब के संबंध में जानकारी बटोरने के अतिरिक्त अयोध्या की जन्मस्थान मस्जिद को लेकर गदर से तीन चार वर्ष पहले जो मारकाट मची थी, उसके संबंध में भी जानना चाहता था। सन् १८५३ के सांप्रदायिक युद्धकाण्ड में अवध के उन अनेक हिन्दू सामन्तों ने भाग लिया था जो बाद में हरा झंडा लेकर बहादुरशाह और बेगम हज़रत महल के नाम पर अंग्रेज़ों से लड़े थे। यह कम आश्चर्य की बात नहीं, साथ ही उत्साहवर्द्धक भी है।

प्रात: काल अयोध्या पहुँचा। अयोध्या ऐतिहासिक खंडहरों की वस्ती है। खंडहरों के ऊपर ही आज के अधिकांश धार्मिक स्थान बने हैं।

राम की अयोध्या का यह ध्वस्त रूप देखकर मेरा मन कुछ क्षणों के लिये व्यथित हो गया।

अयोध्या का प्राचीन वैभव वाल्मीकीय-रामायण में इस प्रकार देखने को मिलता है; "सरयू नदी के किनारे; धन धान्य से भरपूर दिन दिन खूब बढ़ने वाला कोशल नाम का बड़ा प्रदेश है। उस प्रदेश में सुप्रसिद्ध महाराज मनु की बसाई अयोध्या नगरी है। (अयोध्या का अर्थ है जिसके साथ युद्ध न किया जा सके।) यह नगरी बारह योजन (अड़तालीस कोसों) लम्बी और तीन योजन (बारह कोस) चौड़ी है। उसकी बड़ी बड़ी सड़कें और चारों ओर के बड़े-बड़े दरवाज़े बड़ी सुघराई से बनाये गये हैं। उसके भीतर की सड़कें सुन्दर सुन्दर फुलवाड़ियों से सजी हुई हैं। वहां सड़कों पर ख़ूब छिड़काव होता रहता है। देश को बढ़ाने वाले महाराज दशरथ ने उस नगरी को इन्द्र की अमरावती पुरी की तरह बसाया। वह किवाड़ और बंदनवारों से

सुशोभित थी । उसकी दुकान सुन्दर सजी हुई थीं । वहाँ सब तरह की कलें और अस्त्र-शस्त्र मौजूद रहते थे; सब प्रकार के शिल्पकार मौजूद थे । सूत और मागधों से संयुक्त तथा बड़ी सुन्दर चमकती हुई ऊँचो नीचो अटारियों और ध्वजाओं से अयोध्या शोभित थी । वहाँ सैकड़ों शतघ्नी (एक प्रकार की तोप) शस्त्रादि रक्खे रहते थे । वहाँ पर नाचने, गाने वालों की कमी न थी । उसमें अमराई से और साखुओं से संयुक्त बग़ीचे थे । अगाध खाई से घिरी रहने के कारण वह सर्व साधारण के लिए दुर्गम थी । शत्रुओं की दाल तो उसमें गल ही न सकती थो । वह घोड़े, ऊँट इत्यादि पशुओं से भरी हुई थी । सामन्त नरपति कर लिये हाज़िर रहते थे । वह नाना देशवासी व्यापारियों से सुशोभित थो । रत्नों से बनी हुई पर्वताकार अटारियां उसकी शोभा बढ़ा रही थीं । उसमें स्त्रियों के बड़े सुन्दर क्रीड़ागृह हैं, कूटागार तो अमरावती के तुल्य सुशोभित हैं । उसके गृह समूह अत्यन्त दृढ़ और समभूमि पर बने हुए हैं । उसमें शिल इत्यादि उत्तम तण्डुल और ऊख के रस के समान मीठा जल भरा रहता है । वहाँ नगाड़े, मृदंग, वीणा और ढोलक बजते रहते हैं । अयोध्या, तपस्या से प्राप्त सिद्धों के विमान की तरह है । उसके सुन्दर भवनों में श्रेष्ठ पुरुष रहते हैं ।"

अयोध्या का एक मनोहर वर्णन कालिदास ने भी किया है—"अयोध्यापुरी क्षत्रियों के तेज की शमी, धनधान्य से पूरित दिव्य नगरी ऐसे जान पड़ती थी मानो भोग के भार से वह स्वर्ग से पृथ्वी तल पर उतर आई हो ।"

अथर्ववेद के द्वितीय खण्ड में लिखा है — "देवताओं की बनाई अयोध्या में आठ महल, नवद्वार और लौहमय भंडार हैं, यह स्वर्ग की भाँति समृद्धि सम्पन्न है ।"

चीनी यात्री फाह्यान ने साकेत का चीनी अनुवाद शाची किया है । वह लिखता है—"यहाँ से चलकर तीन योजन दक्षिण पूर्व शाची का विशाल राज्य मिला" । उसने भी इसे बौद्धों का एक महत्वपूर्ण तीर्थ लिखा है । कहते हैं कि जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों में से बाईस इक्ष्वाकुवंशी थे और उनमें सबसे पहले तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव जी और चार अन्य अन्य तीर्थंकरों का जन्म यहीं हुआ था । बौद्धों का भी यह एक मान्य तीर्थ है । महायान सम्प्रदाय का गुरु वसुबंधु पुस अयोध्या में रहता था । भगवान तथागत् ने यहाँ अंजनबाग में बौद्धमत के कुछ सूत्रों का उपदेश दिया था । बौद्ध ग्रंथों में अयोध्या को साकेत और विशाखा कहा है । दिव्यावदान में साकेत की व्याख्या यों की गई है:—

"स्वयमागतं स्वयमागतं साकेत साकेत मिति संज्ञा संवृता ।" अर्थात् "यह आप ही आया, आप ही आया, इसीलिये साकेत नाम पड़ गया ।"

जब से बाबर ने विक्रमादित्य द्वारा बनवाया हुआ राम जन्म स्थान मंदिर तोड़ा तब से वहाँ बराबर अशान्ति बनी रही। हिन्दुओं का प्रबल पराक्रम और विरोध देख कर अकबर ने पुराने मंदिर के खंडहर पर मस्जिद के पास ही एक चबूतरा बना कर भगवान राम की मूर्ति प्रतिष्ठित करने की आज्ञा दे दी थी। औरंगज़ेब की धर्मान्धता ने फिर से आग भड़का दी।

नवाव वाजिदअली शाह के समय में वहां बहुत बड़ा झगड़ा उठ खड़ा हुआ। अवध गज़ेटियर के अनुसार २० जून सन् १९०२ ई० के 'पायनियर' में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसके अनुसार झगड़े की जड़ हनुमानगढ़ी का एक बैरागी था। लिखा है कि उस बैरागी को हनुमान गढ़ी के महन्त ने किसी कारणवश क्रुद्ध हो अखाड़े से निकाल दिया। वदले की भावना के कारण अपना धर्म परिवर्तित कर वह मुसलमान हो गया। लखनऊ आकर उसने यह अफवाह फैलाई कि बैरागी लोग मस्जिद को भूमिसात करने का आयोजन कर रहे हैं। अमेठी निवासी एक फ़क़ीर मौलवी अमीर अली यह ख़बर सुन कर उत्तेजित हो उठा। वह उन दिनों लख़नऊ में ही रहता था। उसने जेहाद की घोषणा कर दी। 'पायनियर' में प्रकाशित लेख का अंग्रेज़ लेखक कहता है कि वाजिदअली शाह ने छिपेतौर पर उसे उकसाया और जाहिरातौर पर फ़ैजाबाद से इस संबन्ध में सरकारी रिपोर्ट मंगवाई। लखनऊ में अपना काम बनता न देख कर मौलवी अमीर अली अमेठी गया और मुसलमानों को उत्तेजित कर जेहाद के नाम पर उसने एक बहुत बड़ी सेना एकत्र कर ली। वाजिदअली शाह ने यह सुन कर बशीरुद्दौला को अमेठी मौलवी को समझा बुझा कर लौटा लाने के लिये भेजा। मौलवी मुजाहिदीन की सेना लेकर आगे बढ़ता ही चला गया। तब वाजिदअली शाह ने रेजीडेन्ट जेम्स आउट्रम से सहायता मांगी, तथा कुछ मुफ्ती—-धार्मिक उपदेशक—-जेहाद व्रतधारी धर्मांध जनता को समझाने बुझाने के लिए भेजे। ये मुफ्ती लोग मुजाहिदीन की संख्या घटाने में बहुत सफल हुये। मौलवी अमीरअली तब भी न माना। कर्नल बर्लो की कमान में एक सेना भेजी गई। मौलवी के दो हजार अनुयाइयों से सेना की मुठभेड़ हुई। मौलवी मारा गया। यह घटना गदर से चार वर्ष पहले की है।

मैंने सोचा कि हनुमानगढ़ी के महन्त से पूछने पर शायद उक्त दंगे के इतिहास के सम्बन्ध में कोई बात मालूम हो, अतः सबसे पहिले हनुमानगढ़ी ही गया। हनुमान गढ़ी दूर से देखने में सचमुच धर्मस्थान के बजाय किसी राजा का छोटा क़िला मालूम पड़ता है। गढ़ी के नीचे बसी हुई दूकानों की छत पर आज भी

जगह-जगह तोपें दिखलाई देती हैं जो गढ़ी के अन्दर से शत्रुओं पर गोलाबारी करने के लिये जमाई गई थीं।

कुछ वर्ष हुये, दक्षिण के एक रामभक्त तमिल ब्राह्मण बड़े भाव से अयोध्या दर्शन करने आये थे। अपनी उक्त यात्रा के सम्बन्ध में उन्होंने मुझसे कहा था कि अयोध्या तो राम भगवान् की नगरी लगती ही नहीं। वहां क़ब्रें हैं और खंडहर हैं। अपने जन्मस्थान में भगवान् मस्जिद के बाहर एक चबूतरे पर फूस की बनी झोपड़ी में रहते हैं और उनके परम सेवक हनुमान जी ने अपने लिये किला बनवाया है।

मैं मानता हूँ कि राम-राम रटने वाले इस महाद्वीप से विशाल देश के निवासी को अयोध्या आकर बड़ी ठेस पहुँचती होगी—मुझे भी लगी। भारत के प्रमुख प्राचीन तीर्थों में अयोध्या से अधिक मनहूस लगने वाली नगरी शायद और दूजी नहीं है। परन्तु हनुमान गढ़ी के लिए स्वयं कपीन्द्र को कोई दोष नहीं दिया जा सकता। मुसलमानी काल में वैष्णव बैरागियों के अखाड़े सैनिकों के अड्डे हो गये थे। राम, कृष्ण, विष्णु अथवा अलख नाम जपने वाले सन्त समाज में इस सैनिक प्रथा का समावेश होना ऊपरी दृष्टि से देखने पर सचमुच अजीब ही लगता है, परन्तु मैं उसे उस काल की एक आवश्यक और प्रगतिशील राष्ट्रीय शक्ति मानता हूँ। झूठा राम, श्याम जपकर आक्रमणकारियों, आतताइयों द्वारा अपना सर्वनाश देखते बैठे रहना निहायत शर्म की बात होती। कायर होना अहिंसा की निशानी नहीं। नाम जपने वाले सन्तों का ही एक दल बाद में सिक्ख जाति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बैरागी इस प्रकार जाति नहीं बने हों, उनमें जमातें बहुत सी बन गईं। संत सम्प्रदाय जातिपाँति में विश्वास नहीं करता था। इसी कारण सवर्ण हिन्दू सदा उनका विरोध करते आये। जाति पाँति तोड़ने वाले बुद्ध, महावीर से लेकर गांधी तक हर महात्मा को सवर्णों का प्रबल विरोध सहना पड़ा है। जहां इन संतों के अनुयायी बड़ी संख्या में हो गये वहां सनातनियों ने उनके साथ रोटीबेटी, का व्यवहार छोड़ दिया। बौद्ध, जैन, सिक्ख, बंगाल की बोष्टम जाति आदि ऐसे ही अपने काल के जाति पाँति विहीन प्रगतिशील वर्ग थे जो आगे चलकर स्वयं भी रूढ़ियों में बँध गये और अपना प्रगतिशील रूप खो बैठे। साधु बैरागी चूंकि परिवार रहित होते थे इसलिये वे एक जाति तो न बन सके परन्तु कर्तव्यवश उपजी हुई उनकी सैनिक भावना रूढ़ होकर एक प्रकार की गुण्डागीरी अवश्य बन गई। इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि मध्यकाल में ये सैनिक बैरागी

अखाड़े सामन्तों की आपसी लड़ाइयों में किराये के सिपाही बनकर जाया करते थे। अस्तु।

हनुमान गढ़ी के मालियों और दक्षिणा के लालच में दर्शन कराने वाले बम्हनों की साँसत से निकल कर ऊपर पहुँचा। हनुमान जी के दर्शन किये। वहां हर दिन बड़ी भीड़ रहती है। अनेक दक्षिण भारतीय स्त्री पुरुष भी वहां दर्शन कर रहे थे। उन्हें देखकर मुझे अपने तमिलनाडुवासी मित्र की बात याद आई, "रामचन्द्र जी झोंपड़ी में रहते हैं और उनके सेवक हनुमान जी ने किला वनवा रक्खा है।" वह बात याद कर हँसी आ गई, साथ ही तुलसीदास जी की 'राम ते अधिक राम कर दासा' वाली उक्ति भी।

वज्राङ्ग के मन्दिर के सामने ही एक बड़ा भारी दालान था जिसके बीचो-बीच पक्का मंच था, उस पर गद्दी लगी थी। गद्दी खाली थी, वृद्ध महन्त जी धरती पर बैठे थे। मैंने उनसे अपना प्रश्न निवेदन किया। वे बोले : "यहां साधू लोग रहता है, भजन करता है; इतहासफितहास के प्रपंच में नहीं पड़ता।"

मैंने देखा यों शायद उत्तर न मिले, थोड़ी धर्म-कर्म की बात छेड़ी। महन्त जी उसमें भी रस न ले सके, बोले : "हमारा साधू सन्त का धरम करम यही है कि सरजू जी में नहाया और राम का नाम लिया।"

"यहां कितने साधू हैं महाराज ?"

बोले : "पाँच सौ।"

मैंने फिर पूछा—"आपका इस गढ़ी में कबसे निवास है ?"

बोले : "हम साधू लोग बरस दिन महीना नहीं गिनता।"

"फिर भी——?"

"चालीस पैंतालीस बर्स हो गया होगा।"

मैं फिर अपनी बात पर लौट आया, पूछा : "यहां के कुछ पुराने कागज़पत्र तो होंगे ही, उनसे इतिहास की जानकारी हो सकती है।"

महन्त जी ऊबी हुई मुद्रा बनाकर कहने लगे : "कह तो दिया बाबा, हम साधू लोग हैं, कागज-बागज नहीं रखते। बस ये इतहास है कि जब यवनों का राज रहा तब यह जमीन माफी मिली थी।"

मैंने देखा कि वैराग्य की बालू से तेल नहीं निकलेगा। इसलिये उन्हें प्रणाम कर उठ खड़ा हुआ।

अयोध्या में उस दिन गदर सम्बन्धी जानकारी प्राप्त न हो सकी। जिन दो

सज्जनों से कुछ मिलने की आशा थी उनमें से एक फ़ैजाबाद चले गये थे और दूसरे किसी बारात में।

फैजाबाद ज़िले में मेरा पहला दिन था, अतः मैंने यह तय किया कि अयोध्या में इधर-उधर अँधेरे में ढेले मारने के बजाय फ़ैजाबाद नगर में पहले सहज सुलभ जानकारी प्राप्त कर लेना उचित होगा। अतः अयोध्या पर्यटन कार्य दूसरे दिन के लिये स्थगित कर लौट आया। सूचना-विभाग के वृद्ध ड्राइवर बड़े ही भले व्यक्ति थे, रास्ते में बोले : "साहब जी महराज, अजुध्या जी में आपके मतलब का मसाला नहीं मिला। क्या कहें हमको बड़ा ही दुःख हो रहा है। फैजाबाद में आप प्रियादत्तराम साहब जी से चलकर मिलिये, वो बड़े आदमी हैं, उन्हें मालुम होगा। ददुआ साहब अजुध्या जी के राजा भी सायद बताय सकेंगे। साहब जी महराज, आप इत्ती दूर से हमारे यहां आये हैं, ग़दर की बातें तो आपको जरूर मिलनी चाहिये।"

ड्राइवर महोदय की सहानुभूति मुझे स्पर्श कर गई थी। मैंने कहा : "आप मुझे जहाँ ले चलेगें, चलूंगा।"

महाराज अयोध्या की कोठी पर आये। उनके यहां एक कोई उच्चाधिकारी पंडित जी हमसे मिलने आये। वे सज्जन बोले : "हमारे यहां इस तरह के कोई काग़ज़ वग़ैरह नहीं हैं। राजा साहब की जानकारी इस बाबत में कोई ख़ास नहीं है।"

यहां से चले। एक वकील साहब के यहां पहुँचे। वे कार पर बैठकर कचहरी के लिये निकल ही रहे थे, बोले : "आप कचहरी आ जाइये। राजा मानसिंह के खान्दानी एक वकील साहब हैं उनसे मुलाक़ात करवा दूँगा।"

फिर एक दूसरी जगह पहुँचे, वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। मैंने देखा कि राम जी की अयोध्या मेरी झोली में अब तक कुछ भी नहीं डाल पाई, परन्तु जब एक काम का निश्चय कर निकला हूँ तब उसे बिना साधे तो नहीं ही लौटूंगा। तय किया कि अब अँधेरे में ढेले मारूँगा, जो भी पुराना चेहरा नज़र आयेगा उसी को टोक कर पूछूंगा। गाड़ी से उतर पड़ा और सफ़ेद बालों वाले चेहरे तलाशने लगा। चौक के पास ही एक बुज़ुर्गवार निकले—बड़ी बड़ी सफ़ेद झुकाऊ मूँछें, भारी बड़हल सी ठोढ़ी, सिर झुकाये मगर नाक की सीध में चलने का अन्दाज़ लिये हुये। मैं लपक कर उनके पास पहुँच गया। मेरे टोकने पर बुज़ुर्गवार यों थमे जैसे तेज़ स्पीड में जाती हुई मोटर सहसा ब्रेक लगाये जाने पर झटके के साथ रुकती है। बोलेः "ग़दर ! हाँ जनाब, सुना बचपन में बहुत कुछ था मगर अब

याद नहीं। मेरी उम्र अस्सी-बयासी की है। अब 'मेमोरी' (स्मृति) साथ नहीं देती। खैर, एकआध याद है सुनाता हूँ।" कह कर वे फिर तेज़ी से आगे बढ़े, सड़क पार कर सामने एक दाँत के डाक्टर साहब की दूकान पर चढ़ गये। मैं उनके साथ ही था। डॉक्टर साहब पेशेन्टों के अभाव में मेज़ पर ताश बिछाये पेशेन्स खेल रहे थे। पंडित सूरजकिशन गंजूर (बुज़ुर्गवार का शुभ नाम) ने एक कुर्सी खींची, डॉक्टर साहब की मेज़ सेसटा उनकी ओर पीठ कर बैठ गये और बोले : "हाँ साहब, तो खोलिये अपनी कापी ? मैं लिखाता हूँ।......एक बुढ़िया थी। उसका एक लड़का फ़ौज में नौकर था। उसे रात में पता चला कि कल ग़दर होगा। बस जनाब वो घोड़ा दौड़ाता हुआ अपने घर पहुँचा और अपनी वालिदा से जा के चुपके से कहा कि किसी से कहना मत, घर का मालमता ले के और मेरे छोटे भाई को ले के निकल जाओ। मगर बुढ़िया तो बुढ़िया ठहरी, उसके पेट में बात न पची। कहीं इधर मूँ उठा के कहा कि अरी फ़लानी, कुछ सुना तूने, कल लूट पड़ेगी; कहीं उधर मूँ उठा के कहा कि अरी जान माल बचाना हो तो बचा ले। इस तरह जनाब उसने मुहल्ले भर से कह दिया और अपना मालमता ले, कोयला पीस उससे कपड़े काले मैले कर, फटे हाल बनकर, अपने छोटे लड़के को साथ लेकर चली। चलते चलते रात बीत गई। ज़रा कुछ उजाला हुआ तो जहाँ पहुँची वहीं एक दरख्त के नीचे लड़के से गड्ढा खुदवा कर माल गड़वाया। पड़ोसिनों ने भी अपनी जमा-पूँजी सब इसी बुढ़िया को सौंप दी थी, वह भी रक्खी। इतने में लड़के ने कहा कि अम्मा, बादशाह से जो मेरे वालिद याने पिता को मोतियों का हार इनाम में मिला था वो कहाँ है ? सुनते ही माँ को ग़श आ गया। होश आने पर कहा कि मुझसे भारी भूल हो गई और——वही तो एक क़ीमती चीज़ है अपने पास। मगर खैर, भगवान को यही मंजूर होगा।

"खैर जनाब बुढ़िया तो बैठ रही मगर बेटे ने कहा कि फ़िक्र न करो, मैं लाता हूँ। माँ ने बहुत रोका मगर वह न रुका। कपड़े उतार एक लगोंटी लगा पागल सा बकता हुआ चला। तो जनाब जब वो शहर फ़ैज़ाबाद में आया तो लूट-पाट शुरू हो चुकी थी। लोगों ने इसे भी रोकाटोका, मगर पागल समझ के छोड़ दिया। और यहां का ये हाल था जनाब कि घर और शहर सब वीरान ! बस सिपाही गोरे और काले पीले (गाली) सब मेल के; जिधर देखिये, कोई घरों में लूटने के लिये घुस रहे हैं तो कोई लूट के निकल रहे हैं जनाब। और अजब खौफनाक हंगामा कि ओफ़ ! ओफ़. . ! और उसमें यह पागल बना बुढ़िया का लड़का भी।

सिपाही पकड़ें तो दूसरे सिपाही कहें कि अमा पागल के साथ तुम भी पागल होते हो ? चलो आओ । औ वो लड़का कभी मुँह चिढ़ा के 'ए--ए' करे, कभी गाली दे, उँगलियां नचाये, कभी खुद नाचे--इस तरह वह जनाब कश्मीरी का लड़का अक्लमन्द, ज़हीन, चतुराई से अपने घर पहुँच गया । × × ×

"अब साहब देखिये मुझे जाना है। मैं खाना खा के उठा था अभी क़ुल्ला भी नहीं किया । ख़ैर ! क़िस्सा मुख्तसिर ये कि जनाब वो अपने घर गया और वो हार जहां गड़ा था खोद के निकाला और लँगोट में छिपा के फिर वैसे ही सिड़ी बना, कोयले मिट्टी से बदरंग बना; बकते गाते अपनी मां के पास पहुँच गया । तो उसकी मां बोली कि बेटा, मेरा तो तेरे पीछे रोते-रोते बुरा हाल हो गया । हार से हैसियत है मगर हैसियत तेरी जान से ज्यादा थोड़े ही है । × × × ख़ैर, तो जनाबेवाला अब मैं जाता हूँ । मैंने अभी कुल्ला नहीं किया है ।"

पंडत साहब कुर्सी छोड़ कर उठ खड़े हुए और खटाखट दूकान से नीचे उतर गये । मैं भी अपना बस्ता सँभालने लगा । आधी सड़क से वे फिर लौट आये, दूकान पर चढ़ कर फरमाया; "हां साहब, आख़िरी बात तो रह ही गई..."

उनके आगे की बात कहते कहते बिजली की-सी फुरती से मैं तैयार हुआ और लिखना शुरू किया--"कि जब ग़दर, यानी कि वो क्या नाम कि गदर 'सब्साइड' (दबा) हुआ तो बुढ़िया घर लौट के आई । सब औरतों ने चच्ची, दादी, बुआ कह के घेरा, कहा, हमारे ज़ेवर लाओ। बुढ़िया बोली किसी को नहीं दूँगी । अरे, अभी आई हूँ, दम फूल रहा है और तुम लोग जान खाये जा रही हो । ख़ैर जनाब थोड़ी देर बाद उसने एक एक करके सबको बुलाया, कहा कि अपनी अपनी गठरी के रंग बताओ और उसमें के दो ज़ेवरों के नाम लो, नग हो तो लाल लाल हैं या पियर पियर हैं, यह बताओ और ले जाओ । तो जनाब ऐसे ईमानदार लोग होते थे ग़दर के जमाने में । अच्छा तो अब मैं चलूँगा--[उठे, फिर कहा] यों तो मैंने अभी कुल्ला ...मगर एक क़िस्सा और याद आ रहा है वह भी आप को लिखवा जाऊँ । आप बेचारे इतनी दूर से इसी के लिये आये हैं--मगर ख़ैर, तो फिर लिखिये--

"एक अंगरेज था, याने कि अपने ज़माने का बहुत बड़ा हाकिम था, ये समझ लीजिये । तो ग़दर की भगदड़ में उसकी दो लड़कियां ग़ायब हो गईं । जब तसल्लुद हुआ तब हुक्म हुआ कि जाकर उनका पता लगाओ । ख़ैर जनाब पता लगा। उसकी एक लड़की एक ब्राह्मण के यहाँ थी । अंगरेज़ ने फौरन गाड़ी जुतवाई और उस ब्राह्मण के घर गये । वह ब्राह्मण बेचारा--मतलब यह है कि आप समझ सकते

हैं, पुराने जमाने का हिन्दुस्तानी था। अरे चटाई, दरी, मृगछाला पर बैठने वाले, उन्हें कुरसी से क्या लेना-देना जनाब ! खैर उसने अंगरेज को एक मचिया लाकर बैठने को दी। कहा कि हमारे यहां यही है हुजूर।"

"साहब बोला, वेल ये आच्चा-आच्चा हाय। साहब ने फिर पूछा कि हमारी लड़की तुम्हारे यहां है। पंडित बोला : 'साहेब यू नईं जानिति कि केकर आय। पर एक साहेब बिटिया है जरूर। बोलाए देइति है।'---यह कहके फ़ौरन उस लड़की को ले आया जनाब। बाप को देखते ही बेटी खट से जाके लिपट गई और बेटी को देख कर बाप के दिल में जो खुशी हुई उसको आप समझ ही सकते हैं। खैर। मगर वह अंगरेज था, रोने-धोने में अपना ज्यादा टाइम नहीं बरबाद कर सकता था जनाब, फ़ौरन ही रौब से मचिया पर बैठ गया और अपनी लड़की से पूछा : वेल माई डॉटर, टुमको इस पंडत ने कैसा माफ़िक रक्खा ?"

"लड़की बोली, पापा इन्होंने मुझे बिलकुल उसी तरह रक्खा जैसे बाप बेटी को रखता है ?" इस पर वह अंगरेज बोला कि वेल टुम बाप का मटलब समझटा? लड़की बोली कि हां पापा जैसे आप मुझे घर में रखते हैं घर भर सब मेरा खयाल रखता था। एक दिन रेवरेन्ड पंडत फादर ने मुझसे कहा कि साहेब बिटिया हमरे घरमां मुरगी-अंडा नाही आय सकत है। कहौ तौ दूरि लै जाय कै खिलाय लावऊँ। अपनी लड़की से इस तरह की बातें सुन कर वो अंगरेज़ जनाब बहुत खुश हुआ। खैर तो वो अपनी लड़की को लेकर चलने लगा। वो घर वालों से बिदा लेने लगी। आप सच मानिये जनाब बिलकुल हू बहू वही सीन हो गया जैसे कि लड़की अपने घर से अपनी सुसराल के लिये जा रही हो। महराज एक कोने में खड़े आंसू पोंछ रहे हैं तो आँगन में उनके लड़के लड़कियाँ हाय जिज्जी हाय जिज्जी चिल्ला रहे हैं और महराजिन अलग घूँघट में कयामत की गुहार मचा रही हैं। यानी कि और कोई वक्त होता जनाब तो अंगरेज यह सब तमाशा देख कर 'यू डर्टी हिन्डुस्टानी लोग' कह कर सबको ठोकरें लगाता, मगर जब अपनी लड़की के लिये इतना पुर-सोज़ हंगामा देखा तो उसकी समझ में आया कि हिन्दुस्तानियों के प्यार में कितना जोश होता है।"

"खैर तो क़िस्सा मुख्तसिर यह है कि अंगरेज़ की दूसरी लड़की का पता भी एक ठिकाने लग गया, अंगरेज ने फौरन उसका घर घिरवा लिया। एक ज़मींदार का घर था जनाब, उसके यहां लड़की मिली। बाप ने इस लड़की से भी वही सवाल पूछा, कि तुम्हें कैसे रक्खा। लड़की ने नजर झुका के झिझकते हुए कहा कि पापा

बीबी की तरह। अंगरेज भी जनाब बहुत बड़ा अंगरेज था, उसकी आँखों में खून उतर आया, कुरसी छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और कड़क कर कहा, बीबी लफ्ज़ के माने जानती हो क्या होते हैं ? लड़की ने नज़र झुका कर रोते हुए जवाब दिया कि माने समझ कर ही कह रही हूँ पापा।"

"अंगरेज ने कहा कि जनाब—अच्छा। बस, वह लड़की को लेकर अपने बँगले पर आया, और आते ही उस नालायक़ की जायदाद ज़ब्त कर उस पंडित को दे दी, जिसने उसकी दूसरी बेटी को मुसीबत में पनाह दी और बेटी बना कर रक्खा था। एक ये क़िस्सा याद है।"

पंडित सूरजकिशन जी गंजूर ने अपने रोचक व्यक्तित्व, और अपने क़िस्सों से मेरी खिन्नता हर ली। दोनों क़िस्सों में क़िस्सा गोई के फ़न की पॉलिश थी। खैर, जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि ये किस्से उन हल-चल भरे दिनों के जन जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत कर देते हैं।

चौक बाज़ार में एक जूते की दूकान पर खादीधारी मियां साहब बैठे दूकान-दारी कर रहे थे। मैंने उनसे अपना सवाल किया। श्री गुलाम हुसैन ने बतलाया : "मैंने मौलवी अहमदुल्ला शाह के मुताल्लिक अपने बाबा से यह सुना था कि वो यहां तशरीफ लाये और कुछ आदमियों के साथ आये। पुख्ता सराय चौक में मुक़ीम हुए। अंगरेजों ने घेरा डाला। लोग लड़े मगर मारे गये। मौलवी साहब गिरफ्तार हुये। उनके साथ सख्ती हुयी, जंजीरों में बांध कर उन्हें शहर में घुमाया गया। बस इतना ही मुझे मालूम है।"

यहीं मुझे अख्तर साहब के बेटे मिले। अख्तर साहब फैजाबाद के 'अख्तर' पत्र के सम्पादक, प्रकाशक भी हैं। साहबज़ादे मुझे अपने घर अपने पिता से मिलाने ले गये।

अख्तर साहब बड़े तपाक से मिले, गोया पुरानी जान पहचान हो; फरमाया : "गदर के मुतअल्लिक़ मैंने तमाम मटर इकट्ठा किया है। आप अपना पता दे जाइये। मैं लिख कर भेज दूंगा।"

मैंने अर्ज़ किया कि किताब जल्द ही लिख कर शाया कराने का इरादा है। इस लिये जो कुछ मसाला मुझे लगे हाथों मिलता चले उसे ज्यादा क़ीमती मानता हूँ।

अख्तर साहब ने फरमाया : "अजी कितना मसाला लीजियेगा ?....बहुत मैटर दूंगा। आप घर पहुँचेगे और दूसरे दिन मेरा ख़त पहुँचेगा। इसी घर में ग़दर के ज़माने में सैकड़ों लोग ठहरे थे। ये अवध के पहले नवाब बुरहानुल्मुल्क सआदत खाँ का

महल है। हमारे यहां वनीजान नाम की एक आया थी। बतलाया करती थी कि अंग्रेज जब घर में घुसे तो वो खाना पका रही थी, उसने जलती लुकाठी एक गोरे के मुँह में घुसेड़ दी।

"अजी तमाम क़िस्से हैं मेरे पास। मैंने बड़ी-बड़ी रिसर्चें की हैं नागर साहब! मुझे हमेशा यह सोच-सोच कर हैरत हुआ करती थी कि आखिर ये हमारे अवध वाले लाखों बरस पहले इतने कल्चर्ड कैसे हो गये। बिना ऊँची तहज़ीब के ये शान और शौक़त पायी नहीं जा सकती। मैं इसी वास्ते खुद अजुध्या जी गया। वहाँ शीश पैगम्बर की क़ब्र है। वह कब्र देखने में ही बहुत पुराने जमाने की लगती है और मुसलमानी ढंग की बनी हुई है। मैं आपसे रिसर्च की बात कह रहा हूँ। तो हज़रते शीश हमारे अवध में आकर बसे थे। हज़रते शीश हजरते आदम के पहले बेटे थे। इससे आप खुद ही बख़ूबी समझ सकते हैं, ये लाखों बरस पहले की बात है। याने की सिर्फ हिन्दुस्तानी तहज़ीब ही नहीं, बल्कि इन्सानी तहजीब का पहला और सब से पुराना मरकज़ हमारा ये अवध है।"

मैंने कहा: "आप हज़रते शीश की बातें कर रहे थे तो मुझे हिन्दुओं के देवता शेष भगवान् की याद हो आई। शेषनाग के अवतार रामचन्द्र जी के छोटे भाई लक्ष्मण माने जाते हैं। क्या यह नहीं हो सकता कि अयोध्या में शेष भगवान का मन्दिर रहा हो, जिसे मुसलमानों ने बाद में हज़रते शीश करार दे दिया। नाम मिलते-जुलते तो हैं ही।"

अख्तर साहब जरा परेशान हुए, कहा: "फिर वहाँ पर क़ब्र कैसे बन गयी?"

मैंने कहा: "आसान बात है। मुसलमानों को यहां आने पर हज़रते शीश के नाम से मिलता-जुलता एक नाम दिखलाई दिया जिसकी तरफ उनका खिचना लाज़िमी था। और फिर बाद में यहां के रहने वाले जो मुसलमान हुए उन्हे अपने पुराने लगाव की चीज़ को नये रूप में अपनाने का हौसला हुआ। शेष भगवान् का मंदिर टूट कर हज़रते शीश का मकबरा बन गया।"

अख्तर साहब के चेहरे पर उलझन कुछ और बढ़ती नजर आयी। मैंने बात का प्रसंग बदल दिया। इतने में अख्तर साहब के एक मिलने वाले डॉक्टर शफ़ी हैदर साहब वहां तशरीफ लाये। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं अवध से संबंधित गदर की बातें जमा कर रहा हूँ; तो फ़रमाया कि हमारे यहां भी गदर के कुछ वाक़यात हुए थे, मगर हमारा ज़िला तो अवध में है नहीं। इस पर मैंने उन्हें बतलाया कि अपनी सीमित शक्ति और सुविधा के लिहाज से ही मैं केवल लखनऊ और अवध तक

सीमित हूँ अगर मेरा बस चलता तो अजनाला पंजाब से लेकर बंगाल के बैरकपुर और मध्य प्रदेश की मऊ छावनी तक सब जगह घूम-घूम कर इतिहास बटोरता।

डॉक्टर साहब ने फरमाया : "ज़िला जौनपुर में एक माहुल राज है। वहाँ के राजा इदारतजहाँ के साहबजादे ने फ़ैज़ाबाद का खजाना लूटा था। वे बाग़ी हो गये थे। राजा इदारत जहाँ को मुबारकपुर ज़िला आज़मगढ़ में हाथी पर चढ़ा कर एक पेड़ के पास ले गये और वहीं उन्हें फाँसी दे दी। राजा का हाथी भी दुख से वहीं मर गया। अँगरेजों ने उनका कोट खुदवा डाला। राजा इदारतजहाँ के लड़के राजा शमशेरजहाँ और उनकी बहन यानी मेरी दादी को उनके हमदर्दों ने सुरंग की राह से बाहर निकाल लिया। बड़ा गाँव के ठाकुर अमरेठसिंह के यहाँ उन्हें पनाह मिली। अँग्रेज सूंघते हुए वहाँ भी पहुँच गये। शमशेरजहाँ ने सोचा कि मैं पकड़ा जाऊँगा, तो कोई बात नहीं मगर बहन की बेइज्जती न हो, इसलिए उन्हें मारने चले। मगर ठाकुर अमरेठसिंह वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कहा कि आप ये क्या ग़ज़ब कर रहे हैं? मैंने अँग्रेजों को टाल दिया। शमशेरजहाँ ने पूछा, : 'क्योंकर टले?' ठाकुर साहब ने जवाब दिया : 'अजी मैंने उनको यह पट्टी पढ़ाई कि राम राम! हम हिन्दू भला मुसलमान को पनाह देंगे। आपको किसी ने गलत खबर दी है।' गदर के जमाने में हिन्दू-मुसलमानों में बड़ा मेल और भाईचारा था।"

फैजाबाद के प्रतिष्ठित नागरिक श्री प्रियादत्त राम से भी भेंट की। उन्होंने कहा : "बचपन में हमारे यहाँ एक चपरासी था, वह गदर के बड़े-बड़े क़िस्से सुनाया करता था। गदर के आल्हे और बिरहे भी बड़े जोश से सुनाता था। मगर अब वो सब याद नहीं। हमारे बचपन का जमाना कुछ और था। बड़े घरों में लोग गदर की बातें भी करते तो दबे-दबे ही करते थे। बच्चों में बगावत का असर न आ जाय इसलिए उन्हें ऐसी बातों से दूर ही रक्खा जाता था। हम लोगों को तो बस अकड़-फूँ से रहना सिखाया जाता था। वह जमाना ही कुछ और था। मगर आप यह काम अच्छा कर रहे हैं। आपको तो ऐसे आदमियों से मिलना चाहिए जो कम से काम पिछत्तर-अस्सी बरस की उम्र के हों। आस-पास के गांवों में घूमिये। मुबारकगंज में श्रीपाल सिंह हैं; एक रमेशर हैं; सीवाड़ बड़ा गाँव के नकी मियाँ भी पुराने आदमी हैं, राम नगर में एक रनधीर सिंह हैं, हिन्दू सिंह की ड्योढ़ी में ठाकुर बजरंग सिंह रहते हैं, चिर्रा, जगतपुर, रौराही में भी आपको पुराने लोग मिलेंगे, नवाब गज़नफ़र हुसैन मोती मस्जिद वाले भी सुना सकेंगे, पन्नगेश जी से मिलिये"।

मैं उनके बताये नाम लिखता जा रहा था, पर यह जानता था कि इनमें एक

से भी मिलने का सौभाग्य प्राप्त न कर सकूंगा। समय की कमी तो थी ही, साथ ही साथ फ़ैज़ाबाद ज़िले में घूमने की उचित सुविधा भी नहीं थी। फिर भी नाम इस वास्ते लिख लिये कि शायद किसी उत्साही व्यक्ति के काम आ जाँय। प्रियादत्त-राम महोदय ने अपने पड़ोस में रहने वाले एक वृद्ध महानुभाव के पास मुझे भेजा भी पर वे न मिल सके।

काफ़ी देर हो गयी थी, ठहरने के स्थान पर लौट आया। राजा मार्नासह के वंशज वकील साहब से मिलने की बड़ी इच्छा थी, परन्तु जा न सका। ग़दर के इतिहास में राजा मार्नासह का भाग बड़ा दुतरफ़ा और अजीब-सा रहा है। 'बंगाल आर्मी' के अवधी क्रान्तिकारियों के साथ वे डाक्टर आर० सी० मजूमदार के कथनानुसार, षड्यंत्र में शामिल थे। बेगम हज़रत महल के समर्थकों में भी उनका नाम मिलता है। चारबाग़ की लड़ाई में उन्होंने बड़ीं बहादुरी दिखलायी। मटिया बुर्ज की अख्तर महल के नाम सरफ़राज़ बेगम लखनवी द्वारा भेजे गये एक पत्र में लिखा है: "राजा मार्नासह ने बड़ी बहादुरी दिखलायी। नौ हज़ार जमीयत से ऐसा मुकाबला किया कि फ़िरंगियों के छक्के छूट गये। शाम हो गयी थी। जनाबे आलिया ने राजा मार्नासह बहादुर की जाफ़िशानी व जांबाज़ी पर ख़िताबे फ़रज़न्दी दिया। ख़िलअत दुशाला, रूमाल और मलवूत-ए-ख़ास दुपट्टा इनायत किया और बहादुरी की बहुत तारीफ़ की।"

अवध गज़ेटियर में लिखा है: "संकट काल उपस्थित जान कर फ़ैज़ाबाद ज़िले के एक सिविल अफ़सर ने अंग्रेज़ स्त्रियों और बच्चों की सुरक्षा का भार राजा मानसिह को सौंपा; यह भार तुरन्त स्वीकार कर लिया गया। फ़ौजी सैनिकों का रुख योरोपियन अफ़सरों के लिए कहुत ही कष्टप्रद हो गया था। उनके पास भरोसे वाली ऐसी कोई भी सेना नहीं थी, जिसके बूते पर दोनों रेजीमेन्टों की बदतमीज़ियों को रोक कर उन्हे संयमित किया जा सकता। ऐसी परेशानियों के घिराव में उन्हें लखनऊ से यह आदेश मिला कि उनके प्रभावशाली मित्र मार्नासह को तुरंत गिरफ्तार कर लिया जाय। यह असामयिक कार्य फ़ैजाबाद के कमिश्नर और सुपरेण्टेण्डेण्ट कर्नल गोल्ड ने द्वारा किया गया। असिस्टेन्ट कमिश्नर ने इसका तत्काल विरोध करते हुये पत्र भेजा। बाद में उसे छोड़ने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली। यह आज्ञा बड़े समय से मिली, अंग्रेज़ स्त्रियों और बच्चों को उसकी सुरक्षा में उसके शाहगंज के किले में भेज दिया गया"।

यों राजा मार्नासह दोहरी चालें चलते हुए नज़र आते हैं। हो सकता है कि

ग़दर के ज़माने में बहुत से रजवाड़े नीतिवश ऊपरी तौर पर अंग्रेजों से मिले हों, राजा मार्नासिह भी उनमें से ही एक हों। यह भी हो सकता है कि पहले उन्होंने क्रान्तिकारियों का साथ दिल से दिया हो और गिरफ्तारी के बाद कायरतावश वे अंग्रेज़ों के जासूस बन कर क्रान्तिकारियों के गढ़ में बने रहे हों। मितौली के राजा लोनेसिंह द्वारा धोखे से क़ैद किये गये अंग्रेज़ नर-नारी जो कि क़ैसरबाग़ में बन्द थे, घृणा के उद्रेक में भारतीयों द्वारा मारे गये। कुछ स्त्रियां बच्चे राजा मार्नासिह द्वारा सुरक्षित होकर रेज़ीडेन्सी पहुँचाये गये थे। लखनऊ में मुझे यह भी सुनने को मिला कि मार्नासिह ने गोलों में भूसा भरवा कर क्रान्तिकारियों को बड़ा धोखा दिया। राणा वेणीमाधव बख्श की प्रशंसा में गाये जाने वाले एक लोक गीत में 'नक्की मिले मार्नासिह मिलिगे, मिले सुदर्सन काना' पंक्ति भी मार्नासिह के विरुद्ध ही जाती है। इस प्रकार महाराज मार्नासिह का नाम तो ग़द्दारों की लिस्ट में ही हर तरह से जुड़ा नज़र आता है।

शाम होते ही फिर शहर की गलियों की खाक छाननी शुरू की। मुझे अनजाने नगरों में भटकने घूमने में अटपटापन नहीं मालूम होता; अपने ठहरने का पता ठिकाना तथा उसके आसपास के वातावरण का चित्र ध्यान में बैठा कर मौज से घूमता हूँ। इस समय तो मौलवी अहमदुउल्ला शाह के संबंध में जानकारी बटोरने की इच्छा से निकला था।

ग़दर के नायकों में तात्या और मौलवी अपने ढंग के अनोखे, बड़े जीवट के व्यक्ति हैं। सैनिकों को अपनी ओर आकर्षित करने में इनके बराबर शायद और कोई नहीं। बख्तखां भी बड़े जीवट के थे मगर उनका जादू एक जाति, एक सीमा तक ही चलता था। तात्या और मौलवी ऐसे चुंबक थे जो कहीं भी चले जाते और लड़वैयों की भीड़ की भीड़ अपनी ओर खींच लेते थे। अंतर का अग्निपुंज बाबू कुँअर सिंह और राणा वेणीमाधव बख्श के व्यक्तित्वों को भी बड़ा सतेज बनाता था। गहरी छानबीन होने पर काग़ज-पत्र इनके संबंध में और जो कुछ बोलें पर यह हर हालत में स्वीकार करना पड़ता है कि हमारे एक सदी पहले के ये पुरखे बड़ी आन वान वाले थे। ये अदम्य साहस के मूर्तरूप महापुरुष थे। जो क़मजोरियां अमरनाथ से कन्याकुमारी और द्वारका से कामरूप-कामाख्या तक व्याप्त, भारत भूमि के पुत्रों में मौजूद थीं, उनसे कमोवेश ये सब भी बँधे थे, किन्तु जो देश की शक्ति थी इनके द्वारा प्रत्यक्ष देदीप्यमान हुई।

जब मैंने मजूमदार महाशय के इतिहास में उनकी वैज्ञानिक बौद्धिक चीर-फाड़

के परिणाम स्वरूप पाया हुआ फल देखा तो मन को ज़ोर का धक्का लगा। धक्का इसलिए नहीं कि महापण्डित के द्वारा प्रस्तुत तथ्यों ने मेरी और अनेक की भी ग़दर संबंधी जमी जमाई मान्यतायें ढादीं, बल्कि यह देखकर आघात पहुँचा कि सत्तावनी इतिहास की पोथी पर डॉक्टर रमेशचन्द्र मजूमदार का नाम छपा हुआ था। डॉक्टर मजूमदार प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के सिद्ध पण्डित हैं। उन्हीं की 'कार्पोरेट लाइफ़ इन एंश्येन्ट इण्डिया' पढ़ कर मैं भारत देश की व्यावहारिक एकता को पहचान सका हूँ। अनेक बोली - बानियों, अनेक राज्यों, ज़मीदारियों, रीत - रिवाजों में बँट कर भी भारतीय सामाजिक जीवन एक ढर्रे ढाँचे पर चलता था। घड़ी के छोटे-बड़े पुर्ज़े अपनी-अपनी जगहों पर ऐसे फ़िट बैठ गये थे कि वह चलती ही रही। भारत भूमि के चप्पे-चप्पे पर इतिहास ने बड़ी-बड़ी छापें छोड़ीं मगर देश का सामाजिक-पंचायती ढाँचा बहुत कम बदला जा सका, उसपर मैले ग़िलाफ़ एक पर एक भले ही चढ़ते रहे, मगर धार्मिकता, आदर्श, स्वाभिमान के लिए मर मिटना, और काम की लगन आदि विशेषताएँ इस देश के जन में तब भी बनी ही रहीं। उन विशेषताओं वाले व्यक्तियों को देश का गौरव माना जाता है। फिर तात्या, मौलवी, राणा, कुँअर सिंह, झांसी वाली रानी, अवध की बेगम में ऐसा क्या 'कुछ' नहीं था जो तत्कालीन भारत देश के व्यक्तित्व से उन्हें अलग करता हुआ दिखलाई देता है ? साहसी मंगल पांडेय और महावीर बलभद्र सिंह से लेकर अमर शहीद यतीन्द्रनाथ दास और सुखदेव, भगत सिंह, राजगुरु, आज़ाद तक क्या एक अटूट भारतीय परम्परा नहीं है ? रामायण महाभारत और पुराणों द्वारा जो संस्कार इस देश की नस-नस में बिंधे हैं वे क्या राष्ट्र की चारित्रिक एकता के परिचायक नहीं ? इस देश में कहीं भी कोई हलचल हो, कहीं से कोई भी नायक उठे, प्राचीन काल से ही वह सारे राष्ट्र को अनुप्राणित करता रहा है और अब तो करता ही रहेगा। पण्डितवर ने स्वयं ही अपनी पुस्तक में सत्तावन के पहले अंग्रेज़ों के विरुद्ध अनेक ग़दरों का गौरव बखाना है। पर अंत में सत्तावनी ग़दर को बड़े शोक से देखा है। उन्हें यह सत्तावनी तमाशा दिल्ली से लेकर अवधी, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी, बिहारी लोगों का ही लगा; विशेष रूप से अवधी सिपाहियों का रचाया हुआ लगा; जिसे बाकी राष्ट्र मानो कलकत्ते के 'स्टार थियेटर' में बैठ कर 'पुरबी' छातूखोरों की काली करतूत के नाटक के रूप में देख रहा था। पुरबियों की क्रूरता से डॉक्टर साहब का भारतीय संस्कृति से समृद्ध गौरवमय मस्तक राष्ट्रीय लज्जा से झुक गया।

मैं अकिञ्चन हूँ जानता हूँ, पर ईमानदारी की लाज निभाने के लिए सविनय यह अवश्य कहूँगा कि डॉक्टर साहब की तथ्य पाने वाली वैज्ञानिक जिज्ञासा उनके व्यक्तिगत अहं की कचोट से, पूर्व निश्चित् धारणाओं से बँधकर अवैज्ञानिक और तर्कच्युत् हो गयी । सारे देश में विद्रोह का तीव्र प्रदर्शन समय-समय पर बराबर होता रहा । सत्तावनी क्रांति अनायास और स्वतंत्र रूप से नहीं आयी बल्कि वह एक लम्बे वाक्य के क्रियापद सी आयी थी । यह क्रांति प्राय: देशव्यापी होकर भी विशेष रूप से कुरुक्षेत्र, अवध और मगध में हुई, अर्थात सामंती के आदिम गढ़, मध्य देश, में हुई थी । इस महादेश को अपने सांस्कृतिक सूत्र से बाँधने वाली रामायण महा-भारत और गंगा यमुना की भूमि में युगान्त और युगारम्भ के महासंघर्ष का अन्तिम निर्णय होना मेरी दृष्टि में तनिक भी आश्चर्यजनक या आकस्मिक नहीं । बंगाल के सन्यासी विद्रोह से लेकर कुरु अवध और मगध में प्रमुख रूप से होने वाले सत्तावनी विद्रोह तक हमारे राष्ट्रीय इतिहास की एक अटूट परम्परा है । मैं सचमुच यह सोच-सोच कर हैरान हूँ कि डॉक्टर मजूमदार जैसे बड़े ज़िम्मेदार विद्वान यहीं आकर क्यों, नाम चतुरानन पैं चूकते चले गये । यदि आदरणीय डॉक्टर साहब सत्तावनी क्रान्ति के इन नायकों का, यहाँ की जनता का वह रूप भी देखने की कृपा करते जिससे भारत क्या किसी भी राष्ट्र का मस्तक गौरव से उठ सकता है, तो क्या उनका ऐतिहासिक दृष्टिकोण अवैज्ञानिक हो जाता ? मैं राष्ट्र की कमज़ोरियों पर पर्दा डालने के पक्ष में नहीं हूँ, ग़दर के गौरव को लेकर अपने को बहलाना या धोखा देना भी नहीं चाहता, परंतु दोषों पर चौदह आने भर वज़न, गुणों की ओर से आँखे मीच कर अपने जन को दिग्भ्रमित, हतोत्साहित और कुण्ठित भी नहीं करना चाहता । मान्य विद्वान् ने इसी 'मूड' में अपनी किताब लिखकर 'मरे को मारें शाह मदार' वाली कहावत को चरितार्थ किया है ।

चौक पहुँचा । फ़ैजाबाद का चौक बाज़ार लखनऊ के चौक बाजार से तो उम्दा ही बाँधा गया था । आसफ़ुद्दौला को केवल अपने महल-दुमहलों के, इमामबाड़े के नक्शे ही उम्दा से उम्दा बनवाने की चिन्ता रहती थी, उनके ज़माने में लखनऊ के अनेक नये मुहल्ले आबाद हुए, मगर शहर का उम्दा नक्शा बनवाने की तरफ़ उनका ध्यान कभी नहीं गया । फ़ैजावाद का चौक बाज़ार एक आवर्त में बाँधा गया है—एक तरफ़ तीन दरों का फाटक, उसके ठीक सामने एकदरा फाटक, फिर दूसरी ओर एकदरा फाटक बना है; यह तीन फाटक मिल कर अर्द्धचंद्र का आकार ले लेते हैं; एकदरे फाटक के सामने वाला तिदरा फाटक गोल दायरे से हट

कर एक लम्बी सड़क के बाद बना है। मेरी समझ में यह चौक चाँद-सितारे के नक्शे पर बनाया गया है। मछली का निशान हर फाटक पर है; एक फाटक पर मछलियाँ पेटेंट, नवाबी फ़ार्मूले से उलटी बन गई हैं।

एक हिनाई दाढ़ी वाले बुज़ुर्गवार तहमद, लम्बा कुरता पहने, कंधे पर बड़ा रूमाल और सिर पर चौड़े पाड़ की दुपलिया लगाये आहिस्ता क़दम छड़ी टेकते चले आ रहे थे। बाअदब राह रोक कर अपना सवाल किया। बुज़ुर्गवार एक क्षण तक मुझे ग़ौर से देखते रहे, फिर पूछा: "कहाँ से तशरीफ़ लाये हैं?"

"लखनऊ से हाजिर हुआ हूँ।"

"इसी काम के लिये आये हैं?"

"जी हां।"

"सरकारी नौकर हैं?"

"जी नहीं। अपनी तरफ़ से ही घूम रहा हूँ, सरकार इस काम में मेरी मदद कर रही है। ग़दर के जमाने की तवारीख़ में सरकार को भी बहुत दिलचस्पी है"।

बुजुर्ग़वार फिर चुप होकर कुछ सोचने लगे। दो सेकंड बाद सिर हिला कर बोले: "काम आपने बहुत उम्दा उठाया है। हमारा देस अपने बुजुर्ग़ों के बड़े-बड़े कारनामें भूलता जा रहा है। इसी से यह तबाही आ रही है।..काम आपका वाक़ई उम्दा है, मगर जो आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ..बड़ी देर हो गई इस काम के लिये। अब वो बुज़ुर्ग़ नहीं रहे, जिन्होंने अपनी आंखों ग़दर देखा था। मैं तो यहाँ तीन-चार माह से अपने मँझले लड़के के पास आया हूँ, जिला सुल्तानपुर गंजेड़ी का रहने वाला हूँ। हमारे यहाँ अंग्रेजों ने पूरा शहर का शहर तबाह कर दिया। बड़ा ज़ुल्म किया। खैर! एक बात और भी है ग़दर की बातें गाँव-गाँव में फैली हुई हैं सबको इकट्ठा करना चाहिए"।

जिस समय प्रियादत्त राम जी के यहाँ बैठा हुआ था, उनके कोई मिलने वाले भी वहाँ मौजूद थे। मेरी बातें सुन कर उन्होंने भी कहा था: "काम अच्छा है मगर ये तो नोन-सतुआ ले के गाँव-गाँव घूमने का काम है।" बात सच थी, इस समय इन वृद्ध सज्जन से भी वही सुन कर मन बड़ा फड़फड़ाया। सचमुच यह नोन-सत्तू लेकर ही गाँव-गाँव घूमने का काम है, एक नहीं अनेक व्यक्ति घूम कर ही इसे पूरा कर सकते हैं। मैं गृहस्थी के भार से लदा व्यक्ति इतनी मुक्ति भला कैसे पाऊँ? इस भ्रमण से, थोड़ी जगहों और थोड़े से आदमियों से भेंट करके ही मैं स्वयं यह कहता हूँ कि काम बहुत अच्छा है। जनता में बिखरी बातें, ग़दर की किंवदंतियां

उस महाक्रान्ति के प्रति जनता के सद्भाव का परिचय देती हैं। यह सिद्ध हो रहा है कि आम जनता की क्रांतिकारी सैनिकों और सामन्तों के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी। यह क्रांति की राष्ट्रीय स्पिरिट की परिचायक है।

खैर, हाजी साहब ने अपने परिचित नन्हें मियां गंधी का नाम बतलाया, "लाल-बहादुर घड़ीसाज़ की दूकान के पीछे रहते हैं। मुझसे सिन में पन्द्रह बीस साल बड़े हैं, क़रीब नब्बे के होंगे। वो यहाँ की पुरानी बातें सुनाया करते हैं। उनसे मिलिए।"

पूछते-पूछते नन्हें मियां के यहां पहुँचा। घड़ीसाज मशहूर थे, उनकी दूकान लबे सड़क थी। दाहिने हाथ एक गली गयी, फिर एक और गली में तिराहे पर आया; वहीं मकान मिला, पर नन्हें मियां न मिले। उनके घर के एक युवक ने एक फर्लांग आगे डॉक्टर जैनी के मकान के पीछे हाजी हसनू का पता दिया। हाजी साहब मिल तो गये, मगर कहने लगे : "कहिये तो ये बताऊँ कि घण्टाघर कब बना और ···(कोई) मल मैनिसपल्टी के चेरमैन पहले वक्तों में बनाये गये.."

"मुझे ग़दर की बातें सुनने की ख्वाहिश है।"

"तब हम पैदा ही नहीं हुए थे।"

"शायद है अपने बुज़ुर्गों से सुनी हों।"

"नहीं साहब।" मैं लौट आया। फिर चौक बाजार में पहुँचा। एक बज़ाज़े की दूकान पर ऐसे वृद्धों के हवाले पूछे जिन्हें उस समय का हाल मालूम हो। उन्होंने कनकभवन अयोध्या के भूतपूर्व मैनेजर लाल 'पन्नगेश' जी का नाम बतलाया। प्रियदत्त राम जी ने भी इनका नाम लिया था, 'माधुरी' 'सुधा' पत्रिकाओं में इनका नाम, रचनाओं के साथ छपा देखता था, यह ध्यान में आ रहा था। मालूम हुआ उनके पुत्र कचहरी में काम करते हैं, रकाबगंज नियावां में रहते हैं। वहाँ पहुँचा, मालूम हुआ दूसरी जगह चले गये। वहाँ पहुँचा, मालूम हुआ कहीं बाहर चले गये।

रात के नौ बज रहे थे। लौट आया; सोचा, मौलवी डंकाशाह फ़िलहाल मेरे लिए शायद मक्फ़ी रहना चाहते हैं।

९ जून, रविवार। गजरदम तड़के ड्राइवर महोदय गाड़ी लेकर आ गये। सरयू स्नान करने की मेरी इच्छा थी, वहीं से अपने काम पर जाने का विचार था। गुप्तार घाट गये, उसकी महिमा यह बतलायी गयी कि भगवान् रामचन्द्र यहीं से गुप्त हुए थे। श्रीराम ने बुढ़ापे में सरयू में डूबकर अपने प्राण त्यागे थे। भगवान् राम

का लौकिक जीवन सचमुच बड़े त्याग और कठोर परीक्षाओं से भरा तथा दुखी था। प्रजा के लिए उन्होंने अपना व्यक्तिगत सुख न माना, निर्दोष जानते हुए भी सीता का त्याग किया। राजसूय यज्ञ में भगवती सीता का तड़प कर देहत्याग करना, लक्ष्मण की मृत्यु आदि के कारण वे खिन्न हो गये थे। गुप्तार घाट भले वह असली जगह हो या न हो, सरयू तो वही हैं। श्रीराम जैसे अनन्य व्यक्तित्वशाली महापुरुष का उससे नाता रहा है। गोता लगाते ही भाव विभोर हो गया।

अयोध्या पहुँचा। मुझे मालूम हुआ कि श्री रामगोपाल पाण्डेय 'शारद' महोदय ने अपनी 'जन्म स्थान का रक्त रंजित इतिहास' नामक पुस्तक में गदर का हवाला भी दिया है, वह बहुत कुछ बतला सकते हैं, मगर बारात गये हैं। खैर, औरों से जो मिले वही सही। श्री गुदुन जी शर्मा तथा एक अन्य युवक मेरे साथ अयोध्या के पुराने लोगों के ठिकाने बतलाने चले। गुदुनजी साइकिल पर सारे भारत की सैर कर आये हैं। अच्छे स्वभाव के नवयुवक हैं।

हम लोग श्री अशफ़ाक़ हुसैन, श्री हबीब हैदर, श्री हाजी 'फिरकू', श्री मल्हू और हकीम साहब के घरों पर गये। पहले सज्जन नहीं मिले; दूसरे महाशय ग़दर के संबंध में कुछ नहीं जानते, हिन्दू-मुस्लिम दंगों के हाल अलबत्त जानते हैं; हाजी फिरकू का भी वही हाल था; श्री मल्हू का घराना ग़दर में लखनऊ से भाग कर यहाँ आया था, यहाँ का कुछ हाल उनके बुजुर्गों को नहीं मालूम था; हकीम साहब मिले नहीं।

श्री रामकिशोर खत्री ने अपने पड़ोसी बाबू रामदास खत्री के यहाँ का हाल सुनाया, कहने लगे, "हमारे पुरखे तो गदर के बाद यहां आये, मगर हमारे पड़ोसी बाबू रामदास के दादा अयोध्या राज के ख़जांची थे। बलवा होने की आशंका होते ही उन्होंने अपनी फ़ेमिली को महलों में शरण दिला दी। उनके यहां गदर में इस वजह से किसी की जान तो नहीं गयी, माल भी कोई खास न लुटा, क्योंकि कीमती सामान वो ले जा चुके थे। हल्दी, मिर्च, मसाले, अचार वगैरा जो सामान छोड़ गये थे, उसे गोरों ने ख़ूब फेंका-फोड़ा। उनकी दादी बतलाया करती थीं कि घर भर में हल्दी मसाले ही फैल गये थे।"

राम जन्म-स्थान, सीता रसोई आदि भी घूम-घाम कर देखी। महात्मा तुलसीदास जी का स्थान भी देखा।

पुरातत्व विभाग राष्ट्रीय बचत को ध्यान में रखते हुए भले ही और जगह खुदाई का काम कम करवादे, परन्तु अयोध्या और मथुरा का पुरातात्विक अन्वेषण और

खुदाई कार्य होना अत्यावश्यक है। राम और कृष्ण का समय निश्चित करना इस नवयुवक भारत के लिए बड़ा लाभप्रद होगा। उनके समय के अवशेष सामने आ जायें तो भारतीय इतिहास को अपूर्व लाभ हो।

गुदुन जी बोले: "हमें दुख है कि आप दो दिन यहाँ आये और सफलता न मिली।"

मैंने कहा: "अपने पास समय देखते हुए मैंने भरसक प्रयत्न तो कर ही लिया। आगे रामजी की मर्ज़ी।"

वे बोले: "मैं शारद जी से आपको सब इतिहास लिखकर भेज देने के लिए कहूँगा; विश्वास रक्खें।"

पुनश्च:

श्री गुदुनजी शर्मा ने अपना वचन निभाया। 'शारद जी' महाराज ने यह हाल लिखकर मेरे पास भेजा है। उसके तथ्य यहाँ पर उद्‌धृत् कर रहा हूँ---

"भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में, जिसमें भारत की जनता ने अंग्रेज़ों की गुलामी के इस जुये को अन्तिम बार अपने कन्धे से उतार कर फेंक देने के लिये भीषण संग्राम किया था, हमारा फ़ैज़ाबाद ज़िला पीछे नहीं रहा। स्वतंत्रता संग्राम के आरंभ होने का श्रेय यद्यपि मेरठ जिले को अवश्य प्राप्त हो गया, किन्तु इस संग्राम को प्रारंभ करने की समस्त योजनाएँ फ़ैज़ाबाद ज़िले में बनायी गयीं और कानपुर में उन्हें विकसित किया गया, एवं बैरकपुर में उन्हें संचालित किया गया। समस्त योजना इसे फ़ैज़ाबाद से ही प्रारंभ करने की बनायी गयी, किन्तु कारणवश योजना का कार्य-क्रम न रहते हुए भी मेरठ से उसका प्रारंभ हो गया। यही कारण है की सुनियोजित एवं सुनिश्चित होते हुए भी यह विद्रोह असफल हो गया।

"श्री मंगल पांडे का जन्म फ़ैज़ाबाद ज़िले की अकबरपुर तहसील के सुरहुरपुर नामक ग्राम में सन् १८२७ के जुलाई की १९ वीं तारीख़ को अर्थात् आषाढ़ शुक्ल द्वितीया शुक्रवार विक्रमीय संवत् १८८४ में हुआ था। इनके पिता का नाम दिवाकर पांडे था, वस्तुतः फ़ैज़ाबाद जिले की फ़ैज़ाबाद तहसील के दुगवां रहीमपुर नामक ग्राम के रहने वाले थे और अपने ननिहाल की संपत्ति के उत्तराधिकारी होकर सुरहुरपुर में जाकर बस गये थे। वहीं पर उनकी पत्नी अभयरानी देवी के गर्भ से मंगल पांडे का जन्म हुआ। इनकी लम्बाई ९ फुट २॥ इंच थी। २२ वर्ष की आयु में अर्थात् १० मई सन् १८४९ में आप 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' की सेना में भरती हुए। किसी काम से आप सुरहुरपुर से अकबरपुर आये हुए थे उसी समय कम्पनी

की सेना बनारस से लखनऊ को ग्रांड ट्रंक रोड होती हुई जा रही थी । आप सेना का मार्च देखने के लिए कौतूहलवश सड़क के किनारे आकर खड़े हो गये । सैनिक अधिकारी ने आपको हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ देख कर सेना में भरती हो जाने का आग्रह किया, आप राज़ो हो गये । बस यहीं से आपका सैनिक जीवन प्रारम्भ हुआ ।

अपनी उपरोक्त बातों के प्रमाण में हम कर्नल मार्टिन की वह रिपोर्ट उद्धृत करते हैं, जो उन्होंने फ़ैज़ाबाद के सैनिक अधिकारी कर्नल हण्ट के पास उस समय भेजी थी; जबकि फ़ैज़ाबाद ज़िले में विद्रोहियों की ज़बरदस्त सभाएँ हो रही थीं और एक ही दिन में समस्त ज़िले भर के अंग्रेजों को मौत के घाट उतार देने के लिए रोमांचकारी सैनिक तैयारियों के साथ कार्य-क्रम बनाया जा रहा था । मार्टिन लिखता है--

"मंगल पांडे को जबसे फांसी दे दी गयी है तब से समस्त भारत की सैनिक छावनियों में जबर्दस्त विद्रोह प्रारंभ हो गया है । फ़ैज़ाबाद ज़िले में बलवाइयों का इतना अधिक ज़ोर है कि एक प्रकार से बाग़ियों का वहां सैनिक अड्डा ही कायम हो गया है । फ़ैज़ाबाद में विद्रोहियों का सैनिक अड्डा कायम हो जाने की वजह यह है कि मशहूर बाग़ी मंगल पांडे...फ़ैज़ाबाद ज़िले की अकबरपुर तहसील के सुरहुरपुर गांव का रहने वाला था ।......

"मंगल पांडे के ख़ान्दान में जो भी मिला उसे तोप के मुँह पर धर कर अंग्रेजों ने उड़ा दिया । फिर भी मंगल पांडे के कई एक निकट संबंधी बच गये, जिनमें मंगल पांडे के सगे भतीजे बुझावन पांडे भी थे । वह अपनी जमात के सभी रिश्तेदारों, ख़ान्दानियों और साथियों को साथ लेकर क्रान्तिकारी दल में मिल गये । २५ अगस्त को इन सबने मिल कर फ़ैज़ाबाद की सैनिक छावनी पर रात में धावा बोल दिया जिसके फलस्वरूप सभी हिन्दुस्तानी सैनिक उनसे मिल गये और छावनी के सभी अंग्रेज़ या तो मार डाले गये या बलवाइयों के हाथ बन्दी हो गये ।

"नवाब आसफ़ुद्दौला की बूढ़ी माता खुर्शीदमहल बेगम का ख़जाना उन्हीं की देख-रेख में नाका मुज़फ़्फ़रा पर स्थित मकबरे में सुरक्षित था । मार्टिन की प्रेषित रिपोर्ट को पढ़कर कर्नल हण्ट ने बड़ी भारी सेना के साथ जाकर मकबरे को घेर लिया । बेचारी बूढ़ी बेगम ने कर्नल हण्ट के हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा कि मुझ बूढ़ी के जेवर लूट कर मुझे कंगाल क्यों करते हो ? भला मुझसे और बलवाइयों से क्या मतलब है। अस्सी गर्मी, जाड़ा और बरसातें अपने इस बूढ़े जिस्म

पर झेलते हुए मैंने अपनी जिन्दगी के दिन बिताये हैं। अब सिर्फ दो चार वर्षों की मेहमान हूँ। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? किन्तु बूढ़ी बेगम की इस करुण प्रार्थना पर कर्नल हण्ट का पाषाण हृदय ज़रा नहीं पसीजा। उसने अंग्रेज सैनिकों को आर्डर दिया कि जबरदस्ती भीतर घुस कर सारे माल-असबाब पर कब्जा कर लो।

"कर्नल हण्ट के इशारे पर अंग्रेज सैनिक महल के भीतर घुस गये और बड़ी बेइज्ज़ती तथा वेदर्दी के साथ इन्होंने सब माल जो लगभग अस्सी लाख रुपये की लागत का था और लगभग इतनी अशर्फ़ियाँ जो खजाने में सुरक्षित थीं, ज़बरदस्ती छीन लिया।

"कर्नल हण्ट ने उस लूट के धन को सैनिक पहरे के संरक्षण में लखनऊ भेजने का प्रबन्ध किया। उसी बीच में बेगम हज़रतमहल और मानवती (राजा मानसिंह की बहन तथा वाजिदअली शाह की एक पत्नी) ने अंग्रेजी सेना के विरुद्ध बाक़ायदे युद्ध की घोषणा कर दी। बेगम हज़रतमहल और मानवती ने विद्रोही सेना के साथ फ़ैजाबाद में आकर अपना अड्डा जमाया। इस सेना का सबसे पहला और तगड़ा मुक़ाबला खोजनीपुर के पास कर्नल हण्ट की सेना के साथ हुआ।

"बेगम खुर्शीद महल के जेवरात और ख़जाने के बेदर्दी के साथ लूटे जाने का समाचार सारे जिले भर में बिजली की तरह फैल चुका था। जनता में यह अफ़वाह बड़े जोरों के साथ फैल गई थी, कि फिरंगी सबके घरों में घुसकर सबके जेवर और रुपये पैसे ज़बरदस्ती लूटेंगे। इस अफ़वाह के प्रतिकार स्वरूप अयोध्या में बलवाइयों की एक बड़ी भारी गुप्त सभा सरयू नदी के किनारे, बासुदेव घाट पर झाऊ के जंगल में हुई। इस सभा में फ़ैजाबाद जिले भर के तथा नजदीक़ी अन्य जिलों के भी लगभग सभी प्रमुख-प्रमुख विद्रोही नेता उपस्थित थे। गोण्डा के प्रमुख विद्रोही नेता राजा देवी बख्शसिंह, रायबरेली के राजा वेणीमाधव सिंह, अमेठी (सुल्तानपुर) के राजा लालमाधव सिंह, अयोध्या के बाबा रामचरन दास और शम्भूप्रसाद शुक्ल, हसनूकटरा के अमीरअली, बेगमपुरा अयोध्या के अच्छन खाँ आदि सभी बलवाइयों के प्रमुख-प्रमुख प्रभावशाली नेता जो इस विद्रोह में सम्मिलित थे, लगभग सभी उपस्थित थे। एक स्वर से सर्वसम्मति से इस सभा में अंग्रेजों के साथ युद्ध करने का दृढ़ निश्चय किया गया। फलस्वरूप जिस समय बेगम हजरतमहल की सेना ने अपनी पूरी शक्ति के साथ खोजनीपुर के समीप कर्नल हण्ट की सेना का दृढ़ मुकाबला किया तो इन विद्रोहियों ने भी अपनी सेना के साथ कर्नल हण्ट की सेना को चारों ओर से घेर लिया। साथ ही उस सेना के

कुछ भाग ने निर्मली कुण्ड पर स्थित सरकारी सेना पर धावा बोल कर वहां सरकारी 'ग्रास फ़ार्म' में आग लगा दिया। छावनी में उपस्थित समस्त अंग्रेजी आफ़िसर काट डाले गये, कुछ ने अपने बीवी-बच्चों के साथ गुप्तार घाट पर से डोंगियों के द्वारा नदी पार करने की इच्छा से भाग निकलने की चेष्टा की, किन्तु जमथरा घाट तक पहुँचते-पहुँचते राजा देवीबख्शसिंह के सैनिकों ने जो एक छोटे से तोपखाने के साथ वहां पहले ही से उपस्थित थे, उनपर गोले बरसाना आरंभ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप कोई भी अंग्रेज भाग कर नहीं जा सका। सभी सरयू नदी के अतल गर्भ में डोगियों सहित समा गये। इधर कर्नल हण्ट की सेना बुरी तरह काट डाली गई, स्वयं कर्नल हण्ट राजा वेणीमाधव सिंह के हाथ से बुरी तरह मार डाला गया। बलवाइयों ने उसकी लाश उल्टी टाँग कर सारे शहर में घुमाई।

"१३ नवम्बर को एकाएक ज़बरदस्त फ़ौजी कुमुक आ जाने के कारण जो बेख़बर थे, पराजित हो गये। वेगम हज़रतमहल, मानवती, राजा देवीबख्श सिंह तथा राजा वेणीमाधव सिंह आदि नैपाल के जंगलों की ओर निकल गये और बाबा रामचरणदास, अच्छन ख़ाँ, शम्भु प्रसाद शुक्ल एवं अमीर अली आदि अंग्रेजी सेना द्वारा पकड़ लिये गये। बाबा रामचरण दास और अमीर अली को अयोध्या में श्रीराम जन्म-भूमि के समीपस्थ कुवेर टीले पर एक इमली के पेड़ में लटका कर फाँसी दे दी गयी। अच्छन खाँ तथा शम्भु प्रसाद शुक्ल के सर रेतियों से रेत-रेत कर अंग्रेजों ने उनसे बलवाइयों का भेद पूछना चाहा, किन्तु इन बहादुर देशभक्तों ने अपने प्राण दे दिये। रेतियों से रेत-रेतकर इनके सिरों को चकनाचूर कर डाला गया, किन्तु इन वीरों ने कोई भी भेद अंग्रेजी सेना को नहीं बताया।

"बाबा रामचरण दास और अमीर अली ने अयोध्या की श्रीराम जन्मभूमि जिसे मुसलमान बाबरी मस्जिद कहते हैं, हिन्दुओं को वापस दिलाने के लिये मुसलमानों को राजी कर लिया था, जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों में बुरी तरह घबराहट फैल गई थी।

"लखनऊ में विद्रोहियों को सफल और अंग्रेजी सेना को असफल होते देखकर अंग्रेजों की हिम्मत बुरी तरह टूट गयी थी। उन्हें विश्वास हो गया कि अब भारत से हमारा जान बचाकर निकल जाना नितान्त असम्भव है। अंग्रेजों से अधिक वे घबरा गये, जो उस समय जी जान से अंग्रेजी सेना का साथ देकर स्वयं अपने देश और जाति के साथ भीषण विश्वासघात कर रहे थे।

"२६ जून को फैजाबाद की धारा पर स्थित बादशाही मस्जिदमें मुसलमानों की एक बड़ी भारी सभा बुलाई गई। इस सभा का आयोजन भारत समाट बहादुरशाह जफर के हक़ीक़ी दमाद मिर्ज़ा इलाहीबख्श ने किया, जो कि उस समय अँग्रेजों के दाहिने हाथ बन कर भारतीय स्वतंत्रता की जड़ खोद रहे थे। इस सभा में मिर्जा इलाहीबख्श और उनकी बेगम शाहज़ादी हुस्नबानू भी उपस्थित थीं। मिर्जा साहब ने इस सभा में अपना भाषण देते हुए फरमाया—

'बिरादराने वतन' दिल्ली की हुकूमत शाह बहादुरशाह ज़फर के हाथों में जब से आई है, मुल्क बरबादी की ओर बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। कंपनी की हुकूमत में मुल्क के आ जाने से मुल्क में एक नयी जान आ जायगी ××× ।' आगे वे कुछ कहने भी नहीं पाये थे कि सभा के बीच से एक आदमी उठ कर खड़ा हो गया और कहने लगा। 'बिरादराने वतन, यह मिर्जा साहब गद्दार हो गये हैं। ये मुल्क को बेईमान अँग्रेजों के हाथ में सौंप देना चाहते हैं। ये जब खुद इज्ज़त और रुतबा अता करने वाले शाह बहादुरशाह ज़फ़र के नहीं हुए, तो अब किसके होंगे।'

यह शख्स अच्छन खाँ था। उसका यह कहना था कि उत्तेजित भीड़ने मिर्जा इलाहीबख्श के ऊपर हमला कर दिया। किसी तरह जान बचा कर मिर्जा साहब भाग निकले। उत्तेजित भीड़ को शांत करते हुए अमीर अली ने कहा—

'भाइयों, बहादुर हिन्दू हमारी सल्तनत को हिन्द में मजबूत करने के लिए लड़ रहे हैं। इनके दिल पर क़ाबू पाने और इनके एहसानों का बोझ अपने सर से उतार देने के लिए हमारा फ़र्ज़ है कि अयोध्या की श्री राम जन्म-भूमि, जिसे हम बावरी मस्ज़िद कहते हैं, जो हक़ीक़त में रामचन्द्र जी की जन्म-भूमि के मन्दिर को ज़मींदोज़ करके शाहंशाहे हिन्द बादशाह बाबर ने बनवाई थी, हिन्दुओं को वापस दे दें। इसमें हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद की जड़ इतनी मजबूत हो जायगी कि जिसे अंग्रेज के बाप भी नहीं उखाड़ सकेंगे।'

कहना नहीं होगा कि अमीर अली के इस उत्तेजनात्मक भाषण का मुसलमानों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे इसके लिये बाखुशी राजी हो गये। यह खबर कंपनी के जासूसों ने खूब रंग चढ़ा कर अँग्रेजों के पास पहुँचाई। इस खबर से अंग्रेजों के होश उड़ गये थे।

कहना नहीं होगा कि बावा रामचरण दास और अमीर अली का यह सत्प्रयत्न अँग्रेजों की कूटनीति के कारण विफल हो गया, तथा १८ मार्च सन् १८५८ ई० को कुवेर टीले पर स्थित एक इमली के पेड़ पर दोनों देश-भक्तों को अँग्रेजों ने फाँसी

पर लटका दिया । जनता बहुत दिनों तक उस पेड़ की पूजा करती रही, किन्तु सन् १९३५ में २८ जनवरी को फैजाबाद के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर मिस्टर जे. पी. निकलसन ने उस पेड़ को जड़ से कटवा डाला । इस प्रकार फैजाबाद और अयोध्या के दो प्रातः स्मरणीय वीरों की स्मृति अंग्रेजों के मनहूस हाथों द्वारा मिटा डाली गई ।"

विद्रोहियों का परिचय

शंभु प्रसाद शुक्ल — ये अयोध्या के रहने वाले थे और इनके पूर्वज ज़िला गोरखपुर के रहने वाले थे । अयोध्या में स्थित वासुदेव घाट के एक मन्दिर के ये पुजारी थे । विद्रोही नेताओं में इनका नाम प्रमुख था । सुप्रसिद्ध विद्रोही नेता राजा देवीबख्श सिंह के ये दाहिने हाथ थे । विद्रोह के विकल हो जाने पर ये अंग्रेजों द्वारा पकड़ लिये गये और इनके सर को रेती से रेत कर बड़ी दुर्दशा से इनकी जान ली गई ।

अच्छन खां — नवाबी खानदान के एक प्रमुख व्यक्ति थे और अयोध्या के बेगमपुरा मुहल्ले में रहते थे । विद्रोह में इनका बहुत बड़ा भाग था । विद्रोहियों के यह भी एक नेता थे । विद्रोह के विफल हो जाने के बाद शम्भु प्रसाद शुक्ल के साथ ये पकड़ लिये गये और इनके भी सर को रेती से रेत कर इन्हें मार डाला गया ।

बाबा रामचरण दास — ये हनुमान गढ़ी के पुजारी तथा बलवाइयों के नेता थे । इन्हें सारे बलवाई बड़ी पूज्य दृष्टि से देखते थे और इनका बड़ा सन्मान करते थे । विद्रोह के विफल हो जाने पर इन्हें कुबेर टीले पर स्थित एक इमली के पेड़ से लटका कर अयोध्या में फांसी दे दी गई ।

अमीर अली — आप हसनू कटरा फैजाबाद के निवासी तथा अच्छन खाँ और बाबा राम चरण दास के दाहिने हाथ थे । विद्रोह के विफल होने पर बाबा राम चरण दास के साथ आप भी पकड़ गये और उन्हीं के साथ फाँसी पर लटका दिये गये।

बुझावन पाँडे — आप सुप्रसिद्ध विद्रोही श्री मंगल पाँडे के सगे भतीजे

थे। विद्रोह के विफल होने पर आप राजा देवी बख्श-सिंह के साथ गायब हो गये, तब से आपका पता नहीं लगा। इनके वंशज अभी तक अयोध्या तथा फैजाबाद तहसील में वर्तमान है।

'शारद' जी के द्वारा भेजी गई इन सूचनाओं में तीन बातें विशेष महत्व की हैं। मंगल पाँडे का अवध वासी होना यहाँ के निवासियों के लिये गौरव की बात है।

फैज़ाबाद में षड्यंत्रकारियों की गुप्त बैठकें होने का समाचार भी विशेष महत्व का है; परन्तु यह समझ में नहीं आता कि मौलवी अहमदुउल्ला शाह का नाम क्यों गायब है।

दूसरी बात ये कि यह सच है, इतनी बड़ी क्रान्ति का सूत्रपात रजवाड़ों की ओर से नहीं हुआ था। भारतीय सेना के सूबेदारों का इस योजना में प्रमुखतम् हाथ रहा है। मैं डा० मजूमदार महाशय की इस राय का क़ायल हूँ कि सत्तावन का नायक फौज का सिपाही था। सर जान के लिखित ग़दर के इतिहास में हमें ऐसी अनेक बातें देखने को मिलीं, जिनसे क्रान्तिकारी सेनाओं के महत्व का अन्दाज लगता है।

तीसरी सूचना अत्यंत उत्साहवर्धक है। जिस जन्मस्थान मस्जिद को लेकर चार वर्ष पहले इतना ज़बरदस्त फ़िसाद हुआ, उसे मुसलमान हिन्दुओं को वापस देने की बात पर विचार कर रहे थे; और हिन्दू जो कि कुछ वर्ष पहले तक मुसलमानों के घोर शत्रु थे, देश पर संकट आया देख, आपसी वैमनस्यता भूल अपने उस शत्रु के विरुद्ध उठ खड़े हुए जो न्याय के नाम पर बंदर-बाँट कर राज पर राज हड़प किये जा रहा था।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि वाजिदअली शाह अपने शासन काल में हुए इस दंगे के लिये तनिक भी दोषी नहीं। 'पॉयनियर' वाले लेख के अंग्रेज़ लेखक ने इस प्रकार का ज़हर बुझा संकेत फेंका है, जो अपनी सतह पर ही सरासर झूठ लगता है। वाजिदअली शाह तअस्सुबी मुसलमान न था। उसके द्वारा रचित रास नाटक में 'रामचन्द्र की जय' के नारे और 'कृष्णभक्त जोगिन' इस बात का प्रमाण हैं। उसकी श्रृंगार प्रियता ने होली दिवाली जैसे त्योहारों को अपना लिया था। उसकी विलासी प्रवृत्तियों के संबंध में तो लखनऊ के वड़े बूढ़ों में अनेक कहावतें चली आ रही हैं, परन्तु किसी से आज तक उसकी साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में मैंने केवल एक घटना का विवरण छोड़ कर और कुछ नहीं सुना। चौक (लखनऊ) के वयोवृद्ध लाला मोतीचन्द जी जौहरी ने एक बार मुझे यह बतलाया था कि चौक के वर्तमान कम्पनी

बाग में, जहाँ गदर से पहले घनी आबादी थी, वाजिदअली शाह के अफ़सरों ने जौहरियों का मन्दिर खुदवा डाला था। उस पर बड़ा असंतोष फैला। बहुत से प्रतिष्ठित हिन्दू शिकायत लेकर मड़ियावं के बड़े साहब (सर हेनरी लारेन्स) के पास गये थे। वाजिदअली शाह ने इस बात का बड़ा बुरा माना। महताबराय जौहरी बादशाह के जौहरी थे। उनके कहने-सुनने से और बीच में पड़ने से मामला सुलझ गया। कमालुद्दीन हैदर लिखित 'सवानहात-ए-सलातीन-ए-अवध' में भी लाला मोतीचन्द जी द्वारा बतलाई गई इस घटना का उल्लेख है। अयोध्या के सम्बन्ध में भी उसका विवरण उल्लेखनीय है। लिखा है।

"जब फ़साद हनोमान गढ़ी का अहले इस्लाम से बढ़ा तो मौलवी सैयद अमीर-अली बन्दगी मियां के पोते साक़िन क़स्बये अमेठी निस्बती भाई शेख़ हुसैनअली कारिन्द राजा नवाब अली ख़ां रईस महमूदाबाद बसबबे जोशश हरारते इस्लाम चाहा के दफ़ा तौहीने इस्लाम करे। चुनांचे पहले संदीले में अहले इस्लाम ने मौलवियों की तहरीक से बादे शोर ओइज्मा कमर जेहाद पर बाँधी। बाज ने नाआक़िबत अन्देश मना किया कि यह अम्र अच्छा नहीं, हाकिम वक्त और साहबान आलीशान से आख़िर को मुक़ाबला हो जायगा, फिर कुछ न बन पड़ेगा। अबस-अबस तौहीने इस्लाम सबके वास्ते हो जायगी। ग़रज एक ने न माना। मौलवी साहब के सर पर अजल तो आ ही गई थी। जब रुक़ने-रुकीन सल्तनते हुज़ूरे आलम इस अम्र से मुत्तिला हुए, शाह जमजाह से अर्ज की कि फ़िदवी हरचन्द चाहता है कि मग्द फ़साद किसी हिकमते अमली से मौक़ूफ़ हो जाय लेकिन ख़ानाजाद सल्तनत यानी ख्वाजासरा पीरदा ग़फ़लत में बानी मुबानी इस फ़साद के होते हैं। मौलवी अमीर अली मीर हैदर मुंशी मुतवस्सिल बशीरुद्दौला के अजीजों से है। वह चाहता है कि आतिशे फितना फ़साद को ख़ूब भड़काये और मुफ्त में मेरी बदनामी हो और नारसाई ज़ाहिर हो। बशीरुद्दौला जब इससे वाक़िफ़ हुए, अपने रफ़ये इल्जाम के वास्ते मौलवी साहब को बुलवा भेजा और हजरत जन्नतुल मकान के इमामबाड़े में उतारा। जब रहे ज़ियाफ़त की अपने साथ हुज़ूर आलम के पास ले गये। उन्होंने सब तरह से समझाया और चाहा कि ख़िलअत सरफ़राज़ी देकर रुख्सत करें, लेकिन मौलवी साहब ने न माना, न खिलअत लिया और न जेहाद से हाथ उठाया। आखिर उसी रात मौलवी साहब को उनके घर भेजा और उनका निकल जाना अपने लिये अच्छा समझे।"

कमालुद्दीन हैदर अंग्रेज़ परस्त इतिहासकार थे, उनके उपरोक्त वृत्तान्त से कहीं

भी यह बात प्रकट नहीं होती कि वाजिदअली शाह ने दंगे को भड़काने के लिये मौलवी साहब की पीठ पर हाथ रक्खा । किसी बौद्धिक सिद्धान्तवश नहीं, किन्तु अपनी रसिया प्रवृत्ति का अत्यधिक दास होने की वजह से वाजिदअली शाह झगड़े-फ़साद से कोसों दूर भागता था ।

अयोध्या के दंगे के बाद अयोध्या के हिन्दुओं का साथ-साथ लड़ना निस्संदेह इस बात का प्रमाण है कि वे लोग स्थानीय मुसलमानों से अधिक विदेशी ईसाइयों को अपने धर्म का शत्रु मानते थे । यदि यह बात न होती तो अंग्रेजी फ़ौज की सहायता से दबाये जाने वाले जेहाद के साथ-साथ वे अंग्रेजों के साथी बन जाते। हसनू कटरा के मियां अमीरअली और हनुमानगढ़ी के बाबा रामचरण दास एक साथ अंग्रेज़ों से लड़ें, यह बात तभी सम्भव हो सकती है, जब कि हिन्दू मुसलमान लड़-भिड़ कर भी, संकट के समय एक दूसरे पर ही अधिक भरोसा रख सकें ।

बाबा रामचरण दास और मियाँ अमीरअली की एकता चिर अनुकरणीय आदर्श है । फ़ैजाबाद में मौलवी अहमदुल्ला शाह के संबंध में जानकारी न प्राप्त कर पाने के कारण दुःखी हुआ, परन्तु बाबा जी और मियाँ जी का इतिहास पाकर बहुत संतुष्ट भी हुआ हूँ । रामजी की अयोध्या ने यह दिया तो बहुत दिया ।

सुल्तानपुर

९ जून । अपनी यात्रा के तीसरे पड़ाव की ओर बढ़ते हुए मेरी कल्पना की दृष्टि के आगे ट्रेन के दोनों ओर फैले खेतों और मैदानों में सौ वर्ष पहले की अंग्रेजी भारतीय सेनायें आती जाती, हर ओर फैली हुई दिखलाई पड़ती थीं । लाल कोट, सफ़ेद पतलून और टोप लगाये घोड़े पर सवार हथियार बन्द अंग्रेज़ अफ़सर, फटी वर्दियों में भागते हुए अंग्रेज़, उनकी स्त्रियाँ और बच्चे—सभी का ध्यान आ रहा था । जो काटे गये, जिन पर विपत्ति पड़ी वे भले ही अंग्रेज़ हों या हिन्दुस्तानी, उनके प्रति सहानुभूति उमड़ती है । लड़वैयों की बात न्यारी है। आमने-सामने युद्ध के मैदान में जो मार काट मचती है, वह जब तक युद्ध का सिद्धान्त जीवित रहेगा होती ही रहेगी । परन्तु इन युद्धों की घृणा को लेकर जब निहत्थी कमज़ोर जनता पर अत्याचार किया जाता है, तो बहुत बुरा लगता है ।

यह झूठ नहीं कि हमारी ओर से लोगों ने अंग्रेज़ों और अंग्रेज़परस्त रजवाड़ों, रईसों के प्रति जगह जगह बड़ी क्रूरता भी दिखलाई थी । फ़ैज़ाबाद गज़ेटियर में उस क्षेत्र के अँग्रेज़ों को बुरी तरह खदेड़े जाने का विवरण दिया है। चार पाँच या एक

व्यक्ति के पीछे खून की प्यासी जनता का दौड़ना कोई अच्छा चित्र नहीं है। सुल्तानपुर से आने वाली क्रान्तिकारी सेनाओं का समाचार सुन कर फ़ैज़ाबाद और सुल्तानपुर के बीच की भूमि अंग्रेज़ों के लिये नरक बन गई थी।

आज ही के दिन, सौ वर्ष पहले सुल्तानपुर में गदर का श्रीगणेश हुआ था। कर्नल फ़िशर सुबह के समय मिलिटरी पुलिस लाइन से लौट रहा था। उसे पीछे से गोली मारी गई। दो सिविलियन अफ़सर और भी मारे गये। अपना दाँव आने पर अंग्रेज़ों ने सुल्तानपुर नगर पूरी तरह उजाड़ डाला। मैंने सुना था कि पुराने सुल्तानपुर के खंडहर गोमती पार आज भी उस नाश की गवाही देने को खड़े हैं। वर्तमान सुल्तानपुर नगर गदर के बाद उस जगह बना, जहां पहले गोरों की छावनी थी। सुल्तानपुर ज़िले में अमहट के खानज़ादों की वीरता के सम्बन्ध में भी बड़ी प्रशंसा भरी बातें सुनी थीं।

दोपहर बाद सुल्तानपुर पहुँच गया। वहां के जिला सूचना अधिकारी श्री 'किसान' टिकट कलेक्टर के पास ही दरवाज़े पर खड़े बाहर निकलने वाले मुसाफिरों के चेहरे भाँप रहे थे। अपनी यात्रा के इस तीसरे स्टेशन पर आते आते तक, इन खोजती आँखों को पहचान लेने का अभ्यास हो चला था। इसलिये फाटक पर पहुँचते ही मैंने 'किसान जी' को इस तरह नमस्कार किया गोया पुरानी जान पहचान हो, कहा: "आइये।"

'किसान जी' "आप ही नागर जी हैं?" पूछते रह गये और मैं उन्हें 'आइए' कहकर बढ़ाता ले आया। मेरा जासूसी उपन्यास पढ़ने का शौक उपयोगी सिद्ध हुआ; शर्लाक होम्स की तरह अपने कमाल से किसान जी को बाँध कर मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ। जीप गाड़ी के शहर की विभिन्न सड़कों से गुजरते हुए ही मुझे अन्दाज़ लगा कि शहर छोटा होते हुए भी सम्पन्न हैं। जगह जगह नये ढंग की इमारतें भी देखीं। मेरे आने से किसान जी एक धर्म संकट में पड़ गये थे। दूसरे ही दिन उनके ज्येष्ठ पुत्र का तिलक आने वाला था। अपने पास बैठे एक साथी को निमंत्रण बँटवाने का काम सौंप स्वयं मेरे काम के लिये साथ चलने की योजना बनाने लगे। मैंने सोचा कि इस समय इन्हें अपने काम के लिये घेरना अनुचित होगा। उनसे कहा: "आप मुझे गाड़ी दे दीजिये और यह भूल जाइये कि मुझे घुमाने का भार आप पर है।"

ना-हां करते वे राज़ी हो गये। एक स्थानीय कालेज के अध्यापक, जिनका नाम

मैं भूल गया, मेरे साथ अमहट चले। 'किसान जी' ने उन्हें मेरे साथ कर दिया था।

अमहट ग्राम नगर से बहुत दूर नहीं था। रास्ते में जेलख़ाना भी पड़ता है, वह कोठी भी खँडहर के रूप में दिखलाई पड़ती है, जहां कर्नल फ़िशर मारा गया था।

ठिकाने पर पहुँच गये। सबसे पहले जो साहब मिले उन्हीं से सवाल किया। श्री जव्वादहुसैन ख़ां ने कुर्सियां मँगाईं और इनायत हुसैन ख़ां सरपंच को भी बुलवा लिया। देखते देखते दो चार बुज़र्ग और जवान इकट्ठा हो गये। श्री जव्वाद हुसैन और सरपंच साहब बतलाने वालों में प्रमुख थे, यों बीच बीच में दूसरे सज्जन भी कुछ कुछ बतलाते चलते थे। श्री जव्वाद हुसैन ने बतलाया : "हमको तो ये मालूम हुआ था कि जब अँग्रेज़ आये तब हमारे मूरिसान खानज़ादगान ने उनका मुक़ाबला किया। उनमें फ़त्तेख़ां, दरियाव ख़ां, पीर ख़ां, फतेहबहादुर ख़ां, हुसैन बख्श ख़ां, फेंकू ख़ा, ख़ातिर खां, ग़नीबहादुर ख़ां, रज़ा ख़ां उर्फ राजा खां लड़े। हमारे क़ौम के लोग बाकायदा जंग में लड़े। 'अट्ठारह सौ' लोग थे, इनमें से कुछ मारे गये, कुछ दूर दूर गाँवों में भाग गये, जो बचे वो हर तरह की मुसीबतें झेलने के बाद यहां क़ब्रिस्तान में बसा दिये गये। पुराना अमहट गाँव तो यहां से ज़रा दूर है। हमारा इलाका हम से छीन कर दियरा वालों को दे दिया गया। हमको जीते जी मुर्दा समझ कर अँग्रेज़ों ने रहने के लिये ये क़ब्रिस्तान दिया। कर्नल जो ग़दर में मारा गया था, उसका बँगला यहीं पास ही है। कर्नल में शैतानियत है; उसका भूत अब भी सफेद घोड़े पर आता है।"

मैंने पूछा : "ग़दर तो छावनी में हुआ होगा, फिर आप लोग उसमें कैसे और कब शामिल हुए ?"

एक बुज़र्ग साहब बोले : "हमारे पास लखनऊ से खुफिया तौर पर सरकारी आर्डर आया था। बस फिर जंग शुरू हो गई।"

"किसने आर्डर भेजा था ?"

"विरजिस क़दर शाह ने भेजा था।"

"क्या वो कागज़ आप के पास है ?"

"जी हां, ख़ादिम हुसैन के भाई के पास है।"

"मुझे देखने के लिये मिल सकता है ?"

सरपंच इनायत हुसैन ख़ां बोले : "आप कल तशरीफ लायें। मैं मँगवा कर रक्खूंगा। बहरहाल हमने वो हुक्मनामा देखा है। उसमें फ़ारसी में यह इबारत लिखी है कि

"गोमती, गंगा, घाघरा के दरम्यान पोशीदा तौर पर अँग्रेज़ फ़ौजें जा रही हैं, उनके साथ हिन्दू और सिक्ख फ़ौजें भी हैं। हमें हुक्म हुआ था कि हम उनका पीछा करें, हिन्दुओं और सिक्खों को गिरफ्तार कर लें, जिससे कि ग़द्दारों की ताक़त घट जाय और गोरों को क़त्ल-ओ-तबाह कर दिया जाय।"

"यह हुक्मनामा किसके नाम आया था ?"

सरपंच महोदय बोले: "बख्शी खां सनदयाफ्ता ताल्लुक़ेदार अमहट के थे। उनके बाद उनके लड़के बख्तावर खां हुये। ग़दर के दौरान में ही बख्तावर खां का इन्तक़ाल हुआ। मिंडई खां उर्फ़ मेहदी हसन खां फिर ज़मींदार हुए। इन्हीं बाप बेटों में से किसी के नाम होगा। अब इस वक्त ठीक तरह से तो याद नहीं। हमारे वालिद के फूफा रज़ा अली खां नायब नाज़िम थे। उनकी दस हज़ार फ़ौज थी। वैसे सनद ताल्लुक़ा बख्शी खां के नाम था, मगर पट्टीदारान बहुत से थे, आप को जव्वाद हुसैन ने जो नाम लिखाये, वे सब, और तमाम लोग पट्टीदार थे। इन सब पर, बाईस आदमियों पर मुक़द्दमा क़ायम किया गया। उनमें से कुछ को सज़ायें तजवीज़ हुईं और दो को यानी मिंडई खां और हुसैन बख्श खां को फाँसी की सज़ा हुई। अवध के बावन ताल्लुकेदारान ने इनके लिये सफ़ाई पेश की मगर वह क़ाबिले समाअत नहीं समझी गई।"

"जुर्म था कि अंग्रेज़ों की फ़ौज के लोग, जो मारे गये, खुसूसन कर्नल, जो मारा गया, उसकी लाश दफ़नाई क्यों नहीं गई। दूसरा जुर्म यह था कि कर्नल की घोड़ी को गाँव वालों ने यानी हम लोगों ने हासिल कर लिया और उनके साईस को मार डाला। हमारा तीसरा जुर्म यह बतलाया गया कि परऊपुर छितौना के रहने वाले जयलाल को, जो कि गिरदौर का कानूनगो था हमारे बुज़ुर्गो ने मार डाला।"

"तो फिर मिंडई खां और हुसैन बख्श खां को फाँसी दे दी गई ?" मैंने पूछा।

"जी नहीं, बच गये। उसी वक्त मल्का विक्टोरिया की तकरीब हुई। उस तक़रीब में सज़ायें माफ़ हो गईं। लोग बच तो गये, लेकिन उनका पूरा का पूरा ताल्लुक़ा ज़ब्त हो गया"।

एक वृद्ध सज्जन बोले: "क़ैदखाने के पास पीपल के दरख्त से हर रोज़ फाँसियां दी जाती थीं। जब तक विक्टोरिया की तक़रीब नहीं हुई तब तक कलक्टर रोज़ कहता था कि मेंडू खां, तुम्हारा भी यही हाल होगा। मगर मेंडई खां इस्तख़ारे के इतने पाबंद थे कि बराबर यही जवाब देते कि हुज़ूर, जैसे दूध से मक्खी निकल आती है वैसे ही मैं भी साफ़ निकल आऊँगा"।

दूसरे दिन मैं फिर बेगम हज़रतमहल के फ़र्मान देखने अमहट गया। उस दिन तमाम खानज़ादे इकट्ठा थे। क़रीब पच्चीस-तीस बूढ़े-जवान व्यक्तियों ने मुझसे तरह-तरह के प्रश्न पूछने आरंभ किये "यह हाल क्यों पूछा जा रहा है, क्या इससे हमारी तकलीफ़ें दूर हो जायेंगी ? हमारी जो ज़मीन हवाई जहाज़ का अड्डा बनाने के लिये लड़ाई के जमाने में ले ली गई थी, क्या हमें वापस मिल जायगी ? हम सब अंग्रेज़ी हुकूमत के बाग़ी तो थे ही पर क्या अपनी हुकूमत में भी बाग़ी माने जायेंगे ?"

सरपंच साहब सब को खामोश कर ख़ुद बोलने लगे, कहा "मैं दो लफ्ज़ जानता हूँ बाबूजी—बाग़ी और ख़ैरख्वाह। बाग़ी उसे कहते हैं जो मौजूदा सरकार के ख़िलाफ़ बग़ावत करे। हमने मौजूदा शाही सरकार के हुक्म के मुताबिक अपने मुल्क़ के लिये क़ुर्बानी दी, फिर हम बाग़ी क्योंकर कहे जा सकते हैं ?"

मैंने कहा: "बाग़ी आपको अंग्रेज़ कहते थे और ग़लत कहते थे। आप यकीनन अपने मुल्क़ के ख़ैरख्वाह थे। आप क़ी ख़ैरख्वाही का सबूत सरकारे बिरजीसी के वे फ़र्मान हैं जिन्हें देखने के लिये मैं इस वक्त हाज़िर हुआ हूँ।"

शिकायतों और सवालों का फिर एक रौरा उठा। उसे रोकते हुए एक साहब ने हाँक लगायी : "ख़ामोश ! अब मैं आप की ख़िदमत में अपना लिखा हुआ बयान पेश करता हूँ बाबू साहब। और वो जो फ़र्मान है वो मेरे ही पास हैं। निहाल गढ़ में रक्खे हुए हैं। आप ख़ुद ही देख रहे हैं कि मेरी तबियत आज नासाज है। आपके तशरीफ़ लाने की वजह से ही मैं यहाँ आया हूँ; बल्कि कहना चाहिये ये लोग मुझे ले आये हैं। दो चार दिन बाद अगर आप तशरीफ़ लायें, तो मैं चलकर आप को दिखला दूँगा।"

मैंने कहा : "मेरे लिये तब तक रुकना नामुमकिन है, मैं 'किसान' साहब से कह जाऊँगा उन्हें आप मेहरबानी कर उन काग़ज़ात की फ़ोटो खिंचवाने के लिये दे दीजियेगा।"

सरपंच साहब बोले: "वे काग़जात ही हमारी जागीर हैं बाबू साहब, अब और कुछ नहीं रहा।"

मैंने कहा : "वे काग़जात फ़ोटो खींचने के बाद आप को वापस मिल जायेंगे। चूंकि हर कैमरा काग़जात की तस्वीर नहीं खींच सकता इसलिये उन्हें लखनऊ भेजा जायगा।"

ख़ादिम हुसैन ख़ां साहब बोले- "तब तो हम बड़े साहब की ज़िम्मेदारी पर ही उन्हें दे सकेंगे।"

मैंने कहा: "ठीक है। यही कीजियेगा।"

खादिम हुसैन साहब ने फिर हाथ उठाकर सभा को सुनाते हुए कहा: "सुन लो भाइयो ! मैं इन बाबू साहब को सब हिस्ट्री लिखकर दे रहा हूँ अगर कोई बात छूट गई हो या किसी को किसी क़िस्म का इख़्तिलाफ हो तो बतला देना। फिर न कहना कि दरोग़ा जी ने ग़लत बयान दे दिया।" इतना कहकर वे सुनाने लगे:—

"वाक़यातो हवादिसाते ज़ब्ती इलाक़ा-ए-राज अमहट मिन्जानिब क़ौम खानज़ादग़ान जो गजलौती मुस्लिम राजपूत से हैं, शाही खानदान से भी ताल्लुक है। (१) यह इलाक़ा ताल्लुका-ए-अमहट जो चौदह कोस मशहूर था बसिलसिलए बग़ावत ब्रिटिश ज़ब्त किया था (२) शाही फ़रमान जिस पर मुहर भी सब्त है इस बाबत मौसूल हुआ था कि अंग्रेज़ों से लड़ो दरियाए घाघरा पार उतार दो। ज़ाहिर है कि इस हुक्म की पाबन्दी में जंग भी किया होगा और घाघरा पार उतारा होगा। फ़र्मान बनाम बख्तावर खां सादिर हुआ था जो अगुआ थे। (३) नक्ल खेवट व दीगर क़ाग़जात जिनको अल्लाहयार खां मरहूम ने फ़राहम किया था मैंने बचश्म खुद देखा है। छियत्तर नंबरी मुवाजेआत इस इलाक़े में शामिल थे जिनमें छप्पन मुवाजेआत चार पट्टीदारों में तकसीम थे। नंबरदारान बख्तावर खां, मुहम्मद खां, झाऊ खां, राजा खां, इस इलाके में दर्ज खेवट हैं। बकीया मुआवजेआत खान्दान बख्तावर खां में...(अस्पष्ट लिखावट) थे। (४) हमला अंग्रेजों पर जो किया गया कुल अफ़राद-ए-मौज़ा जो उस वक्त थे, शरीके कार रहकर अज़ तरफ पुराने सुल्तान पुर की जानिब अंग्रेजों को भगा कर ले गये, जहां कुश्तो-खून भी काफ़ी हुआ। मेम और बच्चे तक निशाना बनाये गये और दरियाए घाघरा पार उतार दिया गया। (५) एक अंग्रेज़ भाग कर गोमती नदी के पूरब वाले घाट से जो क़रीब...नगर है, एक मल्लाह की डोंगी कश्ती के ज़रिये पार उतारा। उसने मल्लाह को अपनी जान बचाने के लिये तहरीर लिख दिया। उसने राजा साहब दियरा को दे दिया। जब खुद कमिश्नर तसल्लुद के बाद आया तब राजा साहब दियरा ने उसे भी पेश कर दिया, जिस बिना पर राजा साहब दियरा को खैरख्वाही में इलाक़ा-ए-अमहट भी मिल गया। (६) कर्नैल फ़ौज की सवारी की कलाराज़ घोड़ी मुहम्मद खां खानदान बख्तावर खां ने रख लिया था, साईस के माँगने पर मार कर भगा दिया। (७) कर्नैल फ़ौज की लाश एक दरख्त में लटकती पाकर जब दूसरी फ़ौज आई, देख कर यह इल्ज़ाम भी अमहट वालों पर लगाया कि तुम लोगों ने लाश को दफ़न नहीं कराया बल्कि तौहीन की। (८) कोई क़ानूनगो भी इस इलाक़ा-ए-अमहट में मारा

गया था, यह इल्ज़ाम इज़ाफ़ा किया गया है। (९) जब दूसरी फ़ौज अंग्रेज़ों की तसल्लुद क़ायम करने के लिए गोलाबारी करती हुई आई तो शानदार मकानात, जो बाज़ार अमहट के उत्तर जानिब डेढ़ दो मील के अन्दर आबादी में थे, गोलाबारी करके मिस्मार करा दिया है। अब तक टीले मौजूद हैं, जो फ़रियाद कर रहे हैं। इस वक्त सब लोग बच बचाकर वसीह इलाके में फ़रार होकर चले गये। ताकि जानें बच जायें। (१०) बुज़ुर्ग मख़सूस अपने बड़े वालिद ग़नी बहादुर खां की ज़बानी यह हालात मिले कि जब तसल्लुद क़ायम होने का ऐलान हुआ तो यह भी ऐलान हुआ कि सब लोग वापस आजायँ। जब वापस आये तो धोखा देकर बुलवाया, लेकिन बहुत लोग नहीं गये सिर्फ़ दस या बारह आदमी गये, जिनमें ग़नी बहादुर ख़ां, मेंहदी ख़ां, राजा ख़ां, झाऊ ख़ां, बाकी लोगों का नाम याद नहीं रह गया—सब को गिरफ्तार कर लिया गया। फाँसी देने का हुक्म हुआ तख्ता फाँसी लग गये। जुडीशियल कमिश्नर ने माफ़ कर दिया, जान बची। (११) एक फ़रमान-ए-शाही और भी बज़बाने फ़ारसी बनाम राजा ख़ां और अल्लाहयार ख़ां के नाम मौजूद देखा है जिसमें किसी मामले के तस्फ़िये के लिये राजा ख़ां व राजा इस्माईल को हुक्म दिया गया था। (१२) मुख्तसर ख़ाका वाक़यात का इस ज़ब्ती इलाक़े का गज़ेटियर में शाया हो चुका होगा मिसिल ज़ब्ती मुहाफ़िज़ ख़ाने में मौजूद है मुलाहिज़ा फ़रमाई जा सकती है। रियासत दियरा में रियासत अमहट के शामिल होने वाले इस इलाके के काग़ज़ात भी अलहदा होंगे। (१३) इसी बग़ावत की बिना पर अमहट के जब्ती शुदा इलाके में एरोड्रम भी बनाया गया ताकि बिलकुल कुचल दिये जांय, अब सर न उठा सकें। (१४) मेरे चचाज़ाद भाई......हुसेन जो रेलवे में मुलाज़िम थे, सन् १९१९ में जब कि कांग्रेस में मुहम्मदअली और शौकत अली भी शामिल थे जनाब महात्मा गाँधी की स्पेशल देहली से अमृतसर जाने वाली थी। वहां मीटिंग होने वाली थी। उस वक्त मेरे भाई...........जो सहारनपुर में तैनात थे और रेलवे ड्राइवर थे और एक अंग्रेज़ने उन पर ज़ोर डाला कि वह स्ट्राइक कर दें ताकि गाँधीजी की स्पेशल न जा सके। मगर उन्होंने स्ट्राइक न होने दिया ताकि स्पेशल गाँधीजी की चली जावे। यह २४ दिसंबर को स्ट्राइक कराई जा रही थी लेकिन स्ट्राइक न होने से स्पेशल चली गई बाद स्ट्राइक की गई। जब पूछा गया कि २४ को तो स्ट्राइक न हुई अब पहली को क्यों की गई तो ज़वाब में कहा २४ दिसंबर को अंग्रेज़ों के बच्चे पहाड़ों से अपने वारिसों के पास तातील में भेज दिये जाते हैं अगर स्ट्राइक होती तो बच्चे वारिसों तक नहीं पहुँच सकते थे तो ख़ामोशी हुई।

मिजानिब क़ौम ए खानज़ादगान अमहट
ख़ादिम हुसैन ख़ां सब-इंसपेक्टर मोरक़ा
१०-६-५७

अर्ज हाल-ए-खास है (१५) मक्फ़ी न रहना चाहिए, मरने पर सौ दुर । इस अफ़सोसनाक पामाली के बाद बलवाई की ज़मीन कोआपरेटिव को दे दी, जिसका उनको कोई हक़ नहीं था, क्योंकि एरोड्रोम मजिस्ट्रेट साहब ने हुक्म फ़रमाया था कि जब ज़मीन हवाई अड्डे के मसरफ़ में न रहे तो अस्ल मालिकाने ज़मीन को उसी सूरत में वापिस दे दी जावे । अलावा इसके दो गवर्नमेन्ट आर्डर भी जारी हो चुके हैं कि ज़मीन वापस देना चाहिए । हुक्म एरोड्रोम की बिना पर हम लोगों की दरख्वास्त तक़रीबन दो बरस हुए गुजरी, पर बोर्ड मीटिंग के लिये भेज दी गई, जिसे तक़रीबन आठ माह हुए होंगे । अभी तक ख़ामोशी के नशे में पड़ी है । खास तवज्जह की ज़रूरत है और इलाक़ा भी बा गुज़ार होना चाहिये । बलिहाजे आगाही वाक़यात अर्ज किये ।—ख़ादिम हुसैन ख़ां ।"

अमहट के ख़ानज़ादों से विदा लेकर जब मैं चला तो १८५७ से लेकर १९५७ तक, पूरी एक शताब्दी मेरे सामने आ रही थी । किसी बड़े क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्ति को आन्दोलन की असफलता के बाद जो कुण्ठा और अवसाद सहना पड़ता है वह बड़ा भयंकर होता है । यह खानज़ादे, जो बात-बात में अपने पुरखों की जमींदारी और लाखों के वैभव का शोर मचाते थे वह उनके फटे-पुराने कपड़ों, मँहगाई की मार खाये हुए सूखे चेहरों और उनके वर्तमान मज़दूर जीवन के साथ जुड़कर एक ऐसी जटिल गुत्थी के रूप में सामने आता था जिसे सुलझाना आसान काम नहीं है । जाने कितने बड़े मँझोले ऐसे परिवार होंगे, जो सत्तावनी क्रान्ति में अपनी लाखों की हैसियत खोकर कौड़ी-कौड़ी के मुहताज हो गये । स्वर्गीय ख्वाजा हसन निज़ामी द्वारा लिखित दिल्ली के शाहज़ादों और शाह-ज़ादियों के विवरण पढ़कर, कई बरस पहले मैं फूट-फूटकर रोया था । कल का शाहज़ादा आज का भिखारी, कल की शाहज़ादी आज के किसी अति साधारण नौकरी पेशा व्यक्ति की स्त्री बन गई, यह बातें मुझे अंग्रेजों के ख़िलाफ़ उभारती थीं ।

परन्तु आज, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हम उन लाखों के वैभव वाले क्रान्ति-कारियों के लुटे हुए वंशजों को कैसे संतोष प्रदान करें । सौ बरस पहले के पुरखों के कारनामों के लिये क्या आज उनके वंशजों को पेन्शनें बाँटी जाँय ? यह उचित

होगा ? ऐसे अनेक परिवार होंगे जिनके व्यक्ति गदर में लड़कर शहीद हुए, परन्तु न वे तब अमीर थे न आज। उन अनजान पुरखों की शहादत क्या हमारे लखेसरी पुरखों से कम थी ? यदि पेन्शनें ही बँटनी हैं, तो फिर सबको क्यों न बँटें ? ग़दर, सन् १९०७ के स्वदेशी आन्दोलन, जलियांवाला बाग़ के शहीदों से लेकर सन् ४२ तक की असंख्य हुतात्मायें हैं। अगर सबको पेन्शनें ही बाँटी जाँय, तो राष्ट्र पर कर का एक बड़ा भार लद जाय। फिर क्या शहीद केवल अपने लिये ही शहीद हुए थे ? उनकी शहादत का फल सारे देश को मिलता है। जब हमारा राष्ट्र सम्पन्न होगा तब उसका प्रत्येक व्यक्ति सुख पायेगा। सौ वर्ष पहले के पुरखों की वीरता के लिये उनके वंशजों को आज पेन्शन देना अनुचित है। हाँ, उन वंशों को विशेष सम्मान अवश्य देना चाहिये, जिससे कि शूर पुरखों के वंशज अवसर पड़ने पर आज भी वैसा ही दृष्टान्त उपस्थित कर सकें। यदि अमहट के अमीर खानज़ादों के वंशज पेन्शन के मुस्तहक़ हैं, तो लखनऊ के वे गरीब पासी क्यों नहीं; जिनके ग़रीब पुरखों ने बेलीगारद में बार-बार सुरंगें बिछाकर अद्भुत साहस का परिचय दिया था।

इसमें सन्देह नहीं कि अमहट के खानज़ादों ने सन् १८५७ में शाही फ़र्मान पाकर राजा अर्थात् देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाया। शाही फ़र्मान यह भी सिद्ध करते हैं कि १८५७ की क्रान्ति एक संगठित आयोजन थी और गाँव के गाँव उसमें सम्मिलित हुये थे।

हाँ, भारतीयों की ओर से क्रूरतायें भी हुईं। स्वयं अमहट वालों ने यह भी स्वीकार किया कि उनके पुरखों ने अपने राजा की आज्ञा पालन करने के जोश में अंग्रेज़ स्त्रियों और बच्चों तक को न छोड़ा। यह क्रूरता सचमुच किसी भी युग में अक्षम्य मानी जायगी। बेगम हज़रत महल के अनुशासन में चलने वाली सरकारे-बिरज़ीसी पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि उनकी आज्ञा से शत्रुओं की स्त्रियों और बच्चों का क़त्ल हुआ। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि हज़रत महल ने शत्रुओं की बन्दी स्त्रियों और बच्चों को बचाया था, उन्होंने बदले की आग से सुलगते हुये क्रान्तिकारियों को क़ैदी स्त्रियाँ और बच्चे देने से इंकार कर दिया था।

जो हो, अमहट वाले पुरखों के इस घृणित कर्म के लिये डाक्टर मजूमदार की भाँति मेरा मस्तक भी राष्ट्रीय लज्जा से झुक जाता है, परन्तु यह विचार भी बार-बार आता है कि आखिर ऐसा क्यों हुआ ? क्या यह नृशंसता एकपक्षीय ही

थी ? क्या इस बात के प्रमाण कम हैं कि भारतीय सैनिकों और प्रजा-जन ने शत्रुओं से जी जान से लड़ते हुए भी संकट में पड़े अकेले-दुकेले अंग्रेज़ स्त्रियों, पुरुषों की रक्षा की ?

नगर के प्रतिष्ठित वकील बाबू गणपति सहाय से भेंट की। वे बोले : "ज्यादा तो नहीं जानता पर इतना कह सकता हूँ कि हमारे यहां गदर में सबसे बड़ा हिस्सा अमहट वालों ने लिया था। हमारा तो शहर का शहर बम्बार्ड कर दिया गया। पुराना सुल्तानपुर गोमती के पार है, वहीं लड़ाई हुई थी। लड़ाई के बाद पूरी बस्ती उजाड़ डाली गई। फिर लोग इधर आकर बसे। इस तरफ़ पहले अंग्रेज़ी कैम्प था। देहाती अब तक इस इलाक़े को कम्पू कहते हैं। सुल्तानपुर की पहली आबादी से पता चलता है कि पुराने ज़माने में हमारे यहां हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे होंगे। आप अगर पुरानी बस्ती के खँड्हरों को देखने जायेंगे, तो खुद देखेंगे कि मन्दिर और मस्जिद एक साथ अगल-बगल बने हुए हैं। जब ग़दर शुरू हुआ तो दियरा के ताल्लुक़ेदार बाबू रुस्तम साही ने अंग्रेज़ों को बचाया; उन्हें पर्देदार पालकियों में जौनपुर भेज दिया। ग़दर के बाद बाबू साहब को राजा का टाइटिल और जागीर भी मिली। अंग्रेज़ों ने जब कब्ज़ा किया तब सीताकुंड के पास नीम के पेड़ से उन्होंने सैकड़ों हिन्दुस्तानियों को फाँसियां दी थीं।"

बीबी की मस्जिद के पेश इमाम मौलवी अब्दुल अव्वल ने बतलाया "बहादुर शाह ज़फ़र के कोई बेटे या पोते ग़दर के ज़माने में भागकर यहां आये थे। वे सूफ़ी हो गये थे। हज़रतशाह अब्दुललतीफ़ साहब के नाम से वे मशहूर हुए और ताउम्र यहीं रहे। दूसरी बात आपसे अर्ज़ करना चाहता हूँ कि जनरल बख्त खां रुहेला जो ग़दर के जमाने में बड़े सरनाम हुए, उनकी ननिहाल अवध सुल्तानपुर में थी। तीसरी बात यह है कि कादू के नाले पर मुजाहिदीन ग़दर ने बड़ा मोर्चा लिया।"

श्री शंकरलाल एम० एल० ए० ने भी कादू के नाले वाली लड़ाई को अत्यधिक महत्वपूर्ण बतलाया, बोले : "उस ज़माने में वहां बड़ा बीहड़ जंगल रहा। थोड़ा बहुत जंगल अब भी है। वहां हिन्दुस्तानियों ने अंग्रेज़ों को मार-मार कर खलिहान भर दिये। अंग्रेज़ वहीं से बाहर खदेड़े गये।"

एक वैद्यजी, और एक 'ज़िले के सर्वश्रेष्ठ विद्वान' महोदय के नाम और पते भी बतलाये गये। मैं दोनों सज्जनों के यहां दो-दो, तीन-तीन बार गया। दुर्भाग्य-

वश वे लोग न मिल सके। शाम को किसान महोदय के चिरंजीव की तिलक पार्टी में ज़िले के सर्वश्रेष्ठ विद्वान जी पधारे थे, उन्हें बतलाया भी गया कि मैं उनसे मिलने कई बार गया। बाद में उसी पार्टी में मुझे भी यह बतलाया गया कि ज़िला विद्वान् पधारे हैं, मैं उनसे मिल लूं। मगर फिर मेरी इच्छा न हुई। मुझे लगा कि वह व्यक्ति दम्भी है। जान पहचान न होने पर भी एक लोकहितकारी साहित्यिक कार्य के लिये मैं जिसके पास तीन-तीन बार दौड़ा गया वह चार कुर्सी लाँघ कर मेरे पास नहीं आ सकता? मन में एक रमक यह भी आई (जो मुझे बहुत ही कम आती है) कि उस ज़िला प्रसिद्ध व्यक्ति के आगे मैं भारत प्रसिद्ध व्यक्ति हूँ। उसके घमण्ड को बल न दूँगा। इस 'भारत प्रसिद्धि' के ज़ोम के साथ मन ही मन हँसी भी आई—क्या यह भी अभिमान करने लायक़ वस्तु होती है? मुझसे अधिक प्रसिद्ध और अनेक हैं। सबसे अधिक प्रसिद्ध तो राजकपूर, नरगिस, लतामंगेशकर एक ओर और दूसरी ओर जवाहरलाल नेहरू हैं। फिर किस किसकी अकड़ बरदाश्त की जाय। और सच तो यह है कि घुन्नी अकड़ वाले आदमी आमतौर पर खोखले होते हैं।

गोंडा

गोंडा ज़िले के एक सनाढय ब्राह्मण जियालाल लखनऊ में ठेला खींचते हैं। मेरे पड़ोस में ही रहते हैं और जब तब मेरे पास चिठ्ठी पत्री लिखाने या दुख-सुख कहने आ जाया करते हैं। एक दिन मैंने उनसे पूछा: "जियालाल, तुमने राजा देवी बकस का नाम सुना है?"

"राजा देवी बकस क नाम चारौ अलँग फैला है, पंडित जी! हमरे दचास का बच्चा-बच्चा राजा देवी बकस क जानत है।"

फिर मेरे आग्रह पर जियालाल ने राजा देवी बख्श के संबंध में एक लोक रचना सुनाई, जो इस प्रकार है।

राजा देवी बकस लोह बंका, जिनका रत्ती भर न संका।
वहि बजवाय दीन है डंका।
राजा एक सर बँधाय दीन लाय,
जब राजा कै राज रहा, तब सुखी सबै संसार रहा।
धान जुंधरिया, साँवा, कोदों, सस्ता भाव बिकाय रहा॥

घर कोरी से जोड़ा बिनावैं, मरदौं का पहिनाव रहा।
सिकिया पट्टा बाफता औरत का पहिनाव रहा।।
थोरे दाम मा बनै मिरजई ओही मा मरजाद रहा।

राजा देबी बकस अस सुन्दर,
उनके हाथ सोने का मुन्दर।
उनके आगे सब लगैं छछुन्दर;
उनकै चौरासी कोस मां रहै राज।

जब दागै तोप दैवु घर गरजै फाट दरारा नइया।
हजारों गोरा डूब मरे वहि कहते बप्पा दैय्या।
भागो मेम चलौ बिल्लाइत हियां है बड़े धरइया।
राजा एक सौ बँधाय दिया लाय।"

चौरासी कोस राज्य की परिभाषा करते हुए जियालाल ने कहा कि "उनकै राज हियां लखनऊ मां लोहिया के पुल तक रहा।"

राजा देवी बख़्श के सम्बन्ध में उससे कुछ दिन पहले स्थानीय दैनिक 'स्वतंत्र भारत' में भी एक आल्हा पढ़ चुका था। उनकी लोकप्रियता का अन्दाज़ इन जन-काव्यों से ही लगता है।

१५ जून। स्टेशन पर ही अतिरिक्त ज़िला सूचना अधिकारी ने सूचित किया कि उनका ड्राइवर बीमार है, गाड़ी का प्रबंध नहीं हो सकता। मुझे पहली बार यह अनुभव हुआ कि बन्धन किसी भी चीज़ का हो बुरा होता है। विभिन्न ज़िलों में यात्रा की सरकारी सुविधा प्राप्त हो जाने के कारण पैसे कम ही लेकर चलता हूँ; साज-सामान भी मेरी इस प्रकार की यात्राओं के पुराने साथी, पत्नी द्वारा बुने गये सुतली के झोले के बजाय होल्डऑल और सूटकेस था। इसलिये ठाठ फ़क़ीरी से घूमना मुमकिन न था। ख़बर सुनते ही एक ठण्डी आह भरी, सोचा जो दो नाम ठाम लाया हूँ उनसे तो भेंट कर ही लूंगा, इसके अतिरिक्त गोंडा में हास्य-रस के मोहनजोदारो आदरणीय श्री जी० पी० श्रीवास्तव तो हैं ही, उनसे भी कुछ लोगों के नाम मिल जायेंगे। हां, तुलसीपुर न जा सकूंगा। तुलसीपुर की रानी ने गदर में बड़ा भाग लिया था। उनके सम्बन्ध में गहरी उत्सुकता थी। सत्तावनी क्रान्ति में हमारे जन जीवन के प्रत्येक वर्ग की स्त्री ने प्रमुख भाग लिया है। यह बड़ी ही उत्साहप्रद बात है। रानियाँ, बेगमें, वेश्यायें और साधारण घरों की स्त्रियों ने भी इस राष्ट्रीय युद्ध में अपने तेज का परिचय दिया। पर्दा प्रथा के कट्टर पोषक तत्का-

लीन भारत की देवियों का गदर में इस प्रकार भाग लेना क्रान्ति नहीं तो और क्या है।

गोंडा नगर अब तक के देखे हुए स्थानों में सब से दरिद्र लगा। मकान अधिकतर खँडहर हैं। गोंडा प्राचीन बस्ती है और जैसा कि नाम से ही विदित होता है यह गोंडों का नगर था। थारू, गोंड, भर, पासी, कुर्मी आदि जातियों का किसी समय यहां बड़ा ज़ोर था। गोंडा ज़िले के बरवार स्त्री-पुरुष चोरी करने में बड़ा नाम पा चुके हैं। पुरी के जगन्नाथ मंदिर और बहराइच के सैयद सालार की दरगाह छोड़ कर प्रायः हर देवी देवता-को ये बरवार लोग लूट लेते हैं। गज़ेटियर में गोंडा के बरवारों का यह महात्म्य मैंने पढ़ा था। कर्नल स्लीमेन की पुस्तक में यहां के डाकू फ़ज़लअली का हाल भी पढ़ चुका था। यहां के चोर डकैतों की पुरानी परम्परा यह सिद्ध करती है कि किसी ऐतिहासिक, कारणवश यहाँ दरिद्रता और बेकारी बढ़ी, जिसके कारण लोगों ने चोरी डकैती का पेशा अपना लिया।

जो हो, इस समय तो मैं गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह का माहात्म्य यहाँ के लोगों से सुनने आया था। गोंडा के अतिरिक्त सूचना अधिकारी श्री सिंह काफ़ी सीधे और भले लगे। रास्ते में उन्होंने भी मुझे राजा देवीबख्श की रानियों के सम्बन्ध में एक बात बतलाई।

"राजा के दो रानियाँ थीं। एक पयागपुर के राजवंश की थी। यह रानी राजा के नेपाल भागते समय उनके साथ गई थीं। नेपाल में राजा देवीबख्श का देहान्त होने पर वे लौट कर पयागपुर चली आईं। उनका देहान्त अभी आठ-दस वर्ष पहले ही हुआ। दूसरी रानी ने राजा के नेपाल जाते समय हीरे की कनी खाकर आत्महत्या कर ली थी"।

लखनऊ से चलते समय एक मित्र ने मुझे ठाकुर नौरंग सिंह का नाम बतलाया था। ठाकुर साहब काँग्रेस के पुराने और प्रतिष्ठित कार्यकर्ता हैं, साथ ही इस समय ज़िला बोर्ड के अध्यक्ष भी हैं। श्री सिंह को लेकर मैं उनकी कोठी पर पहुँचा। यह जगज़ाहिर है कि नेता लोग हर दम जनता से घिरे रहते हैं; ठाकुर साहब भी काफ़ी व्यस्त नज़र आये। मेरा आशय जानकर उन्होंने अपने सारे कार्य कुछ देर के लिये रोक दिये। पास ही बैठे, एक वृद्ध सज्जन ने बतलाया : "आप राजा देवीबख्श के कुटुम्बी हैं।"

ठाकुर साहब मुस्कुराये, फिर बतलाने लगे : "देवीबख्श सिंह विसेन क्षत्रिय थे। विसेनों के पराक्रम का इतिहास गज़ेटियर में लिखा है।

"राजा देवीबख्श हमारे पूर्वज थे । यहां तीन हिस्सा क्षेत्र में रियासत थी और दो हिस्से में कुटुम्बियों का इलाका था । इसे 'पाँचा-दुआ' पद्धति कहते हैं । जब अंग्रेज़ जीत गये तो उन्होंने राजा के राज्य के साथ-साथ उनके कुटुम्बियों का इलाका भी जब्त कर लिया । इनका इलाक़ा गोंडा से १२ मील दूर 'बड्डीहा' कहलाता है ।

"गोंडा के वर्तमान राजा 'पांडे' वंश के एक व्यक्ति उस समय राजा देवीबख्श के यहाँ ज़िम्मेदार पद पर थे; सम्भवत: राशन विभाग के अध्यक्ष थे । उन्होंने विश्वास-घात किया, अंग्रेज़ों से मिल गये । अन्तिम युद्ध के समय सात दिनों तक सेना को राशन नहीं मिला, सिपाही भूखे रहे । राजा ने सुना तो बड़े दुखी हुए और कहा—'जब यहाँ तक विश्वासघात है, तो अब हम यहाँ नहीं रहेंगे, अंग्रेज़ों के राज में पानी भी नहीं पियेंगे ।' राजा के बाद रियासत तीन भागों में बँट गई—एक भाग गोंडा के पाण्डेय को, दूसरा अयोध्या के राजा को और तीसरा भाग बलरामपुर के राजा को अंग्रेज़ों के प्रति वफ़ादार रहने के कारण इनाम में मिला ।

"पाण्डेय जी दोनों से मिले थे । हमारे पूर्वज अंग्रेज़ों के भय से जंगलों में भटकते थे । पांडे जी उनसे मिलते तो डराते कि अंग्रेज़ों को तुम्हारा पता लग गया है, वे पीछे पड़े हैं । तथा अंग्रेज़ों से आकर कहते कि वे लोग युद्ध की तैयारी कर रहे हैं । इसी घात में बड्डीहा का इलाक़ा जब्त हुआ । महारानी विक्टोरिया की घोषणा के बाद हमारे कोई पूर्वज अंग्रेज़ों से मिले, तब रहस्य उजागर हुआ । अंग्रेज़ों ने २४०० बीघे ज़मीन इन्हें दी—कहा, चाहे जहां ले लो । माफ़ी मिलेगी और जो भी ताल्लुकेदार होगा उसे यह रक़म देनी होगी । इस हुक्म के अनुसार पहले पांडे जी हमारी ज़मीन का कर अदा करते थे । बाद में बलरामपुर ने वह क्षेत्र ले लिया तो वो अदा करते थे । कांग्रेस सरकार ने अब लगान बाँध दिया है, जो पिछले वर्ष से अदा किया जाने लगा है । बागात अब तक हैं ।

"राजा के महल और सागर तालाब के अन्दर बनावटी टापू पर स्थित मन्दिर तक एक सुरंग बनी थी । उस वंश में राजा रामसेवक सिंह बड़े कृष्णभक्त हुए । वे मथुरा जाकर रहने लगे । लौट कर नहीं आना चाहते थे, परन्तु उनकी रानी ने उन्हें आग्रहपूर्वक बुलवाया । रानी के आदेश से ही कुंज, सागर, टापू और उसमें स्थित मंदिर बना । अनेक स्थलों के नाम वृन्दाबन, बरसाना आदि रक्खे गये ।

"राजा देवीबख्श आजानु-बाहु थे । बड़े वीर थे । उनसे पहले कोई दत्तसिंह राजा भी थे ।

"राजा जब नेपाल भाग कर गये, तो फिर लौट कर नहीं आये । उनके साथ एक रानी भी गई थी, जो पयागपुर की लड़की थी । रानी लौट कर फिर अपने पीहर पयागपुर आ गई थी । उनके जाने के सम्बंध में दो बातें कही जाती हैं—एक तो यह कि राजा अकेले बिना किसी से कुछ कहे एक रात को निकल गये । दूसरी किंवदन्ती के अनुसार एक रानी उनके साथ ही चली गई थी, और नेपाल में राजा का दाहसंस्कार कर पीहर वापस चली आई ।

"क़स्वा नामक एक ठिकाने के राजा अशरफ़ बख्श मुसलमान एक छोटे ताल्लुकेदार थे । राजा के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े थे, उनकी रियासत भी ज़ब्त हो गई ।

"तुलसीपुर की रियासत ज़ब्त कर बलरामपुर को माफ़ी में दे दी गई ।

"कहा जाता है कि बेगम ने राजा को पत्र लिखा था कि हमारी सहायता करो? इसी से राजा ने उनका साथ दिया ।"

ठाकुर नौरंग सिंह और राजा मनकापुर के सहयोग से गोंडा में राजा देवीबख्श सिंह के स्मारक के रूप में २५०००) रुपये की लागत का भवन बना है, जिसमें कांग्रेस-दफ्तर भी है ।

लखनऊ से चलते समय रेडियो के भाई राम उजागर जी दुबे ने मुझे श्री शान्ति प्रसाद शुक्ल एडवोकेट से मिलने के लिये भी कहा था । उनके यहाँ पहुँचा । शुक्ल जी गोंडा के सफल और प्रतिष्ठित एडवोकेट हैं । दुबले-पतले, श्यामवर्ण, तितली मार्का मूंछ, बाल सफ़ेद हो चले हैं । आयु अनुमानतः पचास-बावन होगी । शुक्ल जी बात-चीत करने में बड़े मीठे और काम का नशा रखने वाले पुरुष हैं । गदर और राजा देवीबख्श की बात छिड़ते ही वे उसके प्रसंगों को लेकर मग्न हो गये ; राजा की कहानी कहना फिर गजेटियर निकाल कर उसके हवाले देना, वाजिबुल अर्ज़ देखने के लिये विचलित होना (और वह उनके पास न थी) फिर कहानी कहना, यह बातें मुझे बड़ी भायीं । शुक्ल जी ने बतलाया : "यहाँ देवीबख्श ने विद्रोह किया । बड़ा बलवान पुरुष था । उसका शरीर ख़ूब गठीला और व्यक्तित्व विशाल था । राजा देवीबख्श अद्भुत रूप से साहसी पुरुष था । उसके लिये कहा जाता है कि चाँदी का रुपया अंगूठे और उँगली में दबा कर मोड़ देता था । वह बहुत ही चतुर घुड़सवार था, मल्लयुद्ध में वह अद्वितीय था ।

"डाक्टर सेन और मौलाना आजाद का विचार ग़लत है कि पुराने लोगों में राष्ट्रीयता नहीं थी । राष्ट्रीयता उस तरह की, हो सकता है न हो, जैसी आज कल मानते हैं पर राष्ट्रीयता अवश्य थी । इस देश की सांस्कृतिक, धार्मिक एकता को वे

क्यों भूल जाते हैं कि वह क्या थी ?

"अच्छा राजा देवीबख्श की वंशावली बतलाता हूँ लिखिये—गोंडा के मानसिंह ने जहाँगीर को जब कि वे युवराज सलीम थे, नेपाल के आस-पास कहीं से मँगाकर सफ़ेद हाथियों का जोड़ा भेंट किया था। उस समय राजसत्ता अविच्छिन्न थी। जहाँगीर ने उनको बहुत-सा राज्य दे दिया। राजा देवीबख्श सिंह उन्हीं की लाइन में जुड़े हैं।"

"बिसेनों का इलाका वाजिबुलअर्ज में अवलोकनीय है। ग्राम इमरती बिसेन और दत्त नगर बिसेन विशेष हैं।"

"राजा देवी बख्श का विवाह गोंडा बस्ती की सीमा पर बाँसी क्षेत्र में हुआ था। बारह-चौदह वर्ष की आयु में बादशाह ने देवी बख्श को लखनऊ बुलवाया। इनके शौर्य, साहस और सुन्दरता की शोहरत वहाँ पहुँच चुकी थी, वे गये। दरबार में बादशाह से इनकी प्रशंसा की गई तथा इन्हें होनहार सामन्त बतलाया गया। बादशाह ने परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने अपनी सनक में यह कहा कि 'मेरे पास परीक्षा की एक कसौटी है।' एक दुर्दमनीय घोड़ा था। परीक्षा देते हुए अनेक नवयुवक उस घोड़े द्वारा फेंके जा चुके थे, कई घायल हुए अथवा मर तक गये थे। इसी घोड़े पर राजा देवी बख्श से चढ़ने को कहा गया। राजा देवी बख्श अनायास ही घोड़े की नंगी पीठ पर चढ़ गये, केवल लगाम लगा कर। ऊपर बालाखाने से बेगम यह दृश्य देख रही थीं। उन्होंने इस नवयुवक का सुन्दर सुडौल रूप और उसकी वीरता पूर्ण आभा को देखा। उन्हें तरस आया, किन्तु कुछ कह भी न सकी थीं कि घोड़ा हवा का घोड़ा बन कर भागा। देवी बख्श ने उसे इतना छकाया, इतना थकाया कि घोड़ा बेदम होकर इनके क़ाबू में आ गया। बेगम ने देवी बख्श को बेटा कह कर अपनी गोद में बिठा लिया और इन्होंने भी उन्हें 'माँ' कहा। और तभी से देवी बख्श बेगम का अनन्य भक्त हो गया। सन् १८५६ में अवध के अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने के बाद जो घटनायें सन् १८५७ में हुईं, उसमें देवी बख्श बेगम का शपथबद्ध साथी हुआ। कहा जाता है कि उस दौरान में एक बार घाघरा के इस पार राजा देवी बख्श सेना सहित कैम्प कर रहे थे और उस पार अंग्रेज सेनापति पहुँचा। उसने राजा देवी बख्श से कहलाया कि यदि वह बेगम का साथ छोड़ दे तो उनका राज्य जब्त नहीं किया जायगा। देवी बख्श ने कहा कि ये शरीर रहते अपनी माता का साथ नहीं छोड़ सकता। इस प्रकार राजा देवी बख्श ने विद्रोह का झंडा ऊँचा रक्खा। एक आध युद्ध गोंडा से पूर्व स्थानों में भी हुए। बाद में राजा देवी बख्श बलरामपुर

चले गये। बलरामपुर के तत्कालीन राजा दिग्विजय सिंह के आश्रय में दोनों रानियों को छोड़ कर देवीबख्श नेपाल चला गया। दिग्विजय सिंह ने विश्वासघात कर अंग्रेजों के हवाले दोनों रानियों को करना चाहा। रानियों को ख़बर लग गई। वे छिप कर पालकी में नेपाल भागीं, किन्तु राह में अंग्रेजों ने घेर लिया। पालकी नीचे रखवा दी। रानियों ने अंगूठी के हीरों की कनी खाकर प्राण दे दिये। ये जीती जागती किंवदन्ती है। एक रानी ने मरते समय शाप दिया था कि बलरामपुर राजा का वंश नहीं चलेगा।

"राजा देवी बख्श सिंह वास्तव में एक महापुरुष था। जगदीशपुर के कुँवरसिंह से उसकी मित्रता थी।

"राजा देवी बख्श के लिये हिन्दू-मुसलमान सब बराबर थे। उसे अंग्रेजों की सत्ता अखरती थी। भारतीयों की अवनति से उसे आन्तरिक पीड़ा थी। सन् ५७ से बहुत पूर्व ही उसके दरबार की यह परिपाटी थी कि मुहर्रम के अन्तिम दिन (अशरे के दिन) ताज़िये कर्बला जाते हुए उनके सिंह द्वार पर आदर पाते थे। वहाँ रक्खे जाते थे। मुसलमान इसमें अपना गौरव मानते थे। राजा देवी बख्श की अभेदभाव नीति इसी से स्पष्ट है। वह प्रणाली और परिपाटी अब तक क़ायम है। आज तक मुसलमान उस टूटे सिंहद्वार पर ताज़िये टिकाते हैं। उस खण्डहर सिंहद्वार की वन्दना मुसलमान करते हैं। वहाँ इतना जल-पुष्प चढ़ाते हैं कि कीचड़ हो जाती है।

"महल का खण्डहर मौजूद है। देख कर आँसू आ जाते हैं। उनकी बैठक भग्नावस्था में है। भीतर की बनावट अभी तक देखी जा सकती है, लेकिन दीवाने खास की छत बैठी जा रही है और कोई आश्चर्य नहीं कि इस वर्षाकाल में छत बैठ जाय। उसकी रक्षा आवश्यक है। कोट के आस-पास की ज़मीन भी रक्षणीय है। इमारत क्रमशः खण्डहर होती जा रही है। आँगन में एक बड़ा भारी कुँआ है।

"राजा बाँसी वाले की कहानी भी प्रसिद्ध है—एक बार राजा देवी बख्श का एक राज-भाट संयोग वश बाँसी दरबार में गया, उसने बाँये हाथ से सलाम किया। राजा बाँसी रुष्ट हो गये। भाट बोला कि राजन, मेरा दाहिना हाथ केवल राजा देवी बख्श को सलाम करता है। बाँसी के राजा ने कहा कि देखना है कौन श्रेष्ठ है। उनसे यह कह कर भाट के दाहिने हाथ में चूड़ियां पहना दीं। भाट ने आकर राजा देवी बख्श को दिखाया। देवी बख्श का तेज जाग उठा। उसने बाँसी पर चढ़ाई कर दी, उसे पराजित किया और उसके राजद्वार का फाटक उखाड़ कर ले आया और अपने सिंहद्वार पर उसे लगाया। अब भी उस द्वार के भग्नावशेष देखे

जा सकते हैं। इस खण्डहर और महल पर इस समय धानीपुर के राजा चन्द्रभानु दत्त राम का अधिकार है। उन्होंने महल के एक भू-भाग को ज़िला कांग्रेस कमेटी का भवन बनाने के लिये दे दिया है। उसमें पूर्व दिशा में वह फाटक है। उत्तर में बस्तियां बसाई जा रही हैं। ऐतिहासिक स्थल पर ये नई बस्तियों का आक्रमण खलता है।"

शुक्लजी की बात एक दृष्टि से मुझे भी उचित मालूम पड़ती है। नई बस्तियाँ बसें, इससे बढ़कर सुख की बात और कोई नहीं, परन्तु हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बीते हुये काल का भी अपना महत्व है। इतिहास के पृष्ठ हमारे आज और आगामी काल को सचेत कर आगे बढ़ाते हैं। इसलिए उनकी मानरक्षा का सवाल बड़ा अहम है।

दूसरी बात, यदि किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों पर कारणवश हमें नये युग को स्थापित करना ही हो तो उस जगह का प्रयोग किसी एक मुहल्ले को बसाने के लिये नहीं करना चाहिये। ऐतिहासिक स्थल जन-जन की भावना का किसी न किसी रूप में प्रतीक होते हैं। दस-बीस-पचास परिवारों की आबादी बसा कर-सैकड़ों हज़ारों की भावना को ठेस पहुँचाना ग़लत है, ऐतिहासिक स्थलों और इमारतों का उपयोग सार्वजनिक महत्व के कार्यों तक ही सीमित रहना चाहिये।

शुक्ल जी से मैंने तुलसीपुर की रानी के सम्बन्ध में भी उनकी जानकारी प्राप्त करनी चाही। वे बोले: "भाई, अधिक तो नहीं मालूम पर इतना मैंने भी सुन रक्खा है कि रानी बड़ी मनस्विनी और अहंकारिणी थी। तुलसीपुर में मिट्टी का क़िला था और ग़दर में, बाद को राजा बलरामपुर ने अपने सेनापति जनरल वेणीमाधव को उसे उजाड़ने के लिये भेजा था। तुलसीपुर और बलरामपुर में कुछ झगड़ा चला आ रहा था। बात कुछ ऐसी है—"

मैंने निवेदन किया: "झगड़े का इतिहास जानता हूँ, रानी के सम्बन्ध में ही जानना चाहता हूँ ?"

शुक्ल जी बोले: "रानी के सम्बन्ध में बस यही कह सकता हूँ कि जनरल वेणी-माधव से दुर्भाग्य वश रानी हार गई। वह या तो युद्ध में मारी गई या शायद आत्म-हत्या की, ठीक नहीं कह सकता। प्रसंग वश आप को यह बतला दूँ कि मेरी माता जनरल वेणीमाधव की पौत्री हैं, यद्यपि यह लिखाने जैसी बात नहीं, फिर भी मैं जानता हूँ कि आप यह लिखेंगे ही।"

इस यात्रा में अनेक सज्जनों से मेरी भेंट हो रही है, दस पाँच मिनट या घण्टे दो घण्टे तक साथ होता है। इतनी ही देर में कइयों से अपनेपन का नाता अनुभव होने लगता है। यह स्पष्ट है कि इनमें से बहुतों से मेरी फिर कभी शायद ही भेंट हो। इसलिये अनायास अपनापन देने वाले व्यक्तियों की स्मृति बड़े चाव से सहेज रखने को जी चाहता है। थोड़ी देर के साक्षात् परिचय में शुक्ल जी ने बड़े ही सहज भाव से मुझ पर अपना अधिकार मान लिया। चलते समय कहने लगे: "नागर जी! इन नोट्स और इन्टरव्यूज़ का संग्रह आप चाहें यों हीं छपायें या कोई और इस्तेमाल करें, इससे मुझे मतलब नहीं; मगर आप हमारे राजा देवी बख्श सिंह पर एक कहानी अवश्य लिखें, ख़ूब शौर्य और ओजपूर्ण हो साथ ही, करुणा पूर्ण हो। कहानी आप अवश्य लिखेंगे।"

"कहानी मैं अवश्य लिखूंगा शुक्ल जी, मगर देर-सबेर की क़ैद न लगाइये।" मेरे चरित्र में एक जगह अव्यवस्था है, उसी को सुधारने के लिये साहित्य में अपने आप को अधिकाधिक सँवारने का प्रयत्न भी करता हूँ; घोर आलसी हूँ और उसे दूर करने के लिये ही अपने मस्तिष्क और शरीर को चुनौती के साथ दौड़ाता-धुपाता भी हूँ। राम-रावण की तरह मेरा अन्तर्द्वन्द्व जूझता ही रहता है। इसलिये हर काम तत्काल नहीं कर पाता। कुछ न कुछ देर-सबेर तो हो ही जाती है। ग़दर संबन्धी उपन्यास में राजा देवी बख्श भी आयेंगे ही, भरसक शक्ति लगाकर मैं उस काल के जन-जीवन और उसके शौर्य प्रतीकों द्वारा अपने महाभाव को पाने का प्रयत्न करूँगा। उसके बाद भी, ज़िन्दग़ी शर्त है, मैं अपने एक आदरणीय पाठक और श्रोता (रेडियो द्वारा) के गोंडा नगर नायक राजा देवी बख्श को अपनी एक कहानी का नायक बनाऊँगा।

मैं 'लिखिया' बनना चाहता हूँ। डाकखाने के बाहर बैठ सबके पत्र लिखने वाला मुंशी मेरा आदर्श है। वह मात्र टके कमाने के लिये लिखता है, मैं टकों से अधिक किसी बड़े सन्तोष के लिये भी लिखता हूँ। समय की मांग से मैं मुक्त नहीं हो सकता, फ़िलहाल उसकी कामना भी नहीं करता। इसी बन्धन से बँध कर आज मेरा विकास हो रहा है, वरना मैं जनम का काहिल जाने कौन गति पाता। अस्तु।

शुक्ल जी से मैंने श्री जी० पी० श्रीवास्तव का पता पूछा। गोंडा आऊँ और 'हास्य रस सम्राट श्री जी० पी० श्रीवास्तव' एक नाम और बेंत की कुर्सी पर बैठी, बड़ी मूँछें पिचके गाल, एक गाल पर उँगली रक्खे एक आकृति की बहुत बार पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में छपी हुई तस्वीर वाले व्यक्ति का दर्शन न करूँ यह कैसे

हो सकता है, परन्तु श्रीवास्तव जी की उस बरसों पुरानी छपी हुई तस्वीर का अब केवल कहानियों से ही सम्बन्ध रह गया है। श्रीवास्तव जी मुझे बहुत स्नेह देते हैं। मेरे कुछ निजी बुज़ुर्गों की तरह वे भी इस बात से नाराज़ हैं कि मैंने रेडियो की जमी-जमाई नौकरी छोड़ दी। मुझे देखते ही मगन हो गये और बैठते ही अपनी पुरानी शिकायत दोहराई : "नागर तुमने रेडियो छोड़ दिया इस बात से हम भाई बहुत नाराज़ हैं तुमसे। हो सकता है कि तुम फिर अपनी पुरानी दलीलें दोहराओ मगर मैं तुम्हारा यह 'प्रोग्रेसिव पन' नहीं मानूंगा। भला बताओ, अच्छी खासी जगह बैठे थे, हमको भी यह 'फ़ील' होता था कि रेडियो पर, मतलब यह है कि हमारा भी क़ब्जा था..."कहते-कहते रुके तैश में सिर झुकाया और पंजा घुमाकर बोले : "खैर, यह अचानक गोंडा कैसे आना हुआ ?"

मैंने अपना आशय निवेदन किया। श्रीवास्तव जी आराम कुर्सी पर सिर टिका कर लेट गये, कुछ रुक कर बोले: "काम हास्य की 'फ़ील्ड' का तो नहीं है, मगर उम्दा है। ये तमाम ग़दर के क़िस्से कहानियां साहित्य में सुरक्षित हो जायेंगे, यह अच्छी बात है। तुम अपनी फ़ील्ड के बाहर का भी बहुत काम कर लेते हो। तुम्हें देख कर बड़ी खुशी होती है। मगर बस यही शिकायत है कि...क्या कहूँ...अच्छी खासी कुर्सी छोड़कर ग़दर के लिये दर-दर की खाक छान रहे हैं साहब..."फिर सर झुकाया सवा-लिये पंजे हवा में हिलाये—"हम अब पुरानी चाल के पड़ गये नागर। देखो, अब हमें कोई पसन्द ही नहीं करता।" मैंने कहा: "आप इस तरह की बातों से अपने आप को परेशान क्यों करते हैं ? आप अब उस ऐतिहासिक महत्व को पा चुके, जिसे पाने के लिये हम प्रयत्नशील और इच्छुक हैं। और फिर भी यह नहीं जानते कि वह महत्व हमें मिलेगा या नहीं।"

बेनी कवि, भारतेन्दु, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, शिवनाथ शर्मा, बाल-मुकुन्द गुप्त की चुटकियां भड़ौवे क्या कभी अपना ऐतिहासिक महत्व खो पायेंगे। जी० पी० श्रीवास्तव एक प्राय: विनोद शून्य युग में अवतरित हुए थे। हमारे देश में चूंकि हजारों वर्ष की पुरानी संस्कृति, दर्शन, इतिहास की अटूट परम्परा चली आ रही है, इसलिये हमारे बच्चे पैदा होते ही बूढ़े हो जाते हैं। राम जाने कब से यह घूरापंथी हमारे देश की सांस्कृतिक बुद्धि में समाई है। हमारा जन साधारण का पुरखा संयम के अन्तरिक्ष से बँध कर भी बड़ा आनन्दवादी था। उस क़ौम के बच्चे मुर्दा हो जाते हैं, जो उचित श्रद्धा भाव रख कर भी अपने बाप से मज़ाक़ करने में चूक जाते हैं। व्यंग्य, विनोद, हास्य जीवन के लिये दाल तरकारी का नमक है।

जी० पी० श्रीवास्तव की 'लम्बी दाढ़ी' जब भी पढ़ूंगा मुझे मजा देगी। जी० पी० श्रीवास्तव ने कालिदास की निरंकुशता, भाषा की अनस्थिरता और स्वकीया-परकीया की मलखम्भ भँजायी के दिनों में उपदेशों से ठस साहित्य के क्षेत्र में अपनी 'लम्बी दाढ़ी' कुछ इस ढब से हिलाई कि ज़माना हँस पड़ा। कौशिक जी, और शिव पूजन सहाय जी की हास्य व्यंग्य भरी रचनायें किसी भी भाषा का साहित्य सहेज कर रखना अपने लिये गौरव की बात समझेगा। अन्नपूर्णानन्द आये तो मानो बत्तीसी का कमल ही खिल गया। ये माना कि हम हास्य के क्षेत्र में ग़रीब हैं, मगर ऐसे कुछ भूखे-नंगे भी नहीं हैं।

श्रीवास्तव जी हाल ही में बहुत बीमार हो गये थे, उनपर लकवे ने आघात किया था। साहित्य से आमदनी नहीं रही। वकालत का ही आसरा है, जिसे अब वे कर नहीं पाते। लम्बी बीमारी ने किसी हद तक वकालत की दूकान भी ठप कर दी। अब साइकिल पर ढाई-तीन मील कचहरी जा नहीं पाते। और ताँगे पर आने-जाने के माने होते हैं एक नये खर्चे को जोड़ना। साथ खाना खिलाया, हैट पतलून चढ़ाई और कचहरी चले।

आम तौर पर बुज़ुर्गों से मिल कर मुझे हर्ष होता है। अपने बचपन से ही साहित्यिकों के प्रति मुझे अपार श्रद्धा रही है। सौभाग्य से रत्नाकर जी, किशोरी लाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी और शिवनाथ शर्मा के भी दर्शन प्राप्त किये हैं। उसके बाद की पीढ़ी वाले साहित्यिक महापुरुषों में से अनेक का स्नेहधन भी पाया है।

हम एक बात कहेंगे, हमारी हिन्दी में यों बहुत कुछ उन्नति हुई है, पर हिन्दी परिवार टूट गया, परिवार का भाव टूट गया है। समाज की भी यही दशा है। संक्रान्ति काल के दुख-सुख तो भोगने ही पड़ेंगे। क्या किया जाय ?

श्रीवास्तव जी के छोटे भाई श्री बी० पी० सिनहा पत्रकार हैं और शायद वकालत भी करते हैं। उनसे गोंडा के गदर के सम्बन्ध में बातें हुईं। राजा देवी बख्श, ऐसा लगता है कि गोंडा के नागरिकों के मन में अवतारी पुरुष के रूप में वास करते हैं। लखनऊ में ठेला चलाने वाले गोंडा ज़िला के निवासी जियालाल से लेकर शुक्ल जी और सिनहा जी तक अपने ज़िले के वीर नायक के प्रति प्रायः एक ही भाव से बातें करते हैं। यद्यपि मैं उस क्षेत्र का ग़दर सम्बन्धी लोककाव्य संग्रह नहीं कर पाया, फिर भी यह सुना है कि उनके ऊपर सैकड़ों आल्हा बिरहे बने हैं।

राजा देवीबख्श उन कर्तव्यनिष्ठ महापुरुषों में से एक थे जो अन्त तक अँग्रेज़ों का मुक़ाबला करते रहे। बेगम हज़रत महल और नाना साहब के साथ राणा वेणी माधव, राजा देवीबख्श, मोहम्मद हुसैन नाज़िम, खान बहादुर खां, मम्मू खाँ, बाला साहब और ज्वाला प्रसाद अन्तिम मोर्चा साध कर नेपाल के पहाड़ों में भागे थे। राजा देवीबख्श का देहान्त नेपाल के जंगलों में हुआ।

तुलसीपुर गोंडा से लगभग चालीस-पैंतालिस मील दूर बतलाया जाता है। बलरामपुर के राजा पृथ्वीपाल सिंह के मरने पर उनके एक भतीजे ने उनके पुत्र और सही उत्तराधिकारी नवलसिंह को मार भगाया। तुलसीपुर के राजा ने शरण दी और अपनी दो हजार 'थारू सेना' भेज कर बलरामपुर पर क़ब्ज़ा किया, नवल सिंह फिर राजा बने।

इसके कुछ ही वर्षों बाद तुलसीपुर के राजा को भी इसी विपत्ति का सामना करना पड़ा। बलरामपुर के राजा ने उसी तरह अपने सैन्यबल से तुलसीपुर के राजा को पुनः उनकी गद्दी पर प्रतिष्ठित किया। तुलसीपुर वाले ने राजा बलरामपुर को डेढ़ हजार वार्षिक 'कर' देना स्वीकार किया। आगे चलकर तीसरी पीढ़ी में तुलसीपुर के राजा दानबहादुर सिंह ने यह रक्म अदायगी बन्द कर दी। इस पर बलरामपुर से लड़ाई झगड़ा भी खूब हुआ। दानबहादुर के शासनकाल में अंग्रेज गवर्नर जनरल तुलसीपुर में शिकार खेलने आया और काफ़ी प्रसन्न होकर लौटा। इससे दानबहादुर का प्रभाव कुछ बढ़ गया। दानबहादुर को फिर बाहरी शत्रु का भय न रहा, परन्तु वह अपने पुत्र दृगराजसिंह के षड्यंत्र के फलस्वरूप मारा गया। कहते हैं दृगराजसिंह चरित्रहीन और क्रूर था। उसके पुत्र दृगनारायन सिंह ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया। लखनऊ की कोई तवायफ़ दृगनारायन सिंह की रक्षिता थी। राजा दृगराजसिंह उस पर बदनज़र रखता था। दृगनारायन सिंह ने अपने बाप को ज़हर दिलवा दिया। इस सारी घटना के पीछे कहीं अंग्रेजों का हाथ भी अवश्य रहा होगा, क्योंकि अंग्रेज़ों द्वारा अवध के अंग्रेजी राज्य में मिला लिये जाने के बाद उसने नये शासक को कर देना बन्द कर दिया था। बेचारा छोटी-सी रियासत का राजा अंग्रेज शक्ति का सामना न कर सका, अन्त में बन्दी बनाकर लखनऊ भेज दिया गया। बेलीगारद में ही यातनायें सह-सह कर उसकी मृत्यु हुई।

ग़दर में तुलसीपुर की रानी ने अपने राज्य की विरोधी शक्तियों को समाप्त कर वहाँ का शासन चलाया। गदर में वह बराबर क्रान्तिकारियों के साथ रहीं और अन्त में बेगम आदि के साथ ही वह भी नेपाल चली गईं।

यह इतिहास मैंने गज़ेटियर के आधार पर यहाँ अंकित किया है……तुलसीपुर न जा पाने का बहुत दुख है। गदर में हमारी देवियों का योगदान हमारे राष्ट्रीय इतिहास का गौरव बढ़ाता है। श्री बी० पी० सिनहा के शब्दों में "तुलसीपुर की रानी हमारे यहां की लक्ष्मीबाई थी।"

लक्ष्मीबाई भारतीय नारी का प्रतीक थीं। गदर की प्रत्येक लक्ष्मीबाई भारतीय इतिहास का अमर गौरव है। इस नाम में अब वह शक्ति आ गई है जो, सदियों तक भारतीय नारी को प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

बहराइच

१६ जून। अब तक के देखे हुये अवध के नगरों में सुल्तानपुर को किसी हद तक छोड़कर, मुझे फ़ैजाबाद के बाद बहराइच ही श्री-सम्पन्न लगा। वैसे बहराइच मज़ारों का शहर है। पुराने खण्डहर, जा-बजा इतिहास की पहेलियों से खड़े हैं। बहराइच का शुद्ध नाम भराइच है। भरों की पहेली अभी तक किसी इतिहासकार ने नहीं सुलझाई। केवल डॉक्टर काशीप्रसाद जायसवाल ही अपने 'अन्धकार युगीन भारत' नामक ग्रन्थ में यह संकेत कर गये हैं कि भर और भारशिव सम्भवतः एक ही थे।

पौराणिक काल का प्रख्यात गंधर्व वन बहराइच ज़िले के उत्तर में बतलाया जाता है। कहा यह भी जाता है कि ब्रह्मा जी ने चूंकि इस भाग को ऋषियों की तपोभूमि के निमित्त बनाया था इसलिये इसका नाम ब्रह्माइच पड़ गया। मुझे यह नाम ज़बरदस्ती 'खींचा ताना गया, पोंगापन्थी और हिन्दुओं का ढकोसला लगता है। बस्ती के लिये 'ऐच' या 'इच' शब्द कम से कम मेरे लिये एक खासी पहेली है। पुर, ऊर, नगर, खेड़ा तो हमारे गाँवों के साथ जुड़े हुये हैं ही, मऊ भी बस्तियों के नाम के साथ बहुत मिलता है। ये मऊ शब्द किस जाति की देन है, नहीं जानता। इसी प्रकार 'ऐच' या 'इच' शब्द भी मन में प्रश्न जगाता है। 'इच' के साथ जुड़े हुये दो नाम कानों पड़े हैं। एक इस नगर के साथ और दूसरा हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डाक्टर नगेन्द्र नगाइच नाम के साथ। अस्तु।

बहराइच क्षेत्र उत्तर कोशल के नाम से प्राचीन इतिहास में प्रसिद्ध है। भगवान राम के पुत्र लव इस क्षेत्र के राजा कहे जाते हैं। राजा प्रसेनजित का नाम भी जाना माना हुआ है। भगवान बुद्ध का प्रिय नगर श्रावस्ती भी इसी क्षेत्र में है। बहराइच का ऐतिहासिक महत्व भरों ने भी ख़ूब बढ़ाया। पहलेपहल गुप्त राजाओं के काल में भरों की शक्ति टूटी, फिर भी इस जाति का प्रभुत्व एक दम

लुप्त न हो सका। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक अवध में जगह-जगह इनसे राजपूतों और मुसलमानों के मोर्चे हुए हैं। लेकिन बहराइच या भराइच तो इनका गढ़ ही था।

ग्यारहवीं शताब्दी में सैयद सालार मसूद नामक एक मुसलमान फ़क़ीर ने भारत पर आक्रमण किया। यह सुल्तान महमूद ग़जनवी का भांजा माना जाता है। जेहाद यानी धर्मयुद्ध की भावना से इसने इस देश को ख़ूब रौंदा था। अवध में मैं जानता हूँ कि सैयद सालार कई पीढ़ियों के लिये भय और आतंक का प्रतीक बन गया था। सैयद सालार ने अयोध्या आदि अनेक स्थानों का नाश किया। अन्त में सन् १०३४ ई० मे भर राजा सुहेलदेव के हाथों उसने मृत्यु पाई।

आज यहाँ दरगाह के मेले का अन्तिम दिन है। बहराइच नगर की सड़कें दूर-दूर के गाँवों की भीड़ से भरी हुई हैं। सैयद सालार की दरगाह को प्रति वर्ष भक्तों की भेंट-पूजा की चढ़त से लाखों की आमदनी होती है। जहां दरगाह बनी है वहां, कहते हैं, पहले सूर्यकुण्ड और सूर्यमन्दिर था। बहराइच में नवग्रहों के मन्दिर थे जो अब पीरों की मज़ारें हैं। मैंने कई छोटे-बड़े मन्दिरनुमा सजार शहर में देखे। सुकरू पीर, हठीले पीर आदि पीरों के नाम इन मजारों के साथ जुड़े हुए हैं। एक राह चलते भद्रपुरुष ने बतलाया कि सुकुरू पीर शुक्र मन्दिर में स्थापित हैं और हठीले पीर मंगल मन्दिर में। उन्होंने और भी पीरों के नाम बतलाये, जिन्हें भूल गया हूँ।

आज शाम को चूंकि ज़िला सूचना अधिकारी को पूर्व निश्चत प्रोग्राम के अनुसार किसी गाँव में दौरा करने जाना था इसलिये बाहर जाने का प्रोग्राम नहीं बनाया। शहर में दो-तीन सज्जनों से मिलने गया, परन्तु कुछ हाथ न लगा। इस ज़िले के बौंडी राज्य के रैकवार नरेश हरदत्त सिंह, बेगम हज़रतमहल के बड़े सहायक रहे। उनके कारण समस्त रैकवार राजपूत बेगम के साथ थे। चर्दा के जनवार राजा भी इसी क्षेत्र के थे। अवध गज़ेटियर लिखने वाले अंग्रेज को इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि "इस ज़िले के बड़े जमीदारगण कैसे मुसीबत के समय हमारे विरोधी बन गये। प्रान्त पर पुनः अपना क़ब्जा होने पर हमें उनके (विद्रोही ज़मीदारों के) अट्ठारह सौ अट्ठावन गाँव ज़ब्त करने पड़े थे।"

गज़ेटियर के अनुसार चहलारी के स्वामी राजा नहीं, बल्कि ठाकुर कहलाते थे। नवाबगंज बाराबंकी के अमर नायक बलभद्र सिंह तेंतीस गाँव के ठाकुर थे और वे तेंतीसों गाँव ज़ब्त कर लिये गये। राजा धौरहरा के छब्बीस, बौंडी के तीन सौ

पांच, चर्दा के चार सौ अट्ठाईस, तुलसीपुर के तीन सौ तेरह, अकौना के पांच सौ छः, रेहुवा के चौदह, भिनगा के एक सौ अड़तीस और टिपरहा के उन्नीस गाँव ज़ब्त हुए। बेगम हज़रतमहल ने कई महीनों तक बौंडी में वास किया। महारानी विक्टोरिया के घोषण-पत्र के जवाब में प्रचारित किया जाने वाला बेगम हज़रतमहल का ऐतिहासिक ऐलान बौंडी के क़िले से ही हुआ था।

इन समस्त राजाओं में बलरामपुर नरेश ही देश के प्रति ग़द्दार निकले। उन्होंने पूरी तरह अंग्रेजों का साथ दिया। गज़ेटियर में लिखा है : "जब ग़दर आरम्भ हुआ तब इस भाग के सामन्तों में अकेले वही ऐसे थे, जिनकी आस्था कभी न डिगी तथा जो ब्रिटिश सत्ता को सदा सहयोग देते रहे।"

उनकी इस राजभक्ति के उपहार-स्वरूप अंग्रेजों ने उनके नाम के साथ कई हुरूफ जोड़ दिये और उनके राज में नई जागीर भी।

ज़िला सूचना अधिकारी श्री सिंह बलरामपुर रियासत के रहने वाले थे। उनको रह-रह कर यही कष्ट होता था कि राजा बलरामपुर गद्दार निकले। दो-तीन बार कहा : "क्या बताऊँ नागर साहब, मुझे बड़ी शर्म आती है। रैकवार राजपूतों ने अपना क्षात्रधर्म निभाया, बैस राजपूतों में भी राना बेनीमाधो आदि ने कैसा शौर्य दिखाया, पर हमारे जनवार राजपूतों के सिरमौर ग़द्दार निकले।"

मैंने कहा : "आपकी जाति के सिरमौर भले ही ग़द्दार हों, परन्तु आपकी जाति के वीरों ने भी सहयोग दिया है। आखिर चर्दा के राजा भी तो जनवार राजपूत थे।"

सिंह साहब को मेरी इस बात से बड़ी तसल्ली हुई। मैं सोचने लगा, समय का परिवर्तन कैसा मन बदल देता है। सोचता हूँ, ग़दर के बाद जिन राजाओं की रियासतें गदर में भाग लेने के कारण जब्त हुई हैं, उनके वंशजों को अपने वर्ग के उन सामन्तों द्वारा ओछी दृष्टि से देखा जाता होगा जो गदर में अंग्रेजों का साथ देने के कारण उस समय दुनियादारी की दृष्टि से बड़े बुद्धिमान और सफल माने जाते थे। सच है चलते का नाम गाड़ी है।

१७ जून। सुबह ही हम लोग बौंडी, चहलारी और मुरौवाडीह की यात्रा पर निकल पड़े। अब तक देखे हुए ज़िलों में बहराइच ज़िला अपने हरे-भरे पन में कुछ अधिक सम्पन्न लगा।

मैदानों की अपनी शोभा होती है। अन्तरिक्ष के चारों ओर वृक्ष और धरती पर फैली हुई हरियाली मुझे जीवन की आस्था प्रदान करती हुई लगती है। धरती

के इस फैलाव में न जाने कितने इतिहास पलट जाते हैं, न जाने कितनी कटुता इसे सहन करनी पड़ती है। फिर भी धरती माता सदा हरी-भरी और व्यापक रूप से उदार बनी रहती है।

यहाँ भी जगह-जगह प्रथम पंचवर्षीय योजना, नलकूप, सहकारी बीज उद्यान आदि के नामपट देखने को मिलते हैं। सड़क के दोनों किनारे आबादियों के आस-पास लोग-लुगाइयां पेड़ों के नीचे महुआ के बीज फैलाते सुखाते हुए दिखाई पड़ जाते हैं। जवान स्त्रियां मोटर को आते देख पीठ कर खड़ी हो जाती हैं। एक ही आध ऐसी मिलीं जो हमारी गाड़ी की तेज रफ्तार के साथ अपनी चढ़ती जवानी की मस्ती को लेकर होड़ लगाती थीं। हमारी गाड़ी जा रही थी, सामने लगभग आधे फर्लांग की दूरी पर कुछ नवयुवतियां और छोटे बच्चे खड़े थे। 'हार्न' बजते ही बच्चे भागे। एक नवयुवती भी दौड़ी, दूसरी ने उसकी बाँह थाम ली, हमारी गाड़ी की 'स्पीड' कम करनी पड़ी। सिंह साहब देश की बदतमीज़ जनता पर झुंझलाये। गाड़ी के निकट आने पर लड़कियां हँस पड़ीं और इठलाती हुई सड़क के एक ओर चली गईं। भरी 'स्पीड' में चलती मोटर का रोका जाना या तो मैने प्रोफेसर राममूर्ति के सर्कस में देखा था या फिर चढ़ते यौवन से मदमाती ग्राम बाला द्वारा अब देखा। बच्चे अक्सर मोटर को आता देख शोर मचाते हैं और तेजी से सड़क पार करने का करतब भी दिखलाते हैं।

धूप बढ़ चली है। 'लू' के गर्म झोंके भी गाड़ी की तेज स्पीड के साथ मज़ा दे रहे हैं। हम लोग बौंडी के निकट साई गाँव में पहुँचे। यहाँ हमें रुकना नहीं था, केवल मुरौवाडीह का पता पूछना था। बौंडी लौटते समय रुकने का प्रोग्राम था। रुके तो गाँव वालों ने पानी के लिये पूछा, हमें प्यास लग आई। यद्यपि पानी हमारे साथ था पर मैंने सोचा कि सुराही के पानी को लम्बे सफ़र के लिये सुरक्षित रख कर इस ग्राम के तीर्थ से ही कण्ठ सींचा जाय। लगे हाथों पूछताछ भी कर डाली। एक ने कहा: "परसनदीन बाबा बुजरुग हैं उन्हें गदर का हाल ढेर मालूम है।"

लोटे में गुड़ का शर्बत आया, और प्रायः साथ ही लकड़ी टेकते परसनदीन बाबा भी। उन्होंने बतलाया : "या बात सुनबे हई अकि बेगम लखनऊ ते भागीं, भँउरी माँ पड़ाव किहिन।"

"ये भौंरी कहाँ है ?"

"भँउरीं अक मउजा आय फरुहा घाट के पास, तौ हुवाँ पड़ाव किहिन। तीके बादि राजा हरदत्तसिंड बौंड़ी का बुलवाइन अकि आप हमार मदत कइकै लखनऊ

की गद्दी पर बिठाय देव, औ हम आपका माफ़ीक पट्टा लिखि देब। राजा हरदत्त सब राजे रजवारन का बोलाइन। गोंडा, चर्दा, पयागपुर, रेहुवा, नानपारा, टपरहा, मल्लापुर औ तुमरे का नाउ रामनगर—सब जुटाव किहिन। बौंड़ी मा इकट्ठा भे। चनहट माँ लड़ाई भय; वहैं जूझि के चहलारी के राजा सब रियासत पाइन, बौंडी के राजा नाहीं पाइन। राजा हरदत्त सिंह मरिगे—"

मैने पूछा : "कहाँ मरे ? लड़ाई में या काले पानी में ?"

"को जानी कहाँ, पहाड़ पर मरे हैं, सुना।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिरु राजा महेसबकस औ महावीर सिंघ राजा हरदत्त के लरिका—उनका माफी मिली। हरदत्त नगर गिरन्ट पाइन। बस यहै मालूम है।"

बेगम के आने का मार्ग फिर एक नई किंवदंती का संकेत दे गया। भौंरी बौंडी से तीन-चार मील दूर फरुहा घाट के पास है। फरुहा घाट घाघरा के इस पार बहराइच जिले में है। घाघरा के उस पार सीतापुर ज़िला लगता है। वहाँ संसड़ नामक स्थान से नाव पर चढ़ा जाता है। भिठौली छोड़ने के बाद बेगम बौंडी आईं थीं, यह निश्चित है।

यह बेगम बड़ी दिलेर मालूम होती है। अब तक जहां-जहां गया, बेगम का नाम ज़रूर सुना। गदर के संगठन कर्ताओं में बेगम की हस्ती किसी से छोटी नहीं मालूम देती है। इनिस, चार्ल्स बाल, रसल आदि अंग्रेज़ उनकी खुले दिल से प्रशंसा करते हैं। सर विलियम रसल अपनी डायरी में लिखता है : "बेगम में बड़ी पराक्रमशीलता और योग्यता दिखलाई देती है।... बेगम ने हमारे विरुद्ध न ख़त्म होने वाले युद्ध का ऐलान कर दिया। इन रानियों और बेगमों के शौर्य, स्फूर्ति भरे चरित्रों को देख कर ऐसा लगता है कि ये लोग 'अपने ज़नानख़ानों और हरमों में यथेष्ट रूप से तीव्र बौद्धिक शक्ति सिद्ध कर लेती हैं।" लखनऊ के अन्तिम मोर्चे पर आलमबाग़ की लड़ाई में हज़रतमहल स्वयं शस्त्र धारण कर सामने रण में आईं थीं। बेगम की उदारता के उदाहरण भी अंग्रेज़ लेखकों की पुस्तकों में देखने को मिलते हैं। चार्ल्स बाल ने लिखा है कि विद्रोही क्रान्तिकारियों ने जब क़ैसरबाग़ के महलों में क़ैद अंग्रेज़ स्त्रियों की हत्या करने के लिये उन्हें माँगा तो, "स्त्रीत्व की मान रक्षा की हेतु, उनकी माँग बेगम द्वारा आज्ञार्थक रूप से, जहाँ तक स्त्रियों का सम्बन्ध था, अस्वीकार कर दी गई और उन्हें (कैद अंग्रेज़ स्त्रियों को) तुरन्त अपनी निगरानी में हरम में बुला लिया।"

बाराबंकी ज़िले की यात्रा में रजवाड़ों की सभायें करने के सम्बन्ध में भी किंवदंतियाँ मिली थीं। अमहट (सुल्तानपुर) वालों के पास आये हुए फ़रमान के अनुसार गोरों का साथ देने वाली हिन्दू-सिक्ख सेनाओं को मारने के बजाय केवल क़ैद करने की आज्ञा देना बेगम की सूझ-बूझ का परिचायक है। यह महिला बचपन से ही समाज की यातनाओं का शिकार रही। राम जाने किस कुल की थी। अम्मन और अमामन नामक दो कुटनियों द्वारा बचपन में पकड़ी गई, इसे नाच-गाना सिखाया गया, शाहज़ादा वाजिदअली के परीख़ाने में 'महकपरी' के नाम से दाख़िल हुई और गदर में वह काम कर दिखाया, जो इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगा। वाजिदअली शाह के हरम में हर ओर भोग विलास का ही चर्चा रहता था; उनके गिरफ्तार हो जाने के बाद भी जहाँ उनकी और बेगमें अपने ख़तों में इश्को-फुरक़त की बिलबिलाती आहें भरती नज़र आती हैं, वहां बेगम हज़रतमहल का व्यक्तित्व ऊँचे-ऊँचे ख़ानदान वाले मर्द-नामर्दों और बड़े आबरूदारों की बुज़दिल विलासी बेटियों से कहीं अधिक ऊँचा उठा हुआ दिखलाई देता है। बेगम हज़रत महल वेश्यावर्ग की होकर भी अपने स्वाभिमान की इस शान से रक्षा करने के कारण पूज्य हैं, प्रणम्य हैं।

हम लोग आगे बढ़े। मुरौवाडीह में बलभद्रसिंह के सम्बन्धी रहते हैं, यह सूचना मुझे बहराइच में एक वकील साहब से मिली थी। वहीं जा रहे थे। श्री गिरिजाशंकर सिंह चहलारी के ठाकुर बलभद्रसिंह की एकमात्र सन्तान—पुत्री के पौत्र हैं, ग्राम पंचायत के प्रधान हैं। रास्ते में एक जगह हमने उनका पता और उनके गाँव तक जाने वाली सड़क के सम्बन्ध में पूछताछ की। पता चला कि गिरिजाशंकर सिंह जी थोड़ी देर पहले ही यहां से अपने गाँव गये हैं और रास्ता थोड़ी दूर तक तो सीधा ही गया है, उसके बाद ऐसे और ऐसे और ऐसे मुड़ेगा। गाँव वाले हाथ उठा कर यों रास्ते का इशारा कर देते हैं, मानो पूछने वाला भी उन्हीं की तरह उस जगह से परिचित हो। समस्या हल न हुई, इसलिये दो-ढाई फर्लांग आगे पीपरी गाँव की सीमा में पहुँच कर खेत में खड़े एक जवान से फिर पूछा। उसने कहा: "अइसी ते चले जाव आगे गद्दारन केर घर परी। वहिके आगे ते रस्ता है।"

गद्दार का घर सुन कर मैं बड़ी ज़ोर से चौंका, पहले तो मैं उस नवयुवक कृषक पुत्र के मुँह से यह शब्द सुन इसके अर्थ को लेकर भ्रम में पड़ गया, सिंह साहब से पूछाः "यह कौन सा शब्द कह रहा है?"

सिंह साहब ने उससे पूछा : "गद्दार को आँय ?"

"अरे साहब जउन बड़कवा का घर है, वहिके आगे ते रस्ता गवा है ।"

सिंह महोदय ने फिर पूछा : "गद्दार काहे कहत हौ उनका ?"

"साहब युहु तौ नाहीं जानित है । सुना है, तउनु कहिति है ।"

सिंह महोदय भी आख़िर सूचना अधिकारी थे । उन्हें तुरत ही ध्यान आ गया कि यह भूमि-भाग चहलारी के ठाकुर से ज़ब्त कर अंग्रेजों ने अपने मददगार एक सिक्ख को दे दिया था । मुझे पूरी बात जान कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ । एक सदी बीत गई, किन्तु अभी तक परम्परा नहीं बदली है । हमारे गाँवों में गदर का इतिहास यों सुरक्षित है ।

मुरौवाडीह पहुँच गये ।

हम इस समय उस स्थान पर हैं, जहां ठाकुर बलभद्र सिंह का निवास था—कोट था । यहीं उनका जन्म भी हुआ था । यहाँ से उत्तर पश्चिम के कोने पर लगभग एक फ़र्लांग दूर पर घाघरा नदी दिखलाई दे रही है । उत्तर दिशा में गढ़ी का फाटक था, यह हमें बतलाया गया है । उसके पास ही जहाँ आम के पेड़ हैं वहाँ बुर्ज था । उसके उत्तर में सेमल के पास दूसरे बुर्ज के निशान हैं ।

कोट का डीह ऊँचा है । नीचे उत्तर में फाटक की बतलाई जाने वाली सीमा के अन्दर ही एक तालाब है, जिसमें अब अधिक पानी नहीं है और बिलकुल टूटी अवस्था में है । लोग उसमें खड़े मछलियां पकड़ रहे हैं, घुटने-घुटने पानी है । कोट के चारों ओर खाईं थी, जिसे यहां वाले पनिहासोत कहते हैं । इस खाईं के भी निशान हैं । कहते हैं कि रात में पानी भर दिया जाता था । दिन भर पनिहासोत के ऊपर पटरा पड़ा रहता था, लोग आते-जाते थे । रात में पटरा उठा लिया जाता था । कोट के इस टीले पर चहलारी नरेश की पुत्री के वंशज रहते हैं । दाहिने हाथ पर एक बरामदेदार घर बना है, जिसके एक भाग का खपरैल टूट गया है । फूस से छाये हुए चार मिट्टी के मकान और हैं, एक कोठरीनुमा घर टूटा पड़ा है । इस टीले के चारों ओर आम, सेमल और पकरिया के वृक्ष सुशोभित हैं । मोर शोर मचा रहे हैं ।

फाटक के बाहर घाघरा की ओर वाले खेतों में राजा की सेना परेड किया करती थी । लड़ाई की तैयारी वहीं हुई थी ।

श्री गिरिजाशंकर सिंह तो थे नहीं, उनके चचाज़ाद भाई श्रीबाबूराम सिंह ने हमें अपने पुरखों से सुना हुआ कोट का यह नक्शा बतलाया । बातों के सहारे मेरे सामने

सौ वर्ष पहले का चित्र उपस्थित हो गया। नवाबगंज के नायक चहलारी के ठाकुर बलभद्र सिंह के जन्म और निवास-स्थान पर आकर मेरी श्रद्धा बाँध तोड़कर बह चली थी। ऐसे महावीर, उद्‌भट साहसी नवयुवक शहीद के प्रति किसकी श्रद्धा न उमड़ेगी ?

अपने मन को व्यवस्थित करने में मुझे कुछ समय लगा; फिर अपनी पूछताछ आरम्भ की। श्रीबाबूराम सिंह ने बतलाया: "बलभद्रसिंह के एक लड़की थी। ज़िला शाहजहांपुर के जेवांग्रामनिवासी कुँअर गजराज सिंह से उसका विवाह हुआ था। चार संतानें हुईं, चारों ही पुत्र थे। उनके नाम मुनुवां शिवदान सिंह, देवीबख्शसिंह, राजबहादुर सिंह और हनुमान सिंह थे। मुनुवां शिवदान सिंह तथा देवीबख्श सिंह मुरौवा आकर बस गये। राजबहादुर सिंह और हनुमान सिंह जेवां में ही रहे।

मुनुवां शिवदान सिंह के दो पुत्र हैं—गिरिजाशंकर सिंह और शंकरबख्श सिंह। देवीबख्श सिंह के भी दो संतानें हुईं—गणेशसिंह और बाबूराम सिंह। गणेश सिंह तीन संतानें छोड़ कर स्वर्गवासी हो गये।"

मैंने पूछा : "आपके ताऊ और पिता अपना घर छोड़ यहां क्यों आकर बसे ? उनके नाना बलभद्र सिंह की जागीर तो ज़ब्त हो चुकी थी।"

श्रीबाबूराम सिंह ने उत्तर दिया : "पीपरी राज भी पहले बलभद्र सिंह का ही था, फिर एक पंजाबी को मिल गया। उन्होंने पुराने राजवंश को गुजारे के लिये ढाई सौ बीघा जमीन दी थी, इसीलिये हम लोग यहाँ आ बसे।"

श्री आशीर्वादी पांडे नामक एक सज्जन तब तक वहां आ पहुँचे। उन्होंने बतलाया: "बलभद्र सिंह जब जूझिगे तौ रानी हियां ते भाजि कै नैहर चली गईं। कारिन्दा लोग बकाइन कि अब आप हियां न रहौ तउ नैहर चली गईं। उनके एक लरकी रहै। उयि बाद मां दरखास दिहिस तब बाइस सै बीघा जमीन मिली। चहलारी, थान गाँव, गंगापुरवा, बछमरिया, भैंसी, राजापुर कलां, बैजवारी, अउ मुंजहना मां बाइस सै बीघा सीर मिली रही। औ बिटिया दुइ सै रुपया महिना पिंसिल (पेंशन) पावत रहीं। रानी न तौ मांगिनि औ न उनका कुछौ मिला। बिटिया जब मरि गईं तौ पिंसिल सरकार ते बंद हुई गई। जमींदारी जब खतम भै तब सीर—"

"भी चली गई।" कहकर मैंने उनका वाक्य पूरा किया और पूछा कि जब राजा मुरौवा में रहते थे, तो चहलारी के क्यों कहलाते थे ?

पाण्डे जी ने बतलाया: "चहलारी मां कोठार रहा। रहति हियनै रहे मुल राजा चहलारी के बाजति रहे।"

बच्चे, जवान, बूढ़े सब धीरे-धीरे इकठ्ठा होते चले जा रहे थे। बात क्रमशः गरमा रही थीं। लोग चहलारी के राजा से अधिक जो जो राजा के साथ लड़े थे, उनके नाम चारों ओर इस तरह टपकाने लगे जैसे बरसात में पतिंगे टपकते हैं। मैं मशीन तो हूँ ही। घबरा कर लिखना बन्द कर दिया। मैंने कहा कि व्यवस्थित होकर अगर यह नाम मुझे बतलाते जाँय तो सब लिख लूँगा। श्री आशीर्वादी पान्डे बोले: "ई सब नाव 'जंगनामा' मां लिखे हैं।"

कई तरफ़ से आवाजें उठीं: "हां, जंगनामा मां हैं।"

'जंगनामा', के प्रति मेरी उत्सुकता गहरी हो उठी, परन्तु कुछ पूछने से पहले ही पाण्डे जी सुनाने लगे—

"भाजि गये इलंगी झिलंगी।
भाजि गये गज के असवारा।।
हरदत्त कहैं हम खेत लड़ब।
उइ जाय लुकान नदी के किनारा।।
एक जीवत है बलभद्र बली।
जिन जाय झपटि अंगरेज को मारा।।"

पाण्डेजी के बाद तुरत ही एक नवयुवक खड़ा होकर सुनाने लगा—

"बौंडी का राजा लौंडी भवा, रेहुआ भवा गुलाम।
बना रहै चहलारी क राजा—।।"

अन्तिम पंक्ति विशुद्ध गाली थी। आशीर्वादी पाण्डे ने उसे बड़ी जोर से डाँटा। और अपनी ओर से अन्तिम लाइन का शुद्ध रूप भी बतलाया: "बना रहै चहलारी क राजा जो मुँह मारा पिथावर क्यार।। पिथावर का मतलब हियां अंगरेजन ते आय।"

लम्बी सफ़ेद दाढ़ी वाले पण्डित जगन्नाथ प्रसाद भी खड़ाऊँ खटकाते हुए आ पहुँचे। पाण्डेजी से लगभग दस-बारह वर्ष बड़े, चौहत्तर-पिचहत्तर के थे। पाण्डेजी ने उन्हें अपना गुरू बतलाया। पण्डित जगन्नाथ प्रसाद जी ने बतलाया: "चहलारी वारे रहैं। गउना आवा रहै तउन वहीं ते लउटाय दिहिन। बेगम आई रही तउन खिल्लत-उल्लत दिहिन। हियां वारे कोई लड़वइया तौ रहे नाहीं, सब आपन धूम-धाम करत हियां ते तोबैं (तोपें) दागति चले। हमरे दादा रहे तौ उनके साथ गे रहैं। तउन राजा उनते कहिनि कि आप लोघेसुरन महादेवा मां रहौ। तौ उइ रहिगे। बाकी हालु ननकऊ सिंह के 'जंगनामा' मां लिखा है।"

'जंगनामा' देखने के लिये अब मैं अधीर हो उठा; पता लगा कि उसके

पिता ठाकुर ननकऊ सिंह आयु में सौ वर्ष के हैं। यहां से लगभग एक मील दूर 'टिकुरी गाँव' में रहते हैं। राजा बलभद्र सिंह के भतीजे हैं।

मुझे अब भला कहाँ चैन पड़ सकता था। फ़ौरन ही श्री बाबूराम सिंह को लेकर टिकुरी पहुँच गया। भर दुपहर थी। लू का जोर था। बच्चे तक पेड़ों के नीचे सिमटे बैठे थे। हमारी गाड़ी पहुँचते ही गाँव चैतन्य हो गया। इधर-उधर हल-चल सी मच गई और ठाकुर ननकऊ सिंह के दरवाजे पर गाड़ी रुकते ही वह हलचल वहाँ सिमट आई। ठाकुर साहब अन्दर सो रहे थे, कुछ बीमार थे। श्री बाबूराम सिंह से मैंने कहा: "आप उतावले न हों। घण्टा आध घण्टा, जब तक कि ठाकुर साहब न जागें, यहाँ बैठा रहूँगा। लेकिन बाबूराम सिंह अधिक देर रुक न सके। अन्दर गये और थोड़ी देर बाद ही जोर-जोर से बोलते सुनाई पड़ने लगे: "………सरकार ते आये हैं……… लखनऊ ते आये हैं…… जंगनामा सुनिहैं।" इत्यादि सुनकर यह स्पष्ट हो गया कि ठाकुर ननकऊ सिंह को अपनी बात सुनाने के लिये मुझे भी जोर से बोलना पड़ेगा। कुछ ही क्षणों बाद मैं उस कच्चे किन्तु बड़े मकान के कमरे में था। मेरे पीछे-पीछे गाँव की भीड़ भी आ गई थी।

कभी-कभी फ़ोटोग्राफ़ी की कला न जानना खल जाता है। घर में एक भाई जाना माना 'सिनेमेटोग्राफर' दूसरा ख्याति प्राप्त चित्रकार है, ज्येष्ठ पुत्र को भी फ़ोटोग्राफ़ी की कला का अच्छा ज्ञान है, और तब भी मैं स्केच करना या फ़ोटोग्राफ खींचना नहीं सीख पाया। इसके लिये अपने आलस्य को छोड़ कर किसे दोष दूं?

ठाकुर ननकऊ सिंह दुबले-पतले, गेंहुवे रँग के व्यक्ति हैं। दाँत करीब-करीब सब बरकरार हैं। आँख कान चले गये, परन्तु आवाज अब भी कड़कदार है।

"अगहन माँ आँखी चली गईं। वरम पैदा हो गया था, अब द्याखौ का होति है। अबहीं तलकु चलति आये—अब द्याखौ का होति है। जउने सन् मा कक्का जूझे रहे नवाबगंज माँ, वहे साल हम पैदा भयन। अब जानौ सौवाँ बरस लागगा होई कि लागै वारा होई।" मैंने उनसे जंगनामा दिखाने की प्रार्थना की। उन्होंने अपने पुत्र को कापी लाने का आदेश दिया। आने पर उसे हाथ से टटोल कर देखा, कहा: "हाँ, यहै है।" और बड़े जोश में आ कर कवित्त सुनाने लगे। उनकी स्पीड बहुत तेज थी, उन्हें रोकना बहुत मुश्किल था क्योंकि वे अपनी सुनाते थे दूसरे की कम सुनते थे। मैंने लिखना बन्द कर दिया और यह सोचने लगा कि यह जंगनामा कैसे प्राप्त किया जाय। मैंने कहा: "यह जंगनामा मैं अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। इसकी एक नकल तैयार कर लौटा दूंगा।"

ठाकुर साहब के पुत्र और तीन-चार अन्य सज्जन आपस में एक दूसरे को देखने लगे। मैं समझ गया कि उनकी दृष्टि में इनकार है। परन्तु इतनी दौलत हाथ में आ जाने के बाद सहसा मैं भी छोड़ने को तैयार न था। मैंने ठाकुर ननकऊ सिंह के कान के पास जा अपनी बात कही। वे बोले "नकल हियाँ होई जाई। हाँ, करति करति चार-पाँच दिन तौ लागै जइहैं।"

मेरा यह अनुभव रहा कि जो काम दूसरों पर छोड़ा वह आमतौर पर पूरा नहीं हुआ, इसलिये जंगनामा छोड़ना नहीं चाहता था। दुबारा ठाकुर साहब से कहा कि "मुझे आज ही जाना है। जंगनामा मेरे प्राणों से भी अधिक सुरक्षित रहेगा। और नकल कराने के बाद तुरन्त ही उसे वापस लौटा दूंगा।"

ठाकुर साहब बोले: "ठीक है। आप लै जाव। जंगनामा का प्रचार होई, हमरे कक्का की कीरति बढ़ैगी इससे। छपि है तौ हजारों लोग पढ़िहैं। गलत लिखा है तउन सुद्ध होई जाई। आप लै जाइये। खाली अपना पता-ठिकाना हमको लिख कर रसीद दै जाइये।"

मेरी जान में जान आई। जंगनामा हाथ लगते ही लगा कि अनमोल वस्तु मिल गई।

लोगों ने ठाकुर साहब के सम्बन्ध में मज़ेदार बातें सुनाईं। मुझे बतलाया गया कि नन्हकऊसिंह बड़े 'न्यारसी' अथात् कामकाजी व्यक्ति रहे हैं। उन्हें कागद-पत्तर और औजारों (हथियारों) का बड़ा शौक़ रहा है। आस-पास के पुरवों में हर घर की जन्म-मृत्यु पहले स्वयं अपने रजिस्टर पर दर्ज करते थे, अब लड़के से करवाते हैं। किसका किससे किस बात पर झगड़ा हुआ यह भी उनके रजिस्टर पर वर्षों से बराबर टांका गया है। जंगनामा के अतिरिक्त उन्होंने पौराणिक उपाख्यानों पर भी काव्य रचे हैं।

जब चलने लगा तो जंगनामें के सम्बन्ध में उन्होंने मुझ से फिर कहा: "साहब. यह खूब छपै, खूब परचार होय, और जौन असुद्ध होय वहिका सुद्ध करिकै छपायो।"

जंगनामा अपना एक इतिहास भी रखता है जो पुस्तक के अन्त में इस प्रकार लिखा है: "औवल में जंगनामा बेनीराम मिश्र- भदेवां निवासी ज़िला सीतापुर ने बनाये थे। श्री सुभ संवत् १९४१ विक्रमी में मार्ग मासे, कृष्ण पच्छे, तिथौ पंचम्याम शनिवासरे यह जंगनामा मूल था। उसी की आसै से यह जंगनामा बहुत सनोमान के साथ लिखा गया है कि जो जो हाल छूटि गया था वही इसमें सामिल किया गया कोई शंका करने योगि नहीं की जो सज्जन शूरवीर राजा के भेजे जखमी आये

उनसे सब चरित्र जानकर और युद्ध का कौतुक ज्ञात हुवा की सन् १८८९ ई० में मैं लखनऊ में था जो अर्व (?) सिविल हाकिम हालन साहेब को मिलने गये थे। वहाँ पर एक फौजी अफसर बूढ़ा पिलसनदाँ मौजूद था। भेस वही फौजी सिपाही का था, एक तलवार जिसका कब्जा सोने का था वह कमर में लगाये बैठा था। जब बातों से फरागत हुए तब वह हमसे कहा तुम कहां रहता है। तब मैं कहा की बहराइच में। तब वह कहा कि बहराइच का राजा बलभद्रसिंह शूरों में और वीरों में एक था, ऐसा वीर न होगा। तब मैं रोने लगा। तब वह पूछा रोना क्यों आया तब मैं अधिक रोकर कहा की मेरा चाचा था राजा बलभद्र सिंह जो बंकी में जूझ गया। राजा का पिता श्रीपाल सिंह व मेरा दादा गंगासिंह दोनों सगे भाई थे।

"राजा बलभद्रसिंह को शुर्गवास वीरगति से मिति जेठ सुदी ८ दिन इतवार संवत् १९१३ वि० था। राजा की अवस्था उस वक्त १८ बरस ३ दिन की थी।"

'जंगनामा' काव्य की दृष्टि से भले ही महत्वपूर्ण न हो, परन्तु इतिहास की दृष्टि से बहुमूल्य है।

बाराबंकी में मुझे बराबर यह सुनने को मिला कि बलभद्रसिंह अपना विवाह कर लौट रहे थे कि अंग्रेज़ों से युद्ध छिड़ गया। 'ब्याह क कँगना कर माँ बाजे, लक्खी मौर देयि बहार' वाली बात यथार्थ से तनिक दूर हटी हुई है। जंगनामा से पता चलता है कि बलभद्रसिंह अपने छोटे भाई छत्रपाल सिंह की बारात लेकर शिवपुर ग्राम गये थे। बेगम हज़रतमहल उस समय बौंडी में निवास करती थीं, बैसवारे के सामन्त और रैकवार नरेशों की सभा कर उन्होंने सबसे सहायता माँगी, नवयुवक बलभद्रसिंह की वीरता का बखान सुना और तुरन्त उन्हें बुलाने के लिये हरकारे द्वारा पत्र भेजा। हरकारा राजा के शिवपुर में होने की खबर सुनकर सीधे वहीं पहुँचा। बेगम का निमन्त्रण पाते ही बलभद्रसिंह बारात को घर जाने का आदेश दे सीधे बौंडी आये। बेगम ने उनका स्वागत किया। कवि के कथनानुसार—

"निज सुत को गोदी सों टारी।
राजहि लीन गोद बैठारी।।
तब बेगम बोलीं हरषाई।
राजा को लै कण्ठ लगाई।।
तुम सुत सरिस अहो प्रिय मोरे।
कहौं मर्म तो सन प्यारे।।".

बेगम ने राजा को खिलअत बख्शी। चोदन्ता गज अम्बारी सहित दिया। रानी के लिये आभूषण दिये। लोगों के लिये पहरावर दी। बेगम ने अपने हाथ से बलभद्र को केसर तिलक किया, बिरजीसक़दर और मम्मू खां से भी तिलक कराया और साज-बाज सहित युद्ध क्षेत्र के लिये बिदा किया।

कवित्त

"चरदा व अकौना नानपारा औ पयागपुर भिनगा समेत रहे भूप तौन जानिये।
बलरामपुर छयो द्वारा गंगवलि जरबुलि तुलसीपुर को मानिये ।।
रामनगर खानजादे व रामपुर कठवलि जांगरे समेत सुधा सबको बखानिये।
बौंडी के राजा रैकवारी के ठाकुर हरिहरपुर रेंहुवाऔ टपरुहा समेत सब, भूपन गनाइये ।।
येते सब राजा रहे मल्लापुरौ समेत।
सब भाजे तब समर ते हम नहिं तजिहैं खेत ।।
कोऊ ना मुहीम लीन्हों साहब सों छत्रीगन,
करिकै दगा फौज भाजी है सवार की।
पल्टनै तिलंगन की थोरी सी लड़त भईं,
गोरेन को देखि तोप दगी ना गँवार की ।।
रह्यौ ना सिहार कछु करनी भुलाय गई,
करिकै नामर्दी सैन चली वार पार की।
कहैं कवि सत्य महाराज बलभद्र सिंह,
नाम राख्यो उत्तर कौ नाक रैकवार की ।।

इस जंगनामे की एक विशेषता यही है कि उसमें जन-साधारण के, विभिन्न जातियों के अनेक शूरवीरों के नाम भी लिखे हैं। वे नाम इस प्रकार हैं—

(१) दरियावसिंह, बलभद्रसिंह के मामा, (२) हीरासिंह, बलभद्रसिंह के काका, (३) लोचनसिंह, बैस राजा सिकन्दरपुर, (४) बखतसिंह रघुवंशी, (५) सिंह बहादुर, (६) दर्शनसिंह, (७) माधोसिंह, (८) मंगलसिंह मजरे राजपुर स्थान किसनापुर के निवासी, (९) दमनसिंह रघुवंशी, (१०) उमरावसिंह गौड़ क्षत्रिय, (११) भूदरसिंह बहादुर, (१२) दलजीत, (१३) बल्लू, (१४) भगवन्त, (१५) रामबकस, (१६) जोधे, (१७) शिवदीन, (१८) गंगादीन, (१९) कालिका थानगाँव के निवासी, (२०) नौरंग, (२१) पण्डित बिशुन पाण्डे, (२२) चन्दी पाण्डे, (२३) राम प्रसाद, (२४) परवन नाऊ, (२५) जंगी, एक वेश्या पुत्र, (२६) गुरुबकस, (२७) भवानीदीन, (२८) बख्तावर

सिंह, (२९) मुन्नूसिंह, (३०) रघुनाथ, (३१) जगतसिंह, (३२) शिवदीन, (३३) शिवबख्श, (३४) मंगलसिंह, (३५) मायाराम, (३६) रामचरन, (३७) हरदत्त, (३८) छोटेसिंह, (३९) जानकी, (४०) सुखमंगल पाण्डे, (४१) गौरी पाण्डे, (४२) परमेसुर मिसिर, (४३) राधे दूबे, (४४) मुन्नू, (४५) महिपालसिंह, (४६) पहलवान सिंह, (४७) मान्धातासिंह, (४८) बलदी पाण्डे मुरवा ग्राम के निवासी, (४९) माधोसिंह, (५०) मुन्नूसिंह राठौर, (५१) कर्णसिंह, (५२) दृगपाल, (५३) रामचरन तिवारी, (५४) अमीर खां गोलंदाज (५५) परवन रघुवंशी, (५६) बल्दी दीक्षित, (५७) राधे पण्डित, (५८) राम चरन पुजारी, (५९) शिवप्रसन्न तिवारी, (६०) भवानीदीन, (६१) जोधे मिसिर, (६२) रामदयाल कहार नरपति पुरवा के निवासी, (६३) भन्तासिंह, (६४) गनेसी, (६५) सीतल, (६६) बिहारी नाऊ मुरवा ग्राम निवासी पुत्र सम्बन्धियों सहित, (६७) जोधासिंह सोमवंशी (६८) गंगादीन पाण्डे, (६९) कालिका, (७०) सन्तलाल, (७१) माखनसिंह, (७२) रामप्रसाद तिवारी, (७३) रामचरन तिवारी जिनका लड़का सखो होगया था, (७४) पण्डित गंगादीन (७५) मुन्नूसिंह, (७६) सीताराम नाऊ, (७७) औसेरी नाऊ, (७८) अमरित, (७९) मुन्नू बारी, (८०) शिवदीन, (८१) भिखारी गाड़ीवान, (८२) बल्दी गाड़ीवान, (८३) दौलतिया गाड़ीवान, (८४) कान्हो गाड़ीवान, (८५) जवाहिर कहार, (८६) शिवदीन सिंह बैस, (८७) लोनियां बेलदार तीन जन, (८८) कुंजबिहारी, (८९) कुंजबिहारी का साईस, (९०) सुभान खां।

देश की स्वाधीनता के लिए लड़ने वाले जितने नरशूरों के नाम-ठाम मिलते हैं, उतना ही इतिहास अन्तरंग होता है; 'एक दो नहीं, हज़ारों' वीर नायकों का हुजूम देश की स्वतन्त्रता के लिए समर में आगे बढ़ा, जूझा और अपने रक्तदान से भावी पीढ़ियों के लिये भी अनुपम आदर्श उपस्थित कर गया। तत्कालीन भारत अपनी नैतिक और सामाजिक मान्यताओं को लेकर अत्यन्त रूढ़ और पतनोन्मुख हो गया था, इससे कोई भी न्यायप्रिय व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता, परन्तु १८५७-५८ की क्रान्ति यह भी सिद्ध करती है कि भारत में कोई ऐसी विशेषता भी विद्यमान थी, जिसने उसको पतन में भी अपनी महत्ता का ऐसा ज़ोरदार प्रमाण प्रस्तुत कर दिया।

जंगनामे में दी हुई सूची इस बात का प्रमाण भी है कि संकट के अवसर पर जाति भेद और ऊँच-नीचपन भुलाकर हमारा समाज एक हो सकता है। कहार,

कबड़िये, नाऊ, ठाकुर, मुसलमान, ब्राह्मण—सभी जातियों के शूर एक साथ एक उद्देश्य के लिए जूझे। हमारा देश यदि इस परम्परा को आज भी सुरक्षित रखे है, तो मैं दावे से कह सकता हूँ कि वह बड़े से भी बड़े संकट को पार कर जायगा; कोई शक्ति मर्जी के खिलाफ़ उसे झुका नहीं पायेगी।

सिंह साहब अपने घर से भोजन बनवाकर ले गये थे। नीम तले बैठकर भोजन किया। बड़ा सुख पाया। आशीर्वादी पाण्डे, पण्डित जगन्नाथ, बाबूराम सिंह आदि के साथ थोड़ी देर बैठकर सांसारिक दुख-सुख की चर्चा की। सबसे बड़ा अपनापन मिल रहा था। पुराने समय में सार्वजनिक शिक्षा का अभाव पण्डित जगन्नाथ जैसे वयोवृद्ध को भी बुरा मालूम होता था, यह जान कर मुझे हार्दिक सन्तोष हुआ। कहने लगे : "पुराने जमाना मां ब्राह्मणन के सब लरिका भी पढ़बु-लिखबु नाहीं जानत रहे। अब द्याखौ कि विद्या का कस फैलाव बढ़ रहा है। मुलु पण्डित जी, दूसर पच्छ से जो हम बिचार करित हइ, तौ हमका अस लागति हय कि अच्छर बोध अउर उपरी टीमटाम वाला ज्ञान तौ जरूर बाढ़ा है, बाकी विद्या का प्रचार नहीं भवा। यहौ होइ जाय तौ अच्छर बोध का असिल लाभ होय।"

मैं खाट पर बैठकर खा रहा था, मैंने पूछा : "पण्डित जी मुझे इस प्रकार भोजन करते देख आप के मन को कैसा लगता है; सच कहियेगा।"

पण्डित जी से पहले पाण्डे जी बोल उठे आपै : "यह तौ आज का धरम है।"-

"ठीक कह्यो धरमय आय। अब द्याखौ कहां-कहां भटकि रहे हैं आप। कितना काम औ जिम्मेवारी आप लोगन पर रहता है। आप लोगन ते हमार लोगन का धरम नाहीं सधि सकति है। अरे, अपने पोता का हम रोजु देखिति है। स्कूल मां बहुत नाहीं पढ़ा मुलु तबहुँ हमार जइस नियम संजम उहु नाहीं कै पावति है। हम तौ कहि चुकेन, युहु समय का धरम आय। हम आपके धरम का बुरा न मानब। पर ई के साथ हम यहौ कहब अकि हमार धरम श्रेष्ठ आय।"

ललाई लिये हुए गौर वर्ण, सफ़ेद बुर्राक दाढ़ी और सिर के बाल, चन्दन चर्चित भाल के साथ उनकी वृद्धावस्था अपने विचारों का उद्घाटन कर मेरे लिये श्रद्धा और आकर्षण की वस्तु बन गई है। मैं भारत के हृदय में बैठा हुआ हूँ, भरतों की भूमि में, पण्डित जगन्नाथ उस भूमि का स्वर लेकर बोल रहे थे।

आशीर्वादी पाण्डे जी ने हमारा बड़ा आग्रह और प्रेम से सत्कार किया। मैंने आमतौर पर देखा कि गाँवों में सूचना विभाग की गाड़ी सिनेमा दिखाने वाली गाड़ी के नाम से अधिक ख्याति प्राप्त करती है। गाँव के बच्चे उससे परिचित होते

हैं। सिनेमा दिखलाने की माँग गाँव के नेता से लेकर बच्चे तक करते हैं, यह भी इस यात्रा में अक्सर आज़माया। आशीर्वादी पाण्डे जी ने भी वही माँग की। सिंह साहब ने बीच में पानी बरस जाने से गाँव के रास्ते खराब हो जाने की बात बतलाई। अब इधर मार्ग सूख चले हैं, तो शीघ्र ही सिनेमा मशीन लेकर आयेंगे।

बलभद्रसिंह की जन्मभूमि मुरौवा या मुरुवा ग्राम में बिता, वीर प्रसवनी भूमि को प्रणाम कर हम लोग चले। मेरा मन फिर बलभद्रसिंह को लेकर भर आया। बलभद्रसिंह सचमुच अवतारी नायक था। सर होपग्राण्ट के दिये हुए वर्णन के अनुसार बलभद्रसिंह लम्बी-चौड़ी देहवाला, तेजस्वी, व्यक्तित्वशील, चतुर, साहसी, फुर्तीला, और भयशून्य पुरुष था। आयु १८ वर्ष ३ दिन —इतने दिनों में वह अपने व्यक्तित्व को अन्तिम क्षण तक कितना विकसित कर सका, जीवन को अन्तिम क्षण में पूर्ण कर वह वीर रस का साधक अपने 'रसो वै ब्रह्म' में लीन हो गया। लगन से बढ़ कर कुछ नहीं। लगन हो और उद्देश्य भी ठीक हो तो किसी भी दिशा में कर्म करते हुए ऐसे ही अद्‌भुत पराक्रम का परिचय कोई भी व्यक्ति दे सकता है।

बलभद्रसिंह के व्यक्तित्व की दूसरी जीत यह थी कि उनकी सेना के खरे जुझारू वीर अपने नायक को बहुत चाहते थे। दूसरे जब साथ छोड़ कर चले गये तब बलभद्रसिंह के छः सौ वीरों ने अपने देश की एक-एक इंच भूमि की रक्षा के लिये रक्तदान दिया। होप ग्राण्ट और रसल दोनों ने ही उन छः सौ वीरों तथा उनके नायक बलभद्रसिंह चहलारी वाले को जी खोल कर सराहा है। जंगनामे में उन छः सौ लोगों में से कम से कम नब्बे वीरों के नाम परिचय का ज्ञान हुआ।

नहर के रास्ते होते हुए हम बौंडी के लिये, चले। चहलारी देखने की इच्छा मन में दबा ली। मुरौवा तथा टिकुरी ग्राम में मुझे काम लायक यथेष्ट सामग्री उपलब्ध हो चुकी थी। चहलारी जाकर कुछ वहां की जनता से बलभद्र की कहानियाँ तथा अन्य शूरों के नाम अवश्य पाता। पर यह काम कोई और करेगा। प्रत्येक ज़िले में ऐसे व्यक्ति अवश्य होते हैं, जो अपने क्षेत्र की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्पराओं के प्रति रुचि ही नहीं रखते, बल्कि काम भी करते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि कुछ ऐसे व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्रों से सत्तावनी क्रान्ति का इतिहास, तत्संबंधी किंवदंतियां, लोक-गीत आदि संग्रह कर लें। ऐसी सामग्री का एकत्र किया जाना और एकत्र प्रकाशित किया जाना भावी पीढ़ियों के लिये उपयोगी कार्य होगा।

बौंडी

राजा हरदत्तसिह रैकवार का कोट—

मुरौवा के कोट से निश्चित रूप से इसका क्षेत्रफल ढाई-तीन गुना बड़ा है। इस कोट के क्षेत्र में घुसते ही दाहिने हाथ पर कपूरथला स्टेट का तहसील दफ्तर, बायें हाथ डिस्पेन्टरी प्रेस, और आगे चलकर बायें हाथ पर स्कूल है। सामने दाहिने हाथ पर एक खण्डहर खड़ा है। यही क़िला है...ध्वस्त, खुदी हुई मिट्टी, लखौरी ईंटें कुछ उनसे भी पुरानी लगने वाली ईंटें बिखरी हैं। एक कमरे का आकार दिखलाई देता है, ऊपर तक एक दीवाल खड़ी है। प्राचीनता की बस इतनी ही निशानी यहाँ बची है। एक किसान ने बतलाया कि हमरे पुरखा बतावत रहे कि 'राजा का घरु उइ कैती रहा'। स्कूल के पीछे वाले भाग में, जहाँ उस किसान के खेत हैं राजा का घर था। खेतों से ईंटें निकलती हैं। यहां भी एक ने बतलाया कि कोट के चारों ओर बाँस के पेड़ लगे थे, फिर खन्दक़, फिर बाँस। चार फाटक, चार बुर्ज, चार तोपें थीं।

बौंडी में किसी को बौंडी के राजा और बेगम का हाल नहीं मालूम..बस इतना ही लोग जानते हैं कि बेगम आई थीं और राजा हरदत्तसिह भागकर पहाड़ पर चले गये थे।

इकौना

दूसरे दिन प्रातः काल हम इकौना के लिये चले। वहाँ के राजा उदित प्रकाश का नाम भी मैने सत्तावनी सिलसिले में सुना था।

सबसे पहले वहां के 'इण्टरमीजियट कालेज' के प्रिंसिपल से मिलने गये। उनके सम्बन्ध में हमें यह बतलाया गया था कि इकौना के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते हैं। बहराइच में रहने वाले उनके भाई बाबू श्यामलाल वकील भी कुछ जानते हैं। पर प्रिंसिपल साहब न मिले, वे बहराइच गये थे।

फिर स्वर्गीय लाला सालिगराम के पुत्र श्री रामकुमार से मिलने गये। उन्होंने बतलाया : "हमारे पूर्वज लाला किशुन परशाद वाजिदअलीशाह शाही के क़ानूनगो थे। इकौना के राजा उदितप्रकाश ग़दर में हार कर भागे, फिर वापस नहीं आये।

"मेरे खान्दान में एक रवायत चली आती है कि जब १४ गाँव हमारे परखों

ने कपूरथला को दिये, तब उसी आधार पर औरों ने भी अपने इलाक़े दिये। इस कारण ये लोग कपूरथला स्टेट के 'ज़ी-इज्ज़त' माने जाते हैं। चालीस रुपया माहवार मिलता था, तीस हो गया। लिखा पढ़ी की गई। काग़ज़ात भी हैं।"

इकौना एक छोटा सा सम्पन्न क़स्बा है परन्तु प्राचीन इतिहास की जानकारी रखनेवाले लोग वहां अधिक नहीं, यह बतलाया गया। मैंने सोचा बहराइच जाकर बाबू श्यामलाल वकील से मिला जायगा।

श्रावस्ती के खण्डहर इकौना से केवल चार मील दूर थे। यद्यपि सत्तावनी क्रान्ति से उन सदियों बूढ़े खण्डहरों का कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु इतने निकट आकर बुद्ध महाराज के जेतवन विहार को देखने की इच्छा रोक ना सका। श्रावस्ती भगवान बुद्ध से भी सदियों बूढ़ी नगरी बतलाई जाती है। पुराणों के अनुसार श्रवस्त नामक किसी सूर्यवंशी राजा ने इस नगरी की स्थापना की थी। भगवान राम ने अपने पुत्र लव को यहां का राज्यपाल बनाया। यह नगर प्रसेन-जित के समय बड़ा मालदार और शानदार बतलाया जाता है। राजकुमार जेत की जमीन बिहार बनवाने के लिये सेठ अनाथ पिण्डक ने खरीदी थी और मूल्य स्वरूप पूरी जमीन पर स्वर्ण मुद्राएँ बिछा कर दी थीं। श्रावस्ती की पटाचारा बौद्ध थेरियों में बड़ी प्रसिद्ध हुईं है। भगवान बुद्ध को जेतवन विहार अत्यन्त प्रिय था।

डेढ़ दो मील के घेरे में—ऊँचाई से देखने पर क़रीब-क़रीब अर्धचन्द्राकार श्रावस्ती के खण्डहर पड़े हैं। ऐसा लगता है जैसे यह सब कुछ किसी क़िलेनुमा चहारदीवारी से घिरा हुआ था। जेतवन विहार में वह चबूतरा अब तक है, जहां वृक्ष तले बैठकर भगवान् उपदेश करते थे। गन्धकुटी के पास खड़े होकर मन अतीत की महत्ता से भर गया। पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू तथा भारत सरकार के ज़ोरदार प्रचार के बावजूद मैं बौद्ध भले न होऊँ पर बुद्धदेव के प्रति मेरी श्रद्धा निष्कपट है। बुद्ध, जहां तक जानता हूँ, संसार के पहले धर्म-प्रवर्तक थे जिन्होंने धर्म को संघबद्ध किया। जातिवाद तथा बलि-प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले बुद्ध और महावीर अपने युग के महान् क्रान्तिकारी अवतारी पुरुष हुए हैं। बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन सिद्धान्त के कारण भारत की वाणी को सबसे पहले विदेशों में पहुँचने का अवसर मिल सका। मैं जहां तक समझता हूँ, धर्म का चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने की कल्पना ईसाइयों ने, शंकराचार्य और मुहम्मद ने किसी न किसी रूप में बौद्धों से ही पाई है।

बुद्ध जयन्ती के सिलसिले में सरकार ने यहां बहुत कुछ बनवा दिया है। जी की कहूँगा, अयोध्या की मनहूसियत श्रावस्ती आकर मुझे बहुत खली। भारतीय संस्कृति पर अयोध्या और मथुरा का जो ऋण है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। अयोध्या में पुरातात्विक खोजें न होना, उसे सुन्दर रूप न देना मुझे बहुत खलता है।

शाम को बहराइच में बाबू श्यामलाल वकील से मिलने गया। उनसे यह सूचनायें प्राप्त हुईं।

"नानाराव आये थे। उन्होंने यहां पर संगठन किया। बौंडी भी गये। इकौना में एक साधू बैरागी बाबा दुर्लभदास नानाराव की शक्ल-सूरत का था। ग़दर के बाद वह नानाराव के धोखे में पकड़ा गया, लेकिन बाद में शिनाख्त पुख़्ता हो जाने के बाद छोड़ दिया गया। इकौना के राजा जनवार राजपूत थे। ग़दर में लड़े और कभी न लौटे।

"अच्छा साहब, एक किस्सा हमारे बचपन का है सुनिये। इकौना में एक पागल रहा करता था, पाटनदीन, खाने के लिए वह भीख में बस दाल (पहिती) माँगा करता था। कहा जाता है कि वह सन्' ५७ का कोई हीरो था। मगर ये सब शक ही शक था। राजा के कुटुम्ब वालों ने कभी उसकी खोज खबर नहीं ली, शायद वह भी वहाँ कभी नहीं गया था।

"इकौना का एक क़िस्सा और जानता हूँ कि वहाँ के राजा ने वेचू नामक एक ब्राह्मण का बड़ा अपमान किया था। कारण तो नहीं जानता। कहते हैं वेचू अविवाहित था। ख़ैर साहब, राजा ने उसे बुला कर गालियां वालियां दीं और चोटी घसीट कर उसे निकलवा दिया—कुछ इसी तरह की बात थी। फिर साहब, वह ब्राह्मण महल के सामने ही बरगद के पेड़ में फाँसी लगा कर मर गया। सबने कहा कि यह ब्रह्म हत्या हो गई। राजा को बड़ा कलंक लगा। बाद में उसने समाधी-उमाधी बनवा दी, मगर कलंक तो लग ही गया। वेचू महाराज की समाधी पर आज तक मेला लगता है। और कहावत है कि उसी की बद्दुआ या शराप से इकौना का राजवंश उजड़ गया।"

रेहुआ के कुँअर साहब

बौंडी और रेहुआ नरेशों के वंशधर कुँअर इन्द्र प्रताप नारायण सिंह से भी भेंट

की । श्यामलाल जी की कोठी के पास ही इनकी कोठी थी; वही कुँअर साहब से मिलाने भी ले गये । कुँअर साहब ने बतलाया :

"जिस समय बेगम और शाहजादा बिरजीस क़दर हमारे यहाँ भाग कर आये, ...मैं पहले आप को अपने यहाँ की हिस्टरी बताऊंगा ।

"हमारे वंश के पूर्वज थे सालदेव-बालदेव । हम रैंकवार क्षत्रिय हैं । हमारी उत्पत्ति राकादेव से है, जो राठौड़ थे । यह मैंने बीकानेर से छपी क्षत्रिय जाति की सूची में पढ़ा था । डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने एकबार मुझे बतलाया था कि जब महाराज राकादेव रायक (काश्मीर) में राज्य करते थे तब उनके पुरखे राकादेव महाराज के पुरोहित थे । अच्छा खैर तो, यहां हमारे पूर्वज सालदेव-बालदेव थे । रामनगर धमेरी में उनका राज्य था । फिर महाराज सालदेव अपने छोटे भाई बालदेव को रामनगर धमेरी का राज्य सौंपकर और मुरौवा के इधर बूढ़ी सरजू (जिसे यहाँ 'बुढ़ियार' कहते हैं) के निकट बँभनौटी, जिसे उस समय में बँभनीगढ़ भी कहा जाता था, आये और उस पर क़ब्ज़ा किया । बहुत वर्ष तक हम लोग राज करते रहे । उसके बाद हमारे यहां महाराज हरिहरदेव और गजपतिदेव दो भाई हुए । महाराज हरिहरदेव बड़े शूरवीर योद्धा थे; वैसे ही उनके भाई महाराज गजपतिदेव भी थे ।

"तो एकबार, शायद जहाँगीर बादशाह का ज़माना था, दिल्ली की कोई बेगम बहराइच में जियारत करने के लिये आ रही थीं। चूंकि घाघरा के दोनों पार हमारा राज था, इसलिये जब वे इधर आईं तो टैक्स माँगा गया । उन्होंने आनाकानी की उन्हें रोक लिया गया—कहना चाहिए कि एक तरह से कैद या नज़रबन्द, जो समझिये, कर लिया गया । तब फिर बेगम मान गईं; एक हाथी दिया, दुशाले आदि दिये । बाद में वापसी पर जब बेगम दिल्ली गई तो जहाँगीर बादशाह से शिकायत की । इस पर वहाँ से फौज चल पड़ी । उस समय बँभनीगढ़ में हमारे यहां एक ब्राह्मण मंत्री थे । उन्होंने महाराज हरिहरदेव को समझाया कि शाहजहां से लड़ाई मोल न लें, और यह प्रार्थना की कि आप दोनों भाई तुरन्त दिल्ली जांय और जाकर कहें कि अपने राज में कर लेने का हमें पूरा अधिकार था, सो लिया, इसमें हमने अपनी ओर से दुश्मनी करने की नीयत तो की नहीं थी । महाराज हरिहरदेव मंत्री जी की बात मान गये । जब दिल्ली जाने लगे तो अपने तेरह-चौदह बरस के लड़के को गद्दी पर बैठा गये और अपनी महारानी जी को वलिया वना गये—उनके उस लड़के का नाम महाराज प्रसन्नदेव था।.........

"एक पुस्तक है 'नागकोशलोत्तर'। उसके लेखक का नाम बाबू गोरखप्रसाद सिंह उर्फ़ मुंशी बाबू है। नागकोशलोत्तर में लिखा है कि जब ये जहांगीर बादशाह के दरबार में पहुँचे तो उस समय इधर के दो राजा और भी दरबार में बैठे थे। उन में एक बाँसी ज़िला बस्ती के राजा थे, और दूसरे मझौली जिला देवरिया के राजा थे। बादशाह ने पूछा कि तुम तीनों में कौन बड़ा है। कोई न बोला; महाराज हरि-हरदेव जी बोले कि सरकार, पूरब में इन दोनो में कोई तो बड़ा जतिहा (जाति वाला) और कोई बड़ा पँतिहा (पाँति वाला) माना जाता है, पर सरकार इनमें सब से बड़ा बहादुर मैं माना जाता हूँ। जहांगीर बादशाह देखने लगा, फिर बोला कि अगर तुम्हारा बहादुरी का दावा है तो जाकर चुनार के राजा को परास्त करो, उसे गिरफ्तार कर यहाँ ले आओ तो मानूं कि बहादुर हो। इस पर दोनों भाई कुछ राजपूतों की शाही फ़ौज और कुछ अपनी सेना लेकर चुनार पहुँचे। वहां जंगल में अपनी सेना छिपा दी और दोनों भाई सन्यासी का वेष धारण कर, अन्दर हथि-यार छिपा कर क़िले पर गये। इत्तिला कराई। महाराज चुनार मुँह हाथ धोकर चांदी की चौकी पर बैठे थे, सन्यासियों को बुला लिया। पहुँचते ही मौका देख महाराज हरिहर देव और गजपति देव जी, दोनों भाइयों में से एक ने महाराज चुनार की गर्दन पर तलवार रक्खी और दूसरे ने छाती पर रख दी और खड़े हो गये। जरा देर में खल-बली मच गई, लोग दौड़े। महाराज हरिहर देव ने कहा कि आप लोग नंबर में ज्यादा हैं और अगर आप लोग हमें मारेंगे तो हम आपके महाराज को पहले मार डालेंगे। और हम लोग शत्रु नहीं हैं, शहन्शाह के हुकुम से महाराज को कैद करने आये हैं। अगर तुम्हारे महाराज सीधे-सीधे चलें तो कोई बात नहीं, वरना अभी हमारी सेना भी गढ़ घेर लेगी। महाराज चुनार दिल्ली जाने से घबराते थे, कहने लगे, बादशाह से मेरी पुरानी लड़ाई है, दिल्ली में वह हमारा अपमान करेगा। महाराज हरिहरदेव बोले, हम पहले बादशाह से वचन ले लेंगे, तब आपको पेश करेंगे। और जो उस पर भी बादशाह ने आपका अपमान किया तो हम उसका भी यही हाल करेंगे जैसा आपका किया है। इस पर महाराज चुनार राज़ी हो गये। उनके साथ दिल्ली आये। उन्हें एक जगह छिपा कर दरबार में गये। जहांगीर ने पूछा, कहिये महाराज हरिहर देव, आप अपनी बहादुरी का सबूत लाये। इन्होंने कहा कि हाँ सरकार, मगर पहले आप वचन दें कि महाराज की बेइज्ज़ती नहीं करेंगे—वो भी आखिर महाराज हैं। और महाराज चुनार आपको खिराज देंगे। यह बात महाराज हरिहर देव ने निर्भय हो कर कही। बादशाह ख़ुश हुआ और महाराज

चुनार के साथ ऐसा ही बर्ताव किया, खिलअत दी। इसी खुशी में बादशाह ने महाराज हरिहर देव को लखनऊ में गोमती के इस पार से ले कर डुंड़वा पहाड़ (यह शिवालिक की श्रृंखला है और अब नेपालराज में है।) तक की भूमि दी जिसके फरमान आज तक हमारे वंश में होकर भी परिस्थितिवश गुम हैं।

"खैर, लौट कर आने पर महाराज हरिहर देव ने रेहुआ का राज अपने छोटे भाई महाराज गजपति सिंह को तिलक करके दिया। अपने बेटे को चूंकि राजा बना गये थे, इसलिये उन्होंने अपने वास्ते एक दूसरे इलाके बौनहा में, जिसका हेड-क्वार्टर इस समय हरिहरपुर के नाम से चिलवरिया स्टेशन से तीन मील पर है, राजधानी स्थापित की, नया राज बनाया।

"वहां महाराज ने मुरावनी रक्खी। आप एक बात नोट कर लीजिये, गज़ेटियर में लिखा है कि ब्राह्मणी रक्खी; मगर यह बात ग़लत है, महाराज अनुचित काम कर ही नहीं सकते थे। उन्होंने मुरावनी रक्खी थी। और उससे उनकी संतान हुई। महाराज हरिहर देव ने मुरावनी से पैदा अपने बेटे को बौनहा का तिलक-धारी राजा तो न बनाया पर वह इलाक़ा उन्हें दे दिया। इस वंश से आज भी रैंकवारों का भात-सम्बन्ध नहीं है। ये लोग रैंकवार नहीं बल्कि रैंकवारी के रैंकवार कहे जाते हैं।

"अब राजा गजपति सिंह की बात सुनिये। उन्होंने रेहुआ के पास धर्मापुर में एक छावनी स्थापित की और वहां आगये। इस पर बँभनीगढ़ वाले भी उठ कर अपनी छावनी बौंडी में चले आये। धर्मापुर के राजा के भाई की स्त्री वहां सती हो गईं थीं, इससे राजा ने उस जगह को मनहूस जान छोड़ दिया और रेहुआ में किला बनवाकर वहीं अपनी राजधानी बसाई। रेहुआ उत्तर और बौंडी दक्षिण में ठीक एक मील के फासले पर हैं।

"सन् १८३५ या ४० में रेहुआ, बौंडी में वैमनस्य हो गया। उन दिनों महाराज मान्धाता सिंह बौंडी के राजा थे और राजा यशकरण सिंह रेहुआ थे। राजा यश-करण सिंह की मृत्यु २४-२५ बरस की उम्र में ही हो गई। वे निःसंतान मरे। मरते समय उन्होंने अपने मँझले भाई के आठ महीने के पुत्र को बुलवा मँगाया। उसको राजा यशकरण सिंह ने अपनी छाती पर बैठाकर कहा कि इसको मैंने गद्दी दे दी, मेरे बाद यही राजा होगा। उनके मरने के बाद शिशु राजा के पिता धौंकल सिंह राज-काज सम्हालने लगे, उन्हें भी सब लोग राजा साहब ही कहते थे।

"मैंने आपसे बतलाया कि बौंडी और रेहुआ के राजवंशों में वैमनस्य की गाँठ पड़ गई थी, सो बराबर कसती ही गई। महाराज मान्धाता सिंह लखनऊ जा रहे थे। उनके मन में पुराने वैर का ध्यान आया। वे चालाकी कर गये; लखनऊ जाते हुए मुकाम क़ैसरगंज के पास नौ गुइयाँ पर छापा मारा और धौंकल सिंह को घर लिया। इनके साथ दो हज़ार सिपाही थे धौंकलसिंह बिलकुल औचक में घेरे गये थे; उनकी कोई तैयारी तो थी नहीं, साथ में सिर्फ पचास आदमी थे सो जूझ गये। महाराज मान्धातासिंह ने राजा धौंकल का सिर लेकर उनके सिर की रण पूजा की...।"

"रण पूजा किस प्रकार होती है ?" मैंने पूछा।

"शत्रु का सिर भूमि पर रख कर उसपर अपना झण्डा गाड़ा जाता है।" कुँअर साहब ने समझाते हुए कहा; "हाँ, तो राजा यशवंतसिंह बेचारा छोटा ही था, परन्तु उसके चाचा, यानी राजा यशकरण सिंह के छोटे भाई पृथ्वीसिंह ने प्रण किया कि मैं मान्धातासिंह को मार कर गोत्रवध का बदला लूँगा और अवश्य-अवश्य रण पूजूंगा।

"बौंडी नरेश महाराज मान्धातासिंह ने जब सुना तो क्रोध में भरकर रेहुआ पर छापा मारा। उनके दरबारी कवि ईश्वरी ब्रह्मभट्ट ने मना किया कि ऐसा न कीजिये, अन्याय पर अन्याय होगा और आप अवश्य हारेंगे; आप अपने सगोत्रियों के रक्त से हाथ सान रहे हैं। परन्तु मान्धातासिंह न माने। शाम को रेहुआ पर चढ़ाई की। आप सेना सहित तामज़ाम पर लड़ने आये थे। पृथ्वीसिंह ने किले से निकल कर अपनी सेना सहित अचानक इनको घेर लिया। इन्होंने ऐसा सोचा भी न था; बस पैर उखड़ गये। फिर तो मान्धातासिंह की सेना जहां सींग समाया वहीं भागी और ख़ुद मान्धातासिह जाकर अपनी रण्डी के घर में घुस गये। मान्धातासिंह जब भागे तब ईश्वरी ब्रह्मभट्ट ने बड़ी भद्दी गालियों का भँड़ौआ बनाया। तो, पृथ्वीसिंह वहाँ भी जा पहुँचे और जब देखा कि मान्धातासिह की कायरता का यह हाल है तो सोचा कि एक तो सगोत्री हैं दूसरे इतने बड़े कायर कि वेश्या के घर में पनाह खोजते हैं, तो जान नहीं ली; मगर चूँकि पृथ्वीसिह जी रण पूजने की प्रतिज्ञा कर चुके थे, इसलिये मान्धातासिह की पगड़ी उतार ली और उनकी रण्डी के एक स्तन की घुण्डी काट कर उसी पर रण पूजा कर ली। इसके बाद मान्धातासिह का स्वर्गवास हो गया। उनके दो लड़के थे। बड़े महाराज हरदत्तसिह सवाई और छोटे भया शिवप्रसादसिंह। भया शिवप्रसादसिंह के कोई सन्तान नहीं हुई।

महाराज हरदत्तसिंह के दो सन्तानें हुई, जिनका ज़िक्र हम आगे करेंगे आपसे।

"ख़ैर, तो इस आपसी झगड़े का अन्त भी महाराज मान्धाता सिंह के साथ ही साथ हो गया। महाराज हरदत्तसिंह के समय में रेहुआ वालों से सन्धि हो गई। उस समय रेहुआ में यशवंतसिंह की गद्दी पर राजा रघुनाथ सिंह थे। उनके दो भाई थे- भया हरपालसिंह और भया हरिशरण सिंह उर्फ़ कलक्टर सिंह।

गदर में महाराज हरदत्तसिंह सवाई बौंडी नरेश थे।"

"ये सवाई की उपाधि किसने दी ?" मैंने पूछा।

"हमारे यहां किसी ने उपाधि नहीं दी, अपनी शक्ति के बूते पर, तलवार के ज़ोर पर हम लोगों के पूर्वजों ने राजउपाधियां और प्रतिष्ठा हासिल की थी।

"तो, जब लखनऊ की लड़ाई में भारत वालों की हार हुई तब बेगम हज़रतमहल अपने शाहज़ादे बिरजीसक़दर को लेकर बौंडी आईं, महाराज हरदत्त सिंह ने अपना धर्म समझ कर अँग्रेज़ों की ज़रा भी परवाह न करते हुए उन्हें शरण दी और उनकी मदद करने का प्रबन्ध करने लगे। रेहुआ नरेश राजा रघुनाथ सिंह को दमे की शिकायत थी। उनके मँझले भाई भया हरपाल सिंह आधे पागल थे। महाराज हरदत्त सिंह ने भया हरिशरण सिंह को अपनी सेना का 'कमाण्डिग अफ़सर' बनाकर बेगम की मदद को भेजा। उनके पैर में गोली लगी और वे ज़ख्मी होकर लौटे। अंग्रेज़ों की जीत हो गई।

"जिस ज़माने में बेगम बौंडी के किले में मेहमान थीं उसी ज़माने में नानाराव पेशवा रेहुआ में तीन दिन मेहमान रहे थे। महाराज हरदत्तसिंह के बड़े बेटे युवराज महेशबख्श सिंह से बिरजीसक़दर की दोस्ती हो गई। दोनों एक ही उम्र के थे। हरदत्तसिंह के छोटे लड़के का नाम भया महावीरबख्शसिंह था।

"जब लड़ाई में हार हो गई तो महाराज हरदत्तसिंह बेगम हज़रतमहल, नानाराव वग़ैरह जो ख़ास ख़ास लोग थे भाग कर पहाड़ों पर चले गये।

"इसके बाद रियासतों की ज़ब्ती हुई और रेहुआ का दुर्ग, खाँई, १५२ तोपों की जगहें सब अँग्रेजों ने तुड़वा दीं। रेहुआ नरेश राजा रघुनाथसिंह युद्ध में जूझ गये। बौंडी नरेश, 'कुइन विक्टोरिया' के ऐलान के हिसाब से जो तारीख़ बतलाई गई थी, उसमें लौट कर न आये, उनकी मृत्यु पहाड़ों पर ही कहीं हुई।"

मैंने पूछा, "अवध गज़ेटियर में लिखा है कि महाराज हरदत्तसिंह पोर्ट ब्लेयर में मरे थे।"

"ग़लत है। अँग्रेजों ने उनकी ग़ैर मौजूदगी में ही उन पर मुक़दमा चलाया,

काले पानी और ज़ब्ती रियासत की सज़ा दी, लेकिन जब वे यहां मौजूद ही नहीं थे तब काले पानी भेजा ही कैसे जा सकता था ? हाँ, रियासत ज़ब्त कर ली ।"

"उनके दोनों लड़कों का क्या हुआ ?" मैंने पूछा ।

"वही बतलाने जा रहा था । महाराज हरदत्तसिंह के दोनों राजकुमार अयोध्या नरेश महाराज मानसिंह के पास रहे । सूरजकुण्ड के पास अयोध्या नरेश का एक मकान बिजुलिया डीह पर था । वहीं वह लोग तेरह-चौदह बरसों तक रहे । महाराज मानसिंह के अलावा रेहुआ, रामनगर, धमेरी वाले भी उनकी सहायता करते रहे । बाद में राजा साहब रामनगर धमेरी ने एक मौज़ा सरदहा नाम का महेशबख्श सिंह जी को नस्लन बाद नस्लन माफ़ी दिया था जिसे बाद में उनकी रानी साहब ने हमको अपनी कुल जायदाद के साथ वसीयत में दिया, पर चूंकि मौजूदा राजा को मौज़े का लालच लगा तो हमने आपसी झगड़े से बचने के के लिये उन्हें दे दिया ।

"हमारा इतिहास इस प्रकार है कि रेहुआपति राजा रघुनाथ सिंह के बेटे राजा विजय बहादुर सिंह थे । वे हमारे पिता थे । वे बड़े विद्वान और साथ ही साथ बड़ी ताक़त भी रखते थे । पहलवानी में उनका जोड़ नहीं था । एक बार यहां तक हुआ कि राजा साहब नानपारा के शेर से उनकी कुश्ती बदने की बात हुई और ये राज़ी हो गये । मगर जस्टिस पिगेट और नवानगर के रंजीतसिंह आदि मित्र थे,उन्होंने यह कुश्ती न होने दी । हमारे पिता जी का छोटी उम्र में ही स्वर्ग-वास हो गया । उनके दो पुत्र हुए । एक राजा रुद्रप्रताप नारायण सिंह जिनकी ३० सितम्बर सन् १९५३ में मृत्यु हो गई, दूसरा मैं यानी कुअँर इन्द्रप्रताप नारायण सिंह । मेरे बड़े भाई की तीन कन्याएँ तथा एक पुत्र और मेरे एक पुत्री और एक पुत्र है । मैंने अपनी राजकुमारी की शादी नेपाल के राणा जंगबहादुर के पड़पोते से की, और कुमार शक्तिविजय सज्जनसिंह की उम्र अभी चौदह-पन्द्रह साल की है, ये पढ़ते हैं । आगे देखिये अब ज़माना हमारे वंश वालों के लिये कैसा आता है । बस इतना ही हमारा इतिहास है ।"

बातचीत के सिलसिले में पता लगा कि जबलपुर, बाँदा के कहार भी अपने को रैकवार कहते हैं । फ़तेहपुर, इलाहाबाद के चमार भी रैकवार कहलाते हैं।... कारण जानना चाहिये । तुलसीदास ज़ी के प्रमाण से तो "साहब को गोत, गोत है गुलाम को ।" शायद यहां लागू हो जाय ।

१९ जून । बहराइच ज़िले की गदरकालीन प्रमुख रियासतों में अब केवल

अंग्रेजों की ओर से लड़ने वाले सिपाहियों को बाँटे गये बिल्ले

बहादुरशाह द्वारा नवाब बिरजीसक़दर को भेजी गयी शाही मुहर

चर्दा के ही वंशजों से मिलना शेष रह गया है। चर्दा के भूतपूर्व राजा भारतीय सीमा के बाहर नेपालगंज में स्थित ढौंढ़े गाँव में रहते हैं। भवनिया के कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री महेश्वर बख्शसिंह ने हमारा मार्गदर्शक बनने की कृपा की।

मार्ग में केवलपुर नामक ग्राम पड़ने पर उन्होंने कहा: "यहाँ के रशीद मियां भी गदर की बातें बताते हैं। उनके पुरखे बेगम के साथ यहां आये थे।" हम लोग उनसे मिलने के लिये वहां रुके।

श्री रशीदुद्दीन क़िदवाई ने बतलाया: "बेगम ने चर्दा में पनाह ली। उसके बाद जब अंग्रेज़ों ने वहां घेरा तो सुरङ्ग की राह से मस्जिदिया के क़िले में पहुँचीं जो वहां से आठ मील के क़रीब दूर है।"

मैंने पूछा: "क्या इतनी लम्बी लम्बी सुरङ्गें वाक़ई बनाई जाती हैं?"

"सुरङ्गों की बाबत जो आप का सवाल है तो अर्ज यह है कि मैं शिकार के वास्ते अक्सर दूर-दूर जङ्गलों में जाया करता हूँ। मस्जिदिया किले से मान नाले तक एक मील की सुरंग के आसार नजर आते हैं। अङ्गूर कोट वग़ैरह सब सुरङ्गों से जुड़े हुए थे। हाँ, तो जब अंग्रेजों ने बेगम को मस्जिदिया के किले में भी घेरा तो उसके बाद वो वहाँ से मान नाले से महादेवा पहाड़ के करीब एक मौजा है वहाँ से सोनार होती हुई नैपाल गईं। कई जगह उनके दफ़ीने के निशानात बतलाये जाते हैं। पत्थर लगे हैं, मस्लन महादेवा, सोनार, चर्दा, मस्जिदिया, अंगूरकोट जो राजा तुलसीपुर का इलाका था—वहाँ सब जगह दफ़ीनों की बात मैंने सुनी है। आज सात आठ साल हुए अंगूरकोट शिकार खेलने गया था, तब सुना था कि कुछ मजदूरों को दफ़ीना मिला। मैंने वहाँ ये जरूर देखा कि चारपाँच घड़ों के निशानात मिट्टी में थे जैसे किसी ने उन्हें निकाल दिया हो।"

मैंने कहा: "साहब, माफ़ कीजियेगा, ये दफ़ीनों की बात गले के नीचे नहीं उतरती। निशानात मौजूद हों, लोगों को मालूम हो, और वे जगहें रकम पाने के लालच से इतने दिनों तक खोदी न जायं, ये बात कुछ अटपटी सी लगती है। ख़ुद अंग्रेज़ ही क्यों छोड़ते!"

क़िदवाई साहब ने फ़र्माया: "आप के सवाल का जवाब तो यही हो सकता है कि उन जगहों को खोदा जाय।"

मैंने कहा: "जी, अभी लखनऊ में बतलाये गये निशानात के सहारे एक दफ़ीना खोदने की कोशिश दो-तीन वर्ष पहले हुई थी। जन्तर-मन्तर, टोना-टोटका, सरकारी निगरानी, सब तरह के तमाशे हुए। खुदवाने वाले शाही खान्दान से ताल्लुक़

रखते थे, बेचारों के ढाई तीन हजार रुपये अपनी गाँठ के ही खर्च हो गये, मिला कछ नहीं।"

क़िदवाई साहब बोले: "आप का कहना ठीक है। हम तो सुनी हुई कहते हैं। अरबी में पत्थर लगे हुए हैं, यह तो मैंने भी देखा है। खैर, कुछ ज्वेलरी उन्होंने महाराजा साहब नैपाल को दी थी। दो हार दिये थे।

"एक बात और है कि बेगम के साथ बाराबंकी से जो लोग उन्हें पहुँचाने के लिये यहाँ आये थे उनमें हमारे खान्दान के लोग भी थे। तब से हम यहीं रह गये। दादरे के अहमद हुसैन आये थे। बाराबंकी में मुख्तार अहमद वकील हैं। उनके दादा आये थे, उनकी फ़ौत भी यहीं हुई।"

इसके अतिरिक्त चलते-चलाते क़िदवाई साहब ने अपने शिकारी मित्र एक बड़े नेपाली सरदार का हवाला देकर यह बतलाया कि महाराज नैपाल और बेगम अवैध सूत्र से बंध गये थे। बात जिस तरह कही गई वह ढंग बेढंगा था। राजा रानियों के चरित्र, जिस वातावरण में वे जिन्दगी भर पाले जाते थे, यदि ठीक-ठीक भलेमानुसों जैसे न हो तो कोई अचरज की बात नहीं। महलों और हरमों का वातावरण गुप्त व्यभिचार को बढ़ावा देने के अतिरिक्त और दे ही क्या सकता था? सत्तावन के अनेक नायक इस दृष्टि से बेदाग़ न मिलेंगे। बेगम और मम्मू खाँ का पारस्परिक नाता अनेक देशी विदेशी लोगों ने उजागर किया है।

यों यह भी उजागर है कि बेगम को बचपन में तवायफ़ के घर के संस्कार मिले थे। बचपन में उस समय की मशहूर कुटनियों अम्मन और इमामन द्वारा ये शाहज़ादा वाजिदअली के परी खाने में बेची गईं। वाजिदअली ने इनका नाम महक परी रक्खा। नाच गाने की तालीम दी गई। शीघ्र ही इन्हें शाहजादा वाजिदअली से गर्भ रह गया। उसके बाद ही इन्हें परीखाने से हटाकर महलों में रक्खा गया। इन्हें इफ्तिखारुन्निसा बेगम का खिताब मिला था। इनके पुत्र को बिरजीस क़दर का। यह अमजदअली शाह के जमाने की बात है। अमजद अली शाह के बाद उनके बड़े बेटे मुस्तफ़ा अली खाँ को राजगद्दी न मिली, वाजिदअली शाहे अवध हुए। ताज पोशी की ख़ुशी में हज़रत ने अपनी महबूबा इफ्तिखारुन्निसा बेगम को हज़रतमहल का खिताब दिया। हज़रतमहल की मुहर पर १२६३ हिजरी अर्थात् १८४७ ई० अंकित है। यही वर्ष वाजिदअली की ताजपोशी का है। हजरत के महलों में दो बेगमों को यही खिताब मिला। दूसरी परी पैंकर हजरतमहल कहलाती हैं। वाजिदअली शाह ने एक जगह ज़िक्र आने पर हज़रतमहल को 'ज़नेखानगी' लिखा है।

बिरजीसक़दर की माता के सम्बन्ध में वाजिदअलीशाह आत्मकथा 'हुज्नेअख्तर' में लिखते हैं :—

"जो वह चौथा शहज़ादा है रश्के बदर। उसे लोग कहते हैं बिरजीसक़दर ।।
वह चौदह बरस का है कुछ शक नहीं। कहूँ क्या कि वह है कहीं का कहीं ।।
मिलाऊँ जो हज़रत से लफ्ज़े महल। तो नाम उसकी मां का खुले बरमहल ।।
जो बिगड़ी थी आगे से अंग्रेज़ी फ़ौज। उसे ले गई जैसे दरिया की मौज ।।
वह मह कब्ज़ये मुफ्सिदां में है आह। बनाया है अपना उसे बादशाह ।।"

वाजिदअली शाह के इस वक्तव्य के अनुसार स्पष्ट हो जाता है कि बिरजीस-क़दर की आयु गदर में चौदह बरस की थी। हज़रतमहल को यह सन्तान छोटी उम्र में ही हुई होगी। अधिक से अधिक पन्द्रह-सोलह वर्ष की रही होगी। गदर में इनकी आयु निश्चित रूप से सत्ताइस-अट्ठाइस की रही होगी। भरी जवानी में अगर उन्हें बद चलन बनने का ही शौक़ होता तो वे ऐसा संगठन न कर पातीं। बेगम के प्रति लोगों में आदर भाव था। जनता में अब तक कहीं भी मुझे उनके प्रति मम्मूखां की बात छोड़ और कोई कच्ची बात सुनने को नहीं मिली।

बेगम यदि महाराज नेपाल की भोगाङ्गना बन जातीं तो यह निश्चित बात है कि नेपाल में उनकी सुख सुविधा के साधन भी खूब जुट जाते। बेगम और उनका परिवार वहाँ कष्ट में रहा। उन्होंने नेपाल में शरण पाने वाले देहली के एक शाह-ज़ादे मिर्जा दाऊदबेग की बेटी मुख्तारुन्निसा से अपने पुत्र बिरजीस क़दर का विवाह सन् १८६९ में किया। नेपाल में बेगम हर तरह से टूटी हुई, अपने कुटुम्ब से जुड़ कर रहीं। उनका स्वाभिमान जो महारानी विक्टोरिया और उनकी सरकार से टक्कर ले सकता था, मेरा तो खयाल है कि टूटी हालत में भी उन्हें किसी राजा महाराजा की पर्यङ्कसेविका हरगिज नहीं बना सकता था। जब लोग लक्ष्मी बाई जैसी आचरण व्यवहार शुद्ध, कसरत कवायद की पटु, तेजस्विनी नारी पर भी कलंक लगाने से नहीं चूकते, तो बेचारी हज़रतमहल के साथ तो 'जनेखानगी' शब्द ही जुड़ा हुआ है।

हम लोग भारत और नेपाल की सीमा पर पहुँच गये। गुरखे सिपाही ने रोका। श्री महेश्वरबख्श सिंह ने कहा : "बागीश्वरी के दर्शन करने जा रहें हैं।"

फिर आपत्ति नहीं की गई। सीमा पार कर गये किन्तु अभी तक प्राकृतिक दृश्य बोली-बानी, चेहरे मोहरे अवधी ही हैं। बागीश्वरी के दर्शन किये। मूर्ति चबूतकेरे अन्दर है जो सवा गज लाल तूल, सवा रुपया और जाने क्या क्या अल्लम.

गल्लम चढ़ावा चढ़ाने के बाद ही देखने को मिल सकती हैं। मैंने उस स्थल पर जाकर बागीश्वरी को ध्यान में देख लिया; पुजारी के सौदे की वस्तु, पत्थर को देख कर क्या करता ? मन्दिर के सामने एक बड़ा तालाब है बीच में थोड़ी दूर तक पुल बना कर सर्प डमरू धारी शिव की मूर्ति खड़ी है। मूर्ति संगमरमर की कदे-आदम है और अच्छी है।

नेपालगंज में पेड़े बहुत अच्छे मिलते हैं। मिठाई की प्रशंसा सुन कर मुझसे चखे बगैर रहा नहीं जाता। खैर, ढौंढ़े गाँव की तरफ चले। महेश्वरबख्श सिंह महोदय बोले : "हमारा भी क़िस्सा नागर साहब लिख लीजिए।"

उन्होंने लिखवाया : "राजा जोतसिंह के सुपुत्र राजा महीपत सिंह और सुपौत्र दुनियापत सिंह चर्दा नरेश थे। वे जनवार ठाकुर थे। इनका ननिहाल विसेन ठाकुरों मुन्नूसिंह, प्रकाशसिंह, चन्दनसिंह के यहाँ लोढ़ियाघाटा ज़िला गौंडा में था। थे लोग तीज लेकर चर्दा आये थे। उस समय यहाँ जंग की धूम थी। ये तीनों भाई बड़े वीर थे; अपने रिश्तेदारों पर संकट आया देख वहीं ठहर गये। राजा साहब ने तीनों भाइयों को मस्जिदिया क़िला, जो जंगल में रुपयिडिहा सरहद नेपाल पर है, वहाँ इनकी तैनाती कर दी। तीनों भाई वहीं शहीद हो गये। सन् सत्तावन के बाद जब जोतसिंह ने बन्दीगृह से छुट्टी पाई और ब्रिटिश सरकार से कुछ मौज़े पाये, तो हम लोगों यानी मुन्नूसिंह, प्रकाशसिंह और चन्दनसिंह के बालबच्चों को तीन गाँव माफ़ी में दिये और यहाँ बुला लिया। तिकुरी, भवनियापुर और बिजुली तब से हमारे वंशवालों के पास हैं। जैसे जैसे परिवार बढ़ा वैसे वैसे राजा चर्दा और महा-राजा बलरामपुर की ओर से हमारी परवरिश भी बढ़ी।

"बनकुटी में क़त्ले आम हुआ। रफ़ीखां ठेकेदार के पुरखे राजा जोत सिंह की रियासत के नायब थे। छोटे छोटे बच्चों की बहुत सी कब्रें वहां हैं। माताओं के स्तन काट लिये, बड़ा जुलुम किया प्रजा पर।"

विद्रोह दबाने के लिये जाते हुए तो अंग्रेजों ने उन्हीं गाँवों की, जिन पर विद्रोही झण्डे थे, या जहां सामना हुआ, तबाही की; परन्तु क्रान्ति दबा कर लौटती हुई अंग्रेजी सेनायें जिस मार्ग से गुज़री हैं वहां के गाँवों, क़स्बों का बिजन तो बड़ा ही रोमांचकारी है। अंग्रेजों ने अमानुपिकता की हद करदी। बनकुटी का हत्याकाण्ड उसी की कहानी है।

ढ़ौंढ़े गांव नेपालगंज—नेपालराज

सन् '५७ के वीर चर्दा नरेश राजा जोतसिंह के पुत्र लगभग ८० वर्ष की आयु वाले

भूतपूर्व राजा शिवराज सिंह यहाँ रहते हैं यह जानकर हम आये हैं। यहाँ तक लोगों की बोली बानी अवधी, वातवरण भी वैसा ही है। वृक्षों के वैभव से समृद्ध, कहीं हरे भरे, कहीं (और अधिकतर) वर्षाकाल के स्वागत में मिट्टी खुदे खेतों वाले, अन्तरिक्ष से लगे हुए गड़ी परात जैसे मैदान...सब कुछ अभी तक चिर-परिचित हैं। कहीं कुछ एक गोरखे चेहरे देखने को मिल जाते हैं, जैसे क़स्वे नेपाल गंज में देखने को मिल गये थे। बड़े ही ऊबड़-खाबड़ मार्ग से गाड़ी रामराम करके यहां पहुँची है। गाँव में प्रवेश किया, पक्के मकान की कल्पना करते हुए आगे आये एक गली में पहुँच गये। वहां एक व्यक्ति ने बतलाया, "पाछे मुंड़िकै फिर हुआँ वइसी जायो। बाँई लंग वहैं राजा साहब केरि कोठी आय।"

पहुँच गये। राजा साहब की कोठी से पहले एक बड़ा सा, ईंटों का मकान देखा, समझा यही होगी, परन्तु वह किसी मुसलमान किसान का घर था। उसके सामने ही दाहिने हाथ पर आम के पेड़ों की पाँत शुरू हो जाती है। धरती भी कुछ उठी हुई है। आम के पेड़ों के साथ ही पथ मुड़ जाता है। दाहिने हाथ पर एक दुमंजिला खपरैल का मकान है जिसकी एक मंजिला चहार दीवारी वहुत दूर तक चली गई है। दुमंज़िले छोटे से पक्की ईंटों के बने मिट्टी पुते भवन से सटी हुई चहार दीवारी जहां से आरम्भ होती है, वहीं से बाहर का बरामदा भी आरम्भ होता है। इमारत के पास मिट्टी के ढेर पर दो बकरी के मेमने सो रहे हैं। बरामदे में द्वार के अगल बगल दो बैल पड़े हैं, बकरी बँधी है। बरामदे के बाहर दरवाज़े के सामने एक तखत पड़ा है। पास ही पशु शाला है, कई गाय बैल बँधे हैं, गोप सेवा कर रहे हैं। सामने इमली का वृक्ष है। इमारत के दाहिने ओर बने बाड़े में कुछ झोपड़ियां, एक ताज़ी बनी, सूखती हुई भी दिखाई दे रही है; अद्धे, लढ़ियां खड़ी हैं। यही सब मिला कर राजा साहब की कोठी कहलाती है। कोठी के पूर्व में लगभग दो मील मैदान दिखलाई देता है। उसके बाद जंगल आरम्भ होता है, जो आरम्भ में एक-डेढ़ मील तक तो छोटे जानवरों से भरा है, किन्तु आगे चलकर घना हो जाता है और वहां हर प्रकार के हिंस्र पशु रहते हैं।

हमारे साथ के एक साहब को राजा साहब चर्दा की कोठी देखकर कष्ट हुआ, बोले: "इसी को वह आदमी कोठी कह कर बतला रहा था।"

दूसरे साहब बोले: "व्यंग कर रहा होगा।"

मैं समझता हूँ कि इसमें व्यंग करने की कोई बात नहीं। गाँवों के जन समाज में राजा के प्रति अब भी एक उच्च भाव है। राजा भले ही बिगड़ जाय, मगर जहां

वह रहेंगे, महल या कोठी ही कहलायगा...उस बेचारे ने सहज भाव से ही कहा होगा, उसके कहने में व्यंग का लटका मैंने तो नहीं पाया था। एक दूसरी बात भी है; राजाओं के रहन-सहन को लेकर हम शहर वालों या कुछ दिनों पूर्व के ताल्लुकेदार राजा महराजाओं की रियासतों में रहने वाले लोगों को बड़ी भ्रान्तियां हो गई हैं। ये सामान्त राजे ऐसे ही मिट्टी के महलों और गढ़ियों में रहते थे। इनके पास धन की शक्ति गड़न्त होती थी और उसके द्वारा जन की शक्ति उजागर होती थी। रहन-सहन में वैभव का प्रदर्शन नहीं होता था। घने जंगलों में मिट्टी की गढ़ी और उसके अन्दर मिट्टी के ही महल दुमहले होते थे।

यह सब तो है, मगर जिस काम के लिये आया हूँ उसमें निराशा ही हाथ लगी। यहां आकर पता चला, राजा साहब तो कल रात ही को दुविधापुर, भारतीय सीमा में चले गये। हमारे इस चर्दा वाले पुरखे ने खूब छकाया। खैर।

राजा साहब के बड़े पौत्र कुँअर हरनाम सिंह बाईस चौबीस के आयुष्मान् हैं। बड़े सत्कार करने वाले हैं। हमारे साथ भोजन बँधा था। सिंह महोदय अपने घर से पराठे, आलू का साग और मेरे लिए मिर्च का अचार भी लेकर चले थे; परन्तु कुँवर जी का आग्रह प्रबल था, कहा कि कच्ची तैयार है, पक्की में हम थोड़े समय की माफ़ी चाहेंगे, मगर आये हैं तो भोजन करना पड़ेगा। हमने देखा, माने बिना मुक्ति नहीं और कच्ची याने दाल भात के नाम से हम ललचा भी उठे। उन्होंने फिर पूछा, "अन्दर चलियेगा या—?"

हमारी मण्डली की राय हुई कि यहीं इमली तले आ जाय। कच्चा खाना रसोई के बाहर नहीं जाता, मगर वर्षों से हमारे लिये तो जाने ही लगा है। थालियां आने पर हमारी मण्डली के एक सज्जन ने कुँअर जी के कार्यकर्ता (महराज) से कहा: "तुमका तौ यू बहुत बुरा लागति होई, कि खाटै पर बइठे कच्ची खाय रहे हैं?"

महराज बोला: "हमका काहे बुरा लागी। अरे, एक तुमहे ध्वारै हौ, आधी दुनिया खाति है, तुम्हरे 'गौरमेन्ट आफ इण्डिया' मा जइस चलन चलाय दीन्हगा तइसै चलिगा औ हियौं चलिगा।"

थालियां आने के साथ ही कुँअर जी प्रबंध देखने आये और मुझ से कहा: "हमारे पास हमारे वंश के कुछ काग़ज़ हैं। हमारे बाबा ने और पुराने लोगों ने मिलकर एक पण्डित जी से सब हिस्ट्री लिखाई थी..."

मैंने उत्सुकता से पूछा: "सत्तावनी क्रान्ति से सम्बधित?"

बोले : "हां।"

मैं प्रसन्न हो गया। शिवराज सिंह जी से भेंट न होने पर भी उनके पिता के इतिहास से भेंट हो जायगी, आना अकारथ नहीं जायगा।

राजा साहब ने हाथ के बने पुराने चिकने काग़ज़ पर जन्मपत्री-नुमा अपने घराने का इतिहास लिखाया था। हिन्दी की लिखावट निब की, शैली बीसवीं सदी की—'भारत में अंग्रेज़ी राज' की शैली से मिलती जुलती सी है। कुँअर जी दोनों ओर से फटा हुआ केवल उतना ही अंश लाये, जितना उनके पुरखा और सत्तावनी क्रान्ति से सम्बन्धित था। विवरण इस प्रकार है—

"सन् १८४६ ई० से महाराज महीपत सिंह के स्वर्गवास के पश्चात् वीर राजा जगजोतसिंह के हाथ में राज्य की बागडोर आई। उनके शासन के दस ग्यारह वर्ष बाद देश भर में विद्रोह फैला। राजा जगजोतसिंह को भी इसमें भाग लेना पड़ा क्योंकि व्यापार के लिये आये हुये अंग्रेज़ हमारे देश की जनता को, यहां तक कि नवाब, राजा, महाराजाओं तक को अपमानित कर रहे थे और अत्याचार कर रहे थे। सन् '५७ के संगठन में इन्होंने भाग लिया और बाग़ी घोषित हुए। पूज्य नानाराव पेशवा ने इनके क़िले में आश्रय लिया और राजा जगजोतसिंह ने अन्त तक उनकी रक्षा की। अंगरेज़ों ने उस समय उन्हें बड़ा लालच दिया और कहा कि पूज्य नानाराव पेशवा को हमारे हवाले कर दो और इसके एवज़ में हम आप को बहराइच ज़िले का काफ़ी इलाक़ा देंगे; राजा जगजोतसिंह ने अंग्रेज़ों का प्रस्ताव ठुकरा दिया। इस पर अंग्रेज़ों ने चर्दा पर हमला किया। राजा जगजोतसिंह ने नाना साहब को अपने बहनोई राजा देवीबख्शसिंह की संरक्षता में सुरंगों के रास्ते गुरखाली भेज दिया। स्वयं लड़े; एक तोप और कुछ सिपाहियों के सहारे तीन दिनों तक अंग्रेज़ों से टक्कर ली। चौथे दिन क़िले के आसपास देसी दारू डाल कर आग लगा दी गई। राजा अपने परिवार और यथा सम्भव धनराशि को लेकर सुरंग की राह भागे और तराई (दादरा) मस्जिदिया के जंगल में स्थित अपने क़िले में आये। चर्दा छोड़ने पर राजा जगजोतसिंह ने प्रतिज्ञा की कि जब तक बदला नहीं ले लेंगे किले में वापस नहीं आयेंगे। और फिर वे चर्दा कभी न गये।

"अंग्रेज़ों ने मस्जिदिया पर भी आक्रमण किया। वहां से भी इन्हें भागना पड़ा। फिर ये नानपारा तहसील में नानपारा से पश्चिमोत्तर कोने पर जंगल के किनारे अपने बरगदहा के क़िले में गये, वहां भी इनका पीछा किया गया। उन्होंने संकट झेलना स्वीकार किया, पर अँग्रेज़ों के आगे सिर न झुकाया, बराबर यथाशक्ति

मुकाबला किया पर बाद में हर तरह से हताश होकर नेपाल चले आये। महाराजा ने उन्हें शरण दी, कुछ मौज़े दिये। महाराणा नेपाल ने लिखा-पढ़ी की। दिल्ली दरबार होने से पहले जब लार्ड हेस्टिंग्ज (हार्डिंज ?) को मालूम हुआ कि एक सत्तावनी वीर नेपाल में जीवित है तो देखने की उत्सुकता प्रकट की। महाराणा से कहा कि अपने साथ राजा जगजोतसिंह को भी अवश्य लाइये। इनको बाग़ी कहलाने से माफ़ी मिली। ये गये; बड़ा स्वागत हुआ। चर्दा बलरामपुर में मिलाया जा चुका था, पर इन्हें आज्ञा हुई कि क़िले में अपनी धन सम्पत्ति खोद सकते हैं। पर राजा जगजोतसिंह ने कहा कि मैं प्रण कर चुका हूँ, बदला पूरा हुए बिना चर्दा के क़िले में पाँव नहीं रक्खूँगा। जब ये दमखम देखे तो वायसराय सशंकित हुआ। पुनः विद्रोह न करें इसलिये आदेश दिया कि किसी स्थान पर तीन दिनों से अधिक न ठहरें तथा दस आदमियों से अधिक कभी अपने आस पास न बटोरें। बाद में अंग्रेज़ों ने एक मौज़ा रामपुर मलावां तहसील जिला बहराइच में बतौर माफ़ी प्रदान किया।"

हम लोग ढौंढ़े गाँव से चल दिये। कुँअर हरनाम सिंह साथ आये। दुबिधापुर हमारे मार्ग से बहुत दूर नहीं था, इसलिये वहां जाना और वृद्ध भूतपूर्व नरेश से मिलना उचित समझा।

दुबिधापुर

धरती तो न बदली किन्तु दो राज्यों की सीमा आरपार कर हम पुनः नेपाल से भारत में आ गये। दुबिधापुर रुपयिडिहा के पास है। खेतों के किनारे-किनारे लम्बी गैल पार कर हम राजा साहब के पक्के चेहरे वाले कच्चे मकान पर पहुँच गये। यहां का वैभव ढौंढ़े गाँव से भी दबता हुआ था।

अन्दर चबूतरे के पास कच्ची मिट्टी से मकान की मरम्मत चल रही थी। राजा साहब और कुँअर महाराजसिंह बरामदे में बैठे हुए थे। राजासाहब की आयु लगभग सतत्तर-अठहत्तर वर्ष की होगी। चेहरे और हाथों पर झुर्रियों और लकीरों की नुमाइश हो रही थी। सफेद मूँछें जो कभी जरूर तिलोई जाती होंगी, अब भी दोनों सिरों पर चढ़ी हुई थीं। जैसा कि पहले ही ज्ञात हो चुका है कि राजा साहब सत्तावनी शूर राजा जगजोतसिंह के पुत्र हैं।

मैने पूछा: "सुना है कि आपके पिता जी बलभद्रसिंह चहलारी के साथ नवाबगंज बाराबंकी में लड़े थे।"

राजा साहब थकी हुई आवाज़ में धीरे-धीरे बोले: "नहीं, लड़ाई हमारे यहां हुई ।"

कुँअर महाराज सिंह ने कहा : "बाराबंकी ज़िले में कहीं 'कानफ्रेंस' तो जरूर हुई थी, उसमें हमारे बाबा गये थे पर लड़ने नहीं गये । उस 'कानफ्रेन्स' में चहलारी, चर्दा, गोंडा, बलरामपुर, इकौना एकत्र भये रहे । पास भया कि अंग्रेज़ों से लड़ना तो चाहिये ही, परन्तु हममें से किसी एक को अंग्रेज की ओर भी रहना चाहिये जिससे कि अगर हमारी हार हो जाय या समर में खेत रहें तो हमारे बच्चों की परवरिश करने वाला भी कोई रहे । बलरामपुर रियासत उस समय छोटी थी उनसे अंग्रेज़ों का पच्छ लेने के लिए कहा गया । हमारे पास एक कागज़ था जिसमें बाराबंकी ज़िले की कानफ्रेन्स का हवाला था । वह दरसल महराज दिग्बिजै सिंह के हाथ की चिट्ठी रही कि हम अँग्रेज़ों की तरफ रहेंगे और जो आप लोग हारे तो आप के बाल बच्चों की परवरिश करेंगे । यह कागद हमने उनके ट्यूटर मिस्टर .... (अँग्रेज़ का नाम मुझ से छूट गया) को दिया था । उस कागद की एवज में हमारी गुजारे की रकम भी बढ़ाई गई थी । यह कानफ्रेन्स कानपुर मस्कर (मँसेकर : अंग्रेजों का कत्लेआम) के बाद भई रही । हमारे बाबा को फौज की कमाण्डिंग का अच्छा ज्ञान था; टुकड़ियां अलग-अलग लड़ते देखीं तो कहा कि यों न जीत पायेंगे । फिर नानाराव पेशवा जी के कहने से चर्दा और गोंडा नरेशों की कमाण्ड में दो बार रेज़ीडेन्सी पर हमला भया । फिर लोगों ने नानाराव जी के कान भरना शुरू किया कि ये लोग आपको हटाकर बाद में खुद राज करेंगे। इससे पेशवा जी के मन में लकीर पड़ गई । तब चहलारी, चर्दा, बौंडी, गोंडा— ये लोग लौट आये । जब ये आ रहे थे, घाघरा पार अंग्रेज़ों को पता चल गया । लड़ाई हुई । वहां से चारों ओर ये लोग हार कर भागे; फिर आपस में ये लोग न मिल सके । राजा जगजोत सिंह चर्दा चले आये । इनके लखनऊ आने जाने की खबर अंग्रेज़ों को कानों कान न लगी । जब लखनऊ से बागी हारे तो नानाराव जी, बाला जी राव और ताँतिया टोपे जी हमारे यहां आये । अंग्रेज़ों को पता चल गया । अंग्रेज़ों ने लिखा कि बागियों को हमारे हाथ सौंप दो । हमारे बाबा ने कहा कि हम विश्वास-घात नहीं करेंगे । फिर अंग्रेजों ने लिखा कि अच्छा न सही, मगर इन्हें अपने सरण मत दो । बाबा बोले कि सरणागत को सरण देना छत्री का धरम है। इस पर अंग्रेजों ने चालीस हजार गोरों की सेना भेज दी । जब गोरे नानपारा से आगे बढ़ आये तब बागी लोग चर्दा से भागे । मस्जिदिया पर लड़ाई हुई ।—"

"कि चर्दा में हुई ?" महेश्वरबख्श सिंह ने टोका।

महाराज सिंह: "नहीं, मस्जिदिया में हुई।"

राजा साहब: "चर्दा में कुछ नहीं भया। होता क्या, चर्दा का किला तो ये लोग छोड़ गये थे। अंग्रेजों ने इसे उसी बखत तोड़ा या मस्जिदिया से लौट कर यह अब हमें याद नहीं।"

महाराज सिंह: "गोलीबार मस्जिदिया के किले में हुई। अंग्रेज घेरा डाल कर पड़े रहे। जब ये राशन से, और गोले बारूद से मोहताज होने लगे तब अंग्रेजों ने जोरदार चढ़ाई की। महागांव में बन्दूकों की करारी चाँदमारी हुई। किला खाली करने के बाद तो यह सब लोग पहाड़ों में चले गये थे। वहां नैपाल के महाराणा ने हमारे बाबा के साथ बड़ी दोस्ती दिखाई, माफ़ी का इलाका दिया। अंग्रेज सरकार से भी बड़ी लिखा पढ़ी की, बड़ा जोर दबाव डाला तब इन्हें हिन्दुस्तान में एक मौजा मिला।"

राजा साहब, बेगम हज़रत महल के इधर आने के सम्बन्ध में क्या आप कुछ बतला सकेंगे ?" मैंने पूछा।

राजा साहब बोले: "बेगम चर्दा भी आई थीं, पर ठहरी हमारे यहां नहीं थीं। हमारे यहां नानाराव पेशवा ठहरे थे। बेगम हमारे पिता महराज जोतसिंह को बहुत से कीमती हीरे देने लगीं। महराज ने कहा, हम सभी मुसीबत में हैं मदद करना हमारा धर्म है इसे ले लीजिये।"

शरबत पानी हुआ, दोहरा और पान आये मैंने राजा साहब से जनवार राजपूतों के सम्बन्ध में पूछा। राजा साहब ने बतलाया: "जनमेजय से हमारा निकास है। दोहे का प्रमाण है—

जनमेजय से तिन जनवारा।
अत्रि गोत्र जानै संसारा ॥

जनवार राजपूत पावागढ़, गुजरात, बरियार शाह से वहां आये। मुगल बादशाह के रिसालदार होकर भी आये। भरों की कौम बादशाह के कब्जे में नहीं आ रही थीं, उन्हें हराया। तब जागीरें मिलीं। मूल इकौना राज था। फिर उसमें से बलरामपुर, गँगवल और पयागपुर स्टेटें निकलीं; पयागपुर से चर्दा की ब्रांच निकली। इस तरह जनवारों की रियासतें बढ़ी।"

चलते समय राजा साहब ने अपना कांपता हुआ हाथ मेरे कन्धे पर रख कर कहा: "एक हजार रुपया साल की आमदनी रह गई है। हमारे यहां से पहले

देश की लड़ाई शुरू हुई और हमारा ही यह हाल है। अब मेरे बहुत दिन नहीं बचे हैं, पर जान बचने का कुछ उपाय तो होना चाहिये। जो कुछ सीर में मिलता है वह खर्च में चला जाता है। टैक्स बहुत लगता है। नैपालगंज वाली ज़मीन से आमदनी खास कुछ नहीं है, वहां जंगल ही जंगल है। बस यही दो सौ बीघा जो कुछ है सो है। कुछ हम लोगों का ख्याल भी होना चाहिए।"

मैंने पूछा : "आपके पिता को या आपको कहां-कहां से ग्राण्ट मिलती थी ?" कुँअर महराज सिंह ने बतलाया : "नानपारा से तीन सौ रुपया साल; पयागपुर से सौ रुपया की माफ़ी और पाँच सौ रुपया साल; बलरामपुर से बारह सौ रुपया साल और पांच रियायती गाँव; भिनगा से एक गाँव माफी; अँग्रेजों से रामपुर मलावां की जमींदारी और नेपाल राज से छः सौ बीघा माफी, एक मौजा ज़मीदारी का मिला जो अब तक चला आता है।"

सामन्तों और महाजनों में यह बड़ी अच्छी प्रथा देखी कि उनकी बिरादरी का कोई व्यक्ति यदि बिगड़ जाता है तो उसे उठाने के लिये चारों ओर से सहारा दिया जाता है।

यहां बाराबंकी ज़िले की राजनीतिक कान्फ्रेन्स के सम्बन्ध में एक नई बात यह मालूम हुई कि बलरामपुर वाले आपसी समझौते के कारण ही अंग्रेज़ों से मिले। मेरे खयाल में यह बात सम्भव है। लड़वैये अपने बाल बच्चों के लिये आपस में से किसी को इस प्रकार अलग कर देते होंगे।

उसी रात लखनऊ के लिए ट्रेन पर बैठ गया।

सीतापुर

२६ जून, बुधवार। सुबह की ट्रेन पकड़ी, दस बजे सीतापुर पहुँचा। पानी बरस रहा था, डर लगा कि कहीं दिन बेकार न बीते; पर इन्द्रदेव कृपालु सिद्ध हुए। चाय-पानी होने तक जिला सूचना अधिकारी श्रीवसन्तकुमार वर्मा ने सीतापुर की गदर से संबंधित दो-एक बातें सुना डालीं। एक स्थानीय व्यक्ति का नाम लेकर बतलाया कि मियां साहब का परिवार बहुत बदनाम है। क़ज़ियारे के लोग कहते हैं कि गदर में उनके पुरखे अंग्रेज़ों का साथ देने की बढ़ा-बढ़ी में स्वदेशबन्धुओं के इतने बड़े शत्रु हो गये कि उनके प्रबन्ध में विद्रोहियों को लिटा कर उन पर रोलर चलाया जाता था।

हे राम ! स्वार्थ में मनुष्य कितना अंधा और क्रूर हो जाया करता है।

दूसरा महल वालों का परिवार है। कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी अपनी सीतापुर यात्रा के समय महल में ठहरे थे। मितौली के राजा लोनेसिंह गदर के बाद यहीं नज़रबन्द किये गये थे। राजा लोनेसिंह पर अंग्रेज़ों के साथ दग़ाबाज़ी करने का आरोप था, उन्होंने आपद्काल में शरण लेने के हेतु आये हुए अंग्रेज़ों और उनकी स्त्रियों-बच्चों को कष्ट दिया तथा बन्दी बना कर लखनऊ भेजा।

ज़िले की दृष्टि से लोनेसिंह यद्यपि सीतापुर के न होकर खीरी ज़िले के थे, तथापि यहीं वे नज़र बन्द हुये, मुक़द्दमा चला और अण्डमान के लिये भेजे गये। जो अंगरेज़ इनके द्वारा बन्दी बनाकर भेजे गये थे, उनमें सीतापुर के कमिश्नर की लड़की भी थी।

यहां अंग्रेज़ों द्वारा लिखे गये गज़ेटियर के वर्णन को भी ध्यान में रख लेना उचित होगा।

सीतापुर छावनी में विद्रोह के प्रथम लक्षण २७ मई, १८५७ ई० को प्रकट हुए थे। उस दिन दो नंबर अवध पुलिस की खाली लाइन्स में बंदूकों का शोर हुआ। यद्यपि इस घटना को विशेष महत्व नहीं दिया गया, तथापि कमिश्नर क्रिश्चियन साहब ने सावधानी बरतते हुए अंग्रेज़ स्त्रियों और बच्चों को अपने बंगले में बुला लिया, और चार तोपें भी वहीं लगा लीं। २ जून को अवध इर्रेगुलर के जवानों ने सिर उठाया। बाज़ार से आटे के बोरे आये थे। सिपाहियों ने कहा कि इसमें उन्हें धर्म-भ्रष्ट करने के हेतु अपवित्र वस्तु मिलाई गई है। सिपाहियों का रुद्र रूप देखकर वह आटा उनके सामने ही नदी में प्रवाहित कर दिया गया। फिर भी सिपाहियों का क्रोध शान्त न हुआ, उसी दिन दोपहर को कुछ सिपाहियों ने सिविललाइन्स के बाग़ीचों में फलों की लूट मचाई। बड़ी मुश्किल से उन्हें क़ाबू में लाया गया। मुहम्मदी मल्लावां आदि से सैनिक-सहायता भी मँगाई गई। ३ जून को फ़ौजी जवानों की एक कंपनी ने खज़ाना लूटा तथा अपने गोरे अफ़सरों को गोली का निशाना बनाया। क्रिश्चियन साहब, उनकी पत्नी, सबसे छोटा बच्चा और उसकी धाय भागते समय नदी किनारे मार डाले गये। इनके अतिरिक्त और भी कई गोरे मारे गये। बहुत से अंग्रेज स्त्री-पुरुष बच कर भाग निकले। एक दल को रामकोट के जनवार राजा के यहां शरण मिली, वहां से २८ जून को वे लखनऊ पहुँच गये। कुछ स्त्री पुरुषों को एक गाँव में शरण मिली, जहाँ उन्हें दस महीनों तक छिपा रहना पड़ा; एक पार्टी जंगलों में लुकती-छिपती लखनऊ पहुँची। इसी प्रकार गोरे

स्त्री-पुरुषों के एक दल को मितौली के राजा लोनेसिंह ने अनिच्छा पूर्वक-शरण दी, शाहजहांपुर से भागे हुये स्त्री पुरुषों को भी वहीं शरण मिली; परन्तु बाद में यह लोग हथकड़ी-बेड़ी पहना कर लखनऊ भेज दिये गये, जहां उन्हें मार डाला गया।

सीतापुर ज़िले से अंग्रेज़ों का राज्य उठ गया। रामकोट के राजा तथा बिसवां के कायस्थ और सेठ ही अंग्रेज भक्त बने रहे; बाक़ी सब विद्रोही हो गये। तंबौर के बंदेहसन विद्रोहियों के बड़े नेता थे; महोली में आंग्ल-विरोधियों का शक्तिशाली दल था। ओयल तथा मितौली के राजाओं के संबंध में अंग्रेज़ यह तय नहीं कर पाते थे कि वे लोग उनके साथ हैं अथवा उनके विरोधियों के। महमूदाबाद के राजा नवाबअली खां ने पहले तो अंग्रेज़ों का साथ दिया, परन्तु बाद में वे भी उनके प्रबल शत्रु हो गये। चहलारी के रैकवारों ने भी अपने भिठौली और बौंडी के सजातीय नरेशों का साथ दिया। पूरा ज़िला 'बाग़ी' सिपाहियों की हलचल से भरा था, तथा शासन की बागडोर खैराबाद के नाज़िम बख्शी हरप्रसाद सम्हाले हुये थे।

मार्च सन् १८५८ में लखनऊ के पतन के बाद ही अंग्रेज़ इस ज़िले में प्रवेश कर सके।

११ अप्रैल को सर होपग्राण्ट ने इस ज़िले के बाड़ी नामक स्थान में प्रवेश किया, जहां मौलवी अहमदुल्ला शाह सेना सहित डटे हुये थे। सर होपग्राण्ट ने कुछ सफलता तो अवश्य प्राप्त की, परन्तु उसके पीठ घुमाते ही अंग्रेज़ों की विजय निष्फल हो गई क्योंकि मौलवी साहब और महमूदाबाद के राजा नवाब अलीखां अपने तीन हज़ार सिपाहियों के साथ, गज़ेटियर के शब्दों मे 'बिना दण्ड पाये ही निकल गये।' मौलवी साहब शाहजहांपुर की तरफ़ बढ़े और वहां से फिर अवध रणाङ्गन में प्रवेश किया। उस समय अंग्रेज़ सेनापति सर कॉलिन कैम्पबॅल मुहम्मदी में सेना सहित पड़ाव डालना चाहता था। मौलवी साहब के साथ उनकी स्वातंत्र्य-सेना ने ज़िले में आज़ादी का झण्डा कहीं गिरने नहीं दिया। मौलवी साहब की शर्मनाक हत्या के बाद भी उनकी प्रेरणा से जागा हुआ सीतापुर १८५८ ईस्वी की गर्मियों तक स्वाधीन रहा।

इस ओर अवध में क्रान्ति की सेनायें बेगम हज़रतमहल के अनुशासन में चल रही थीं। उनका हेड क्वार्टर उस समय बहराइच ज़िले बौंडी-गढ़ में था; रुइया के राजा नरपत सिंह, फ़ीरोज़शाह, राजा हरदत्तसिंह आदि उस समय वहीं थे। अवध के मरदाना राणा वेणीमाधव बख्श, गोंडा के आजानुबाहु राजा देवीबख्श सिंह, क्रान्ति-

की महाज्योति नाना साहब पेशवा और बाला साहब---सभी वहां पहुँचते रहते थे। दूर युद्ध क्षेत्रों में रहते हुए भी सत्तावनी क्रांति के महारथी बौंडी से बँधे हुए थे।

अक्टूबर '५८ में हरीचंद ६००० की सेना लेकर सीतापुर से सण्डीला की ओर चले। जर्नल बार्कर द्वारा परास्त हुये। सर टॉमस सीटन शाहजहाँपुर में थे जहां से वे मुहम्मदी तथा सीतापुर ज़िले की उत्तरी-पश्चिमी सीमा में प्रवेश करने का उचित अवसर ताकता हुआ, धमकियां दे रहा था। प्रधान सेनापति लार्ड क्लाइड का यह आदेश था कि अवसर साध कर यह सेना मुहम्मदी और औरंगाबाद होती हुई सीतापुर की ओर वढ़े तथा इस प्रकार बढ़ते हुए क्रान्ति-सेनाओं को घाघरा पार जाने पर बाध्य करे, जहां लार्ड क्लाइड का जाल पहले ही फैल चुका था। अक्टूबर में कॉलिन ट्रूप ने मितौली आदि को परास्त किया और फिर तो क्रमशः हथियारों, गोला बारूद संगठन आदि के अभाव में ८ नवंबर '५८ को सीतापुर का पतन मेंहदी के निकट हो गया।

सीतापुर के डिप्टी कमिश्नर श्री संतोषकुमार चौधरी ने मुझे बतलाया कि जहां आज 'प्लाईउड फॅक्टरी' है वह भूमि सौ वर्ष पहले कठिन युद्ध का मोर्चा बनी थी।

चौधरी महोदय ने मेरे लिये एक सुविधा और कर दी। खीरी ज़िले का मितौली ग्राम सीतापुर ज़िले से होकर अधिक सुगम और निकट है, उन्होंने सूचना अधिकारी को ज़िले से बाहर मितौली तक जाने का आदेश दिया। मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

सीतापुर मे डॉ० नवलबिहारी जी मिश्र के दर्शन करने की बड़ी साध थी। वे स्वनामधन्य समालोचक और विद्वान पण्डित कृष्णविहारीजी मिश्र के अनुज तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-प्राध्यापक बन्धुवर डॉ० व्रजकिशोरजी मिश्र के चाचा हैं। वे सीतापुर की हिन्दी सभा के प्राण तथा अपने क्षेत्र की पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री के जानकार एवं संग्रहकर्ता हैं। डाक्टर साहब की बड़ी प्रशंसा सुन रक्खी थी। मैंने वर्मा जी से उनके पास ले चलने को कहा।

डॉक्टर साहब की सेवा में पहुँचते ही हमारे बीच साक्षात् का अपरिचय समाप्त हो गया। वे आत्मीय गुरुजन की तरह मिले। डॉक्टर साहव नगर के प्रसिद्ध चिकित्सकों में से हैं, रोगियों से कम अवकाश मिलता है; पर ज्ञानार्जन की लगन ऐसी प्रवल है कि उसके लिये हर समय अवकाश निकाल लेते हैं। उनकी मेज़ की दराज़ों में अलग अलग फ़ाइलें हैं। किसी रोगी से नया मुहावरा अथवा किसी शब्द का

नवीन प्रयोग सुनते ही फ़ाइल में दर्ज कर लेते हैं। इसी प्रकार अवधी के शब्दों का कोश संचित किया है; पुरातात्विक जानकारी उनके पास ज़िले भर से इसी प्रकार आती है; प्राचीन ग्रंथों की पांडुलिपियां, प्राचीन काव्य ग्रंथ उन्होंने इसी लगन से इकट्ठा किये हैं, अवधी की लगभग चार सौ लोक कथायें लोगों से सुन कर लिखी हैं। डॉक्टर मरीज़ों का इलाज करते हैं और मरीज़ डॉक्टर का। देख कर बड़ी श्रद्धा होती है, प्रेरणा मिलती है।

डॉक्टर साहब से मिलने आये हुये पंडरिया के श्री गुरुप्रसाद दीक्षित ने मेरी झोली में एक सत्तावनी सूचना डाली :—

"धनापुर पंडरिया के सूबेदार मेजर जोधासिंह को वाजिदअली शाह (?) का फ़रमान मिला बुटवल जाने के लिये। अंग्रेज़ों की सेना का सामना था। उन्होंने शत्रु से समर किया और गोरों के छक्के छुड़ाये। लड़ते-लड़ते उनके सिपाही थक गये थे पर इतने में एक वाहरी अंग्रेज़ी सेना और मदद को आ गई। जोधासिंह को गोली लगी।

"जोधासिंह के बड़े भाई से बेगम ने कहा कि हमें नैपाल ले चलो। बेगम के पैरों से खून बहता था। बिरजीसकदर गोदी में थे। बेगम पंडरिया आईं, वहाँ पता लगा कि दीक्षित के घर अंग्रेज आये थे तो वहां से भागीं। नैपाल चलीं। रास्ता में चहलारी पड़ी। राजा बलभद्रसिंह का नाम बेगम ने सुन रक्खा था, उनसे मदद माँगी। बलभद्रसिंह ने मदद सेना स्वीकार किया।

"चहलारी के राजा का खास नाऊ रामचरन था। उसका लड़का पहले तो भागा पर फिर चुनौती पाकर बहादुर की तरह लड़ा और जूझ गया।

"बेगम ने हवलदार गंगाबख्श को भाला इनाम और साथ में पत्र भी लिखकर दिया कि इसने मुझे हिफ़ाज़त से हद्द पार करा दी। बाद में दीक्षित भी धनापुर लौटकर आये और आते ही अंग्रेज़ों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया।"

डॉक्टर साहब ने मेरे साथ मितौली तक चलने का वचन दिया, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मितौली

मितौली के ब्लॉक डेवलपमेण्ट अफ़सर ने राजा लोने सिंह की वातों के जानकार व्यक्तियों को पंचायत भवन में बुलवा लिया।

मुहम्मद सैकलन साहब ने सुनाया :—

"इस इलाक़े में शाही-सरकार की तरफ़ से दो ओहदेदार यहाँ रहा करते थे। एक तो सैयद मीरनजान चकलेदार खीरी जिनके इस ज़िले के तमाम रजवाड़ों से ताल्लुक़ात थे—ओयल, कैमारा, महेवा सभी से गोया संबंध था। और दूसरे शख्स थे ज़हूरुलहसन जो बहैसियत जासूस के यहाँ शाही वकील बनकर रहते थे। जितने ज़मींदार थे, सबके यहां जाते थे।

"औरंगाबाद में अंग्रेज़ों से लड़ाई हुई। अंग्रेज़ मारे गये। उनकी कब्र अब तक मौजूद हैं। इस इलाक़े में वहीं ग़दर हुआ। वहाँ से पाँच-छः अंग्रेज़ और एक औरत भाग कर यहाँ आई। ग़ालिबन कप्तान ओर की बीवी थी। राजा लोने सिंह ने अपने यहां बुला लिया। ख़ातिर की।

"ग़दर शरू हो ही चुका था और ये माना जाना था कि अंग्रेज़ी राज उठ गया। उसी ज़माने में मुशी ज़हूरुलहसन का दौरा हुआ। उन्होंने राजा लोने सिंह से कहा कि आप ये क्या ग़ज़ब कर रहे हैं जो अंग्रेज़ों को छिपाये हैं, इन्हें लखनऊ दरबार भेज दीजिये। चुनांचे राजा ने भेज दिया।"

"क्या हथकड़ी बेड़ी डालकर भेजा था ?" मैंने पूछा।

"जी नहीं, हाथियों पर बिठला कर भेजा था, सुना है। उसके बाद यह बतलाया जाता है कि जब ये अटरिया के उधर निकल गये, तब यहां खबर आई कि बुरा हुआ, अंग्रेजी राज तो फिर क़ायम हो गया। मगर तब तक अंग्रेज़ क़ैदी लखनऊ भेजे और मारे जा चुके थे---सिर्फ़ औरत नहीं मारी गई।

"इस ख़ुशनूदी में लखनऊ से बाईस पार्चे का ख़िलअत आया और आधा इलाका औरंगाबाद देने का वादा किया गया।

"उसके बाद जब तसल्लुद हो गया, तो वो औरत जो बच गई थी, उसने लोने सिंह मुतअल्लिक़ मुख़बिरी की।"

मैंने पूछा : "खंजन नगर में लड़ाई कब हुई ?"

सैकलन साहब बोले : "खंजन नगर में लड़ाई नहीं हुई। खंजन नगर में जंगल था। जिसमें शिकार तो होता था। मगर लड़ाई का मौक़ा नहीं आ सकता था। चढ़ाई मितौली के ही क़िले पर हुई थी। राजा लोने सिंह को उम्मीद थी, कि कैमारा, महेवा, ओयल, रामपुर, मुडवारा, जलालपुर, कुटवारा वग़ैरह रजवाड़े जो उनके रिश्तेदार थे, उनकी मदद करेंगे, पर डर की वजह से किसी ने साथ न दिया। खुद राजा के भाई माधोसिंह ने भी मदद नहीं की, कह दिया कि हमारा

इन से कोई सम्बन्ध नहीं। बात असिल में ये रही कि बाग़ियोंपर इतनी सख्तियाँ की जाती थीं कि लोग डरते थे।

"इनके क़िले में सिर्फ़ दो या तीन गोले ही छोड़े गये थे, कि राजा की फ़ौज ने हाथ पैर छोड़ दिये। बस उसके बाद ही राजा गिरफ्तार हो गये। गिरफ्तार करके रंगून ले गये। गिरफ्तारी के बाद से राजा ने खाना-पीना, दातून करना वगैरह सब छोड़ दिया और जब कलकत्ते में उतारे गये, तो लाश ही निकली।

"उन्होंने हमारे दादा को पहले तो गढ़ी में ही मकान दिया था, फिर जेठ बदी ७ सन् १२४९ फ़स्ली को……गांव (पेन्सिल से लिखा गाँव का नाम घिस गया) दिया था।

"आदमी राजा लोने सिंह उम्दा थे मगर कंजूस थे। उनके मुतअल्लिक़ जो तहीरीरें मिली हैं उनसे ज़ाहिर होता है कि आदमी भले थे।

"गढ़ी के ऊपर दो क़ब्रें हैं जो कभी महल के अन्दर ही रही होंगी। क़ब्रें मुसलमानों की हैं। बाज यह कहते हैं कि कोई दो सूफी फ़क़ीर थे, जिन पर राजा लोने सिंह के पुरखों को बड़ी अक़ीदत (श्रद्धा) थी। बाज लोग यह कहते है कि राजा के पुरखों को राज क़ायम करने में दो सैयद भाइयों ने मदद दी थी इसलिये उनकी क़ब्रें गढ़ी में बनी। राजा लोने सिंह के कोई औलाद नहीं थी।"

राजा का इतिहास बतलाने वाले दूसरे व्यक्ति कचूरा निवासी सज्जन थे। उन्होंने अपना नाम, परिचय तथा राजा का हाल इस प्रकार लिखवाया: "मेरा नाम लिखिये, अवधेश्वर बख्श सिंह अवधेश' हरिब्रह्म गौड़ क्षत्रिय, भारद्वाज गोत्र, ऋग्वेद कात्यायनी शाखा, पीताम्बरी निशान। हम कचूरा, ज़िला सीतापुर के निवासी हैं। हमारा इतिहास यह है कि हमारे बुजरुग लोग गजनी से आये थे। अजमेर में ठहरे फिर नार कंजरी बंगाल आये वहां से पीपर गाँव दखलौर जिला सीतापुर आये। अब राजा का इतिहास लिखिये। राजा लोने सिंह की बुआ ठाकुर बरवण्ड सिंह कचूरा वाले को ब्याही थी। जब राजा लोने सिंह की गढ़ी लूटी गई तो कुछ सामान पुरखों की निसानी समझ के कचूरा पहुँचा दिया गया। यहां के खैर की लकड़ी के बड़े भारी-भारी मुग्दर वहां पहुँचाये गये। हमारे यहां राजा लोने सिंह के दिये हुए कुछ मोती हैं, जो उन्होंने हमारे पुरखों को दिये थे। राजा साहब यहां नहीं पकड़े गये, सीतापुर में पकड़े गये थे। टामसन साहब ने गिरफ्तार किया था। उनका फोटू कलकत्ते के अजावघर में टँगा है। और अभी जब १० मई आई थी तो साहब यहां सुतंत्रता संग्राम का जलसा किया था तौ हमने राजा लोने सिंह पर एक कविता सुनाई थी।"

कविता मैंने सुनी, पर नोट नहीं की।

श्री इन्दुपाल शुक्ल ने बतलाया : "राजा लोने सिंह का राज्य पश्चिम में मुहम्मदी के जूनियर हाई स्कूल तक समझिये; इधर उत्तर में भीरा और पालिया के बीच शारदा नदी तक था और दक्षिण में महोली तक।

"राजा लोने सिंह चार भाई थे---खंजन सिंह, लोने सिंह, भगवंत सिंह और माधो सिंह। भगवंत सिंह का खान्दान लिलसी में रहता है। लोने सिंह के एक लड़की थी जो ज़िला मैनपुरी में ब्याही गई थी। बाकी भगवंत सिंह के दो लड़के थे, और किसी भाई की सन्तान नहीं।

"महेवा के युद्ध में जो महेवा का सरदार था, उसका चित्र एक शिवाले में बना है। लोने सिंह राजा की लड़ाई का हाल आपको राजा साहब महेवा से प्राप्त हो सकैगा। एक प्राचीन पुस्तक 'बलभद्र विलास' है, उसमें भी उनका हाल लिखा है। राजा लोने सिंह ने गोलागोकरण नाथ में एक धर्मशाला बनवाई और एक बर्दाश्त॰ खाना। बर्दाश्तखाने में गरीबों को भोजन, जाड़े में जड़ावर इत्यादि बाँटी जाती थी। यह इमारतें गौरमेंट के पास हैं। पूर्व दिशा में भूलनपुर और वैल (ओयल) के बीच में जमुवारी नाले पर राजा लोनेसिंह ने एक पुल भी बनवाया। वहाँ के लोगों ने राजा की प्रशंसा में गीत भी बना रक्खे हैं। राजा साहब का सामान राजा साहब पुवायाँ के पास कुछ है। उनके कुछ कपड़े, रानी के कपड़े हम १० मई के जलसे के लिये, ठाकुर अहिबरन सिंह सेमरावां से लाये थे। अभी वह हमारे पास हैं। आप देखना चाहें तो मँगा दूं।"

वस्त्र मँगाये गये, देखे। कोट से अनुमान लगता है कि राजा लोने सिंह बहुत लम्बे न रहे होंगे, चौड़े अवश्य थे।

क़िले का टीला भी देखा। दो-चार दीवारें अब तक खड़ी हैं। एक बड़ी कोठरी के आकार की जगह पूजा गृह बतलाई गई। खेत में पाताल फोड़ इन्दारा है जो कभी क़िले की सीमा के अन्दर था। क़ब्रे पुरानी, मध्यकालीन ईटों की, हैं। उनके पास ही इमली का पुराना पेड़ है। ईटें, कंकड़, मिट्टी के बर्तनों के कत्तल दूर-दूर तक बिखरे पड़े हैं।

"ई सब ईटन से पटो है।" श्री इन्दुपाल शुक्ल बोले। 'ईटन ते पाटा है' के बजाय पटो है सुन कर लगा कि बोली का क्षेत्र बदल गया। अवध में बोली के तीन प्रमुख रूप हैं, गँजरिहा, बँगरिहा, बैसवारी। 'पटो है' जहां तक मेरा ख्याल है, गंजरिहा और बंगरिहा दोनों बोलियों में समान रूप से प्रयुक्त हो सकता है।

खीरी-लखीमपुर बांगर का क्षेत्र है। गांजर और बांगर के बीच का क्षेत्र पंडेहर कहलाता है। सेमरावां मे ठाकुर शिवराज बख्श सिंह से मिला। आप लोने सिंह के परिवार के हैं। ठाकुर साहब ने बतलाया।

"इतिहास लोने सिंह का यहै रहै कि गदर मा बगावत हुइ गई रहै।" उन्होंने बतलाया कि वाजिदअली शाह की ओर से मोहम्मदी में चकलेदार रहते थे, वहां कुछ अंग्रेज़ भी नौकर थे, ज़हूरहसन वकील थे। मोहकमसिंह बड़ा गाँव के राजा ने दबा लिया। उसपर शिवराज बख्शसिंह जी के बाबा ने दावा किया कि यह इलाका छुटभइयों का है इस लिये हमें मिलना चाहिये। राजा लोनेसिंह जी ने उज्रदारी की, ज़हूरहसन (ज़हूरुलहसन) वकील लोनेसिंह की उज्रदारी करने मोहम्मदी गया। तभी ग़दर का पैगाम मिला। 'कप्तान ओर' तथा उसके अज़ीज़ औरत मर्द थे। ज़हूरहसन सबको मितौली ले आया और मितौली तीर 'पेरा गिरन्ट' में छिपा कर बँगले बनवा दिये। वहां अंग्रेज़ छिप कर रहे। बाद में जब गदर यहां हुआ तब यह लखनऊ भेजे गये। जहूरुल हसन के पास अंग्रेजों की पन्द्रह सौ मोहरें थीं। उसी के लोभ में उसने राजा से कहकर गोरों को लखनऊ भिजवाया। "उइ बेधर्मी कहिसि नाहीं कि तुम्हारी रियासति जब्त हुइ जइहै।" ज़हूरहसन की सलाह के अनुसार राजा ने गोरों को काँटेदार बेड़ी डाल कर दो तोपों और दो सौ आदमियों के साथ लखनऊ भेज दिया।" जब लोहिया पुल पर पहुँचे तउ बागी अँगरेजन का मारिन। याक मेम भागिगै, एकु अँगरेजु लइगा। जब तसल्लुद भा तब मितौली पर धावा किहिनि, वैभ सब हालु बताइसि सो धावा भवा, फ़ौज या कठिनै नदी के पार-पार आई, महोली मा पुलु उतरी।"

उस समय मितौली मे सभी सामंत नेता एकत्र थे। रुइया वाले नरपत सिंह, गुलाबसिंह, नजीबाबाद के फ़ीरोजशाह, लखनऊ के बिरजीस क़दर और उनकी मां 'नैपालिन बेगम' साथ आईं।

शिवराज बख्श जी से मैंने पूछा: "ये नैपालिन बेगम कौन थीं ?"

"वाजिदअली शाह ढेर बेगमैं किहिनि, उनमा यह नैपालिनिउ रहै। वह कहिस कि सहजादा औ हमका हमरे मइके मां छोड़ि आव।" उस समय अंग्रेज़ों ने इन पर धावा बोल दिया था। राजा की बाईस तोपें तोड़ डालीं थीं, पेड़ों की आड़ से बम फेंक रहे थे। राजा लोने सिंह ने सब सेकहा कि आप लोग मुक़बला करें, हम बिरजीस क़दर और नैपालिन को नैपाल छोड़ आयें। एक हाथी पर बैठाकर राजा उन्हें कौड़ियाला नदी के पार उतार आये। लौटने पर ओयल के राजा अनिरुद्धसिंह ने

उन्हें मार्ग में ही बतलाया कि मितौली हार गई, अब वहां न जाना । "उनसे मालूम भा कि फौज सीतापुर मां है । फौज का मालिक बालमीन-साहब रहै, महराज उनते जाय कै मिले । ऊ काहिस अच्छा ठहरो । ठहराय दिहिसि । फिर मुकदमा भा, काले पानी की सजा भई । मेम बयान दीन्हिसि, रानी बुलाई गईं । रानी कहिनि हम न जाब तब सीता लौंडी का पहिराय उढ़ाय कै भेजि दीनगा ।" लोने सिंह की पत्नी को डेढ़ सौ रुपया महीना गुज़ारा मिला ।

राजा लोने सिंह को कलकत्ते पहुँचाने के लिये बहली पर बिठला कर इलाहाबाद तक ले गये, बुधुआ खानसामा साथ गया था । वहां से अगिनबोट पर कलकत्ते भेजे गये ।

उसके बाद रियासत ज़ब्त हो गई । 'कुसैला' की इब्तिदाई मिसिल बन्दोबस्त सरसरी में इनकी फ़ाइल है । उसका नम्बर शायद ८२।८३ है ।

"मेम जो मुखबरी किहिसि"—उसे मितौली-राज के सात सौ गाँव मिले । उसने तीन लाख रुपए में अपना इलाका राजा अमीर हसन महमूदाबाद को बेच दिया और विलायत चली गई ।

मेरे यह पूछने पर कि क्या लोने सिंह सीतापुर में महल में रक्खे गये थे, शिवराज बख्श जी ने कहा कि राजा महल में नहीं रहे, तम्बू लगवा कर रक्खे गये थे, मुक़दमा दूसरे दिन हुआ ।

राजा पर रचे गये लोककाव्य के सम्बन्ध में पूछने पर ठाकुर साहब ने कहा कि उन्होंने नहीं सुना ।

"राजा लोने सिंह लड़े थोरैं । उइ तौ चले गये ।"—फिर भला उन पर काव्य क्यों रचे जाते ? राजा लोनेसिंह के सम्बन्ध में, मैंने लखनऊ के दैनिक 'स्वतंत्र भारत' में प्रकाशित श्रीराम सेवक पाण्डेय का एक लेख भी पढ़ा था । लोनेसिंह ने अपना राज बढ़ाने के लिये पड़ोसी सामन्तों से छीना-झपटी, मार-काट बहुत की । महेवा के एक सौ सोलह गाँव छीन लिये; ओयल राजा से अटवापुर, शंकरपुर छीना मुन्नू सिंह का राज छीन लिया, कुकेरा मैलानी का इलाक़ा जीत कर दबा लिया । यह देश का दुर्भाग्य रहा कि क्षत्रिय सामन्त आपस मे ही वीरता दिखलाते और सगोत्रियों के सर काट कर रणपूजते रहे । शिवराजबख्श सिंह जी के तथा गज़ेटियर के विवरणों से हमें लोनेसिंह का चरित्र देखने को मिल जाता है । अंगरेज़ों के अनुसार राजा ने उन्हें अनिच्छा से शरण दी और उन के साथ रूखा बर्ताव बरता । शिवराजबख्श जी के कथनानुसार मुंशी ज़हूरुलहसन के बहकाने पर उन्होंने अंग्रेज़ों को लखनऊ दरबार के हवाले कर दिया ।

राजा लोनेसिंह कायर था, वह निश्चय ही न कर सका कि जीत किसकी होगी। इसीलिये उसने अंग्रेज़ों को शरण तो दी, मगर अपनी घबराहट के कारण उनके साथ अच्छा व्यवहार रखने में चूक गया। मान लीजिये कि वे अंग्रेज़ अन्त तक उसके यहां सुरक्षित रहते तब भी वे राजा लोनेसिंह के प्रति विशेष कृतज्ञता अनुभव न करते। जब तक देशी सेनायें चढ़ती पर रहतीं तब तक वह अंग्रेज़ों को अपने एहसान से धौंस-धौंस कर तुच्छ बनाता ही रहता और अंग्रेज़ों के अच्छे दिन आने पर वह फिर उनकी खुशामद करने लगता। ऐसे चरित्र का कोई आदर नहीं करता। लोनेसिंह अपने अनिश्चय के कारण बीच ही में फँस गया। मुहम्मद सैकलन साहब के वक्तव्य से भी यही बात स्पष्ट होती है कि पहले तो यह समझा जाता था कि अंग्रेज़ों का राज उठ गया, इसलिये ज़हूरुलहसन के बहकावे में आकर अंग्रेज़ों को कैद करवा दिया। बाद में जब अंग्रेज "अटरिया के उधर निकल गये तब यहां खब्र आई कि बुरा हुआ, कि अंग्रेज़ी हकूमत फिर से क़ायम हो गई।" आस-पास सबसे दुश्मनी किये बैठे थे। और यदि पंडित रामसेवक जी पाण्डेय की बात सच है तो पुवायाँ नरेश, राजा के साढ़ू ने कपट कर झूठा विश्वास दिला कर अंग्रेज़ों के सामने लोनेसिंह द्वारा आत्म समर्पण करा दिया। इससे स्पष्ट है कि अपने साढ़ू से राजा के रिश्ते अन्दर ही अन्दर अच्छे न रहे होंगे। यों पुवायाँ के राजा जगन्नाथ सिंह ने सत्तावन में अपनी अंग्रेज़ भक्ति और देश द्रोह का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया था। आप ही वो महाप्रभु हैं जिन्होंने मौलवी अहमदुल्ला शाह को अपने यहां बुला, धोका देकर मरवा डाला। आपा-धापी और संकीर्ण स्वार्थ वाला अहंकार अच्छा नहीं होता। देश चौपट हो जाते हैं, व्यक्ति मिट्टी में मिल जाते हैं। लोनेसिंह और उनके साढ़ू भाई जगन्नाथ सिंह दोनो ही व्यक्ति १८५७ की पराजय के प्रतीक चरित्र हैं।

बड़ा गाँव बाज़ार बीच ही में पड़ता था। मैंने सोचा लोनेसिंह के प्रति अपने मत की मोहरे-इलाही लगाने से पहले रामसेवक जी पाण्डेय से भी भेंट कर लूं। डॉक्टर साहब ने बतलाया कि वे अच्छे व्यक्ति हैं।

बड़ा गाँव पहुँचे। अच्छा क़स्बा है। किसी के यहाँ विवाह था; दरवाज़े पर झण्डियां लगी थीं, चहल-पहल थी और लाउड स्पीकर पर मिस लता मंगेशकर आस-पास के वायु मंडल को अपने स्वर से आन्दोलित कर रही थीं। गाँव हो या शहर, फ़िल्मी गीतों के बग़ैर अब जलसे नहीं हो सकते। वैसे बड़ा गाँव का महत्व प्राचीन है, यहां वट वृक्ष के पास एक अति प्राचीन मंदिर के ध्वंसावशेष, टूटी

मूर्तियाँ पड़ी हैं। गुप्त काल की नक्क़ाशी वाली ईंटें नज़र आती हैं, पकाई हुई मिट्टी की मूर्तियाँ भी हैं और पत्थर की खण्डित मूर्तियों के नमूने भी उम्दा हैं।

पंडित रामसेवक पाण्डेय अच्छे आदमी हैं। दुबले-पतले, हीरक जयंती के आस-पास की आयु वाले, मधुरभाषी और भावुक हैं। डाक्टर साहब का उनसे घनिष्ठ परिचय है। पुरानी पोथियों का पता लगाने में पाण्डेय जी डाक्टर साहब के सहायक जान पड़े। पाण्डेय जी ने संक्षेप में कुछ बातें बतलाईं, कहा, "स्वतंत्र भारत में लेख छप चुका है, कहिये तो आपको प्रति दे दूँ।"

मैंने कहा वह लेख मैं पढ़ चुका हूँ। पाण्डेय जी बोले : "राजा लोनेसिंह ने बेगम को बड़ी सहायता दी। एक समय में उनकी राजधानी मितौली विद्रोहियों का केन्द्र बन गई थी। बेगम, बिरजिसकदर, नजीबाबाद के फ़ीरोज़ शाह, धौरहरा, और रुइया वाले सब एकत्र हो गये थे। इस बड़ा गाँव में ही सीतापुर की तीसरी रेजीमेन्ट के केप्टन हियरसे सीतापुर से भाग कर आये थे। यहां उनका हाथी छूट गया जिससे दो दिन उन्हें बड़ा गाँव में रुकना पड़ा था। राजा लोनेसिंह के सेनापति सरदार खन्नासिंह बड़ा गाँव के ही निवासी थे, वे बेगम की सहायता के लिये सेना लेकर लखनऊ गये थे और वहीं शहीद हुये।

मेरी समझ में तो गदर में लोनेसिंह का नायकत्व फिसल पड़े की हरगंगा ही था।

पण्डित रामसेवक जी पाण्डेय ने बखतलोध की एक रोचक कथा सुनाई। बखतलोध दरौरा के ठाकुरों का हलवाहा था। ग़दर मे कुछ अंग्रेज़ बालकों को वह बड़ी तरकीब से सकुशल बरगदिया घाट पहुँचा आया था। उसने छकड़े पर कपड़ा तान, अपने कतिपय आत्मीयों को ढोल थाली आदि बजाने को कहा तथा यह प्रचारित किया कि वह अपने बच्चों का मुंडन कराने के लिये नैमिषारण्य जा रहा है। ग़दर शांत होने पर अंग्रेज़ों ने उसे कई मौज़े दिये—कुँअरपुर, लच्छा, मढ़िया, बरवटापुर आदि।

दरौरा के ठाकुरों ने कहा कि साले, तू हमारे बराबर का ज़मींदार बनेगा ?—और ज़बर्दस्ती आधा इलाक़ा हथिया लिया।

मनवा का कोट

२७ जून, श्री सुन्दर लाल लिखित 'भारत में अंग्रेज़ी राज' नामक पुस्तक में पढ़ा था कि अम्बरपुर में अवधवासियों और अंग्रेज़ों की सहायक नेपाली सेना में ज़बर्दस्त युद्ध हुआ था। अम्बरपुर के क़िले में केवल चौंतीस भारतीय सिपाही थे लेकिन इन चौंतीस वीरों ने विशाल नेपाली सेना के छक्के एक बार तो छुड़ा ही दिये। ये चौंतीस वीर तो कट ही गये, परन्तु इतनी ही देर में उन्होंने नेपाली सेना के तेईस आदमी घायल किये सात मार डाले। स्वतंत्रता के इन चौंतीस सिपाहियों का बलिदान चिरस्मरणीय रहेगा।

अम्बरपुर का नाम मेरे लिये वर्षों से चिरपरिचित था। अवधी के श्रेष्ठ कवि तथा यथार्थवादी कहानी लेखकों में अग्रणी स्वर्गीय बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' अम्बर पुर के ही निवासी थे। सन् १९३६ से लेकर सन् १९३९ तक शायद एक भी दिन ऐसा नहीं गया जब मेरे यहां भाई रामविलास शर्मा (डाक्टर), पढ़ीस जी और भाई नरोत्तम नागर न आये हों। 'निराला' जी नियमित तो नहीं थे, फिर भी उनकी शामें अधिकतर हमारे साथ ही कटतीं थीं। पढ़ीस जी स्वभाव और आचरण से भी किसान थे। अति विनम्र, संकोची और कम बोलने वाले; पर निजी गोष्ठी में बैठकर खूब बोलते, मज़ेदार बातें कहते, बड़ी बारीक और मीठी चुटकिय़ां लेना उनकी बात के लहजे में था। हिन्दी, अंग्रेज़ी और उर्दू फ़ारसी जानने के बावजूद उन्होंने कवितायें अपनी मातृ भाषा अवधी में ही लिखीं। जो बेहूदगी और स्वाभिमान की कमी अब तक है वह पच्चीस-तीस वर्ष पहले तो बहुत ही अधिक थी--यानी शहरी शिक्षा पा ज़ाने वाले ग्रामवासी दिहाती बोलने में अत्यधिक लज्जा का अनुभव करते थे, काव्य आदि रचना तो दूर की बात थी। पढ़ीस जी के सहज स्वाभिमान ने ज़माने की ग़लत लीक पर चलने से इनकार किया। वे बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। अक्सर सम्पादक क़िस्म के लोग उनसे कहते, 'आप दिहाती छोड़ कर हिन्दी में लिखा कीजिये।' पढ़ीस जी अपनी बड़ी-बड़ी मूँछों में मुस्कुरा कर बड़े लोगों की इस सलाह को 'जीहां बहुत अच्छा' में टाल देते। उनका व्यंग धरती की सोंधास लेकर फूटता था। कहानियां खड़ी बोली में लिखीं। एक संग्रह 'लामज़हब' गंगा-पुस्तक माला से प्रकाशित हुआ। यदि हिन्दी गद्य-साहित्य के अच्छे समालोचक होते (जो दुर्भाग्यवश अब तक नहीं हैं।) तो पढ़ीस जी का वह अकेला कहानी-संग्रह ही उनकी ख्याति को चिरस्थायी करने के लिये

काफ़ी होता। सन् १९३७ में मैंने हास्य रस का साप्ताहिक 'चकल्लस' निकाला। पढ़ीस जी का इसी नाम का एक कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका था। पत्र का नाम रखने से पूर्व हमारी मित्र मण्डली अन्त में इसी निर्णय पर पहुँची कि पढ़ीस जी के काव्य संग्रह का नाम ही पत्र का नाम भी हो। पहले अंक से ही पढ़ीस जी उसके नियमित लेखक थे। वे आयु में हम सब से बड़े थे, प्राय: 'निराला' जी के समकालीन। उनका लेखन-काल क़रीब-क़रीब वही था, जो मेरा और रामविलास जी का था। इस तरह पढ़ीस जी का हम लोग बड़ा आदर भी करते थे और बड़ी मित्रता भी थी। वे व्यवहारिक आदर्शवादी थे। अपने आदर्श की रक्षा के लिये ही उन्होंने कसमण्डा राज्य की नौकरी छोड़ी, आल इण्डिया रेडियो छोड़ा। अपने गाँव के पुरातन पन्थी ब्राह्मणों, सजातीयों, का प्रवल विरोध सहकर भी उन्होंने हरिजन बालकों को पढ़ाया और स्वयं हल चला कर एक झूठी परम्परा की लीक तोड़ी। खेत में काम करते हुये हल का फाल पैर में लग जाने से उन्हें ज़हरबाद हुआ और स्वर्गवास हो गया।

पढ़ीस जी के ज्येष्ठ पुत्र बुद्धिभद्र में भी पिता के समान ही अद्भुत प्रतिभा थी। नौ वर्ष की छोटी सी आयु में ही वह इतनी अच्छी सरोद बजा लेता था कि लोग मुग्ध हो जाते थे। स्व० हिमांशुराय ने उन्हीं दिनों बाम्बे टाकीज़ की स्थापना की थी। उन्होंने उस बालक को अपने संगीत विभाग में स्थान दिया। बुद्धिभद्र कुशल अभिनेता और लेखक भी था। बच्चों की कई सुन्दर कहानियां उसने लिखीं, पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। 'मतई काका' के रूप में वह रेडियो पंचायत घर प्रोग्राम पर छा गया था। सन् १९४१-४२ में, प्राय: छ: महीने के अन्दर ही अन्दर पिता और पुत्र दोनों ही इस दुनियां से सिधार गये।

अम्बरपुर का नाम आते ही पढ़ीस जी और उच्चन (बुद्धिभद्र) का ध्यान आना मेरे लिये अनिवार्य था। मुझे मालूम था कि अम्बरपुर के पास ही 'मनवां का कोट' नामक एक प्राचीन स्थान है। मेरी कल्पना थी कि चौंतीस वीरों की लड़ाई उसी स्थान पर हुई होगी।

सिधौली से सूचना अधिकारी वर्मा जी ने सुविधा के लिये उस हल्के के एक पंचायत राज इंस्पेक्टर को भी साथ ले लिया। हम मनवा के कोट पहुँच गये। दो-ढाई मील के घेरे में यह टीले अति प्राचीन काल की ईंटें, खण्डित मूर्तियां और मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े अपने सिर पर लादे खड़े हैं। सरायन नामक छोटी सी नदी टीले के पश्चिम से होकर बहती है। इस ध्वस्त स्थान को लेकर दो किंवदन्तियां

प्रमुख रूप से प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार यह अर्जुन तनय वीर बभ्रुवाहन का तथा दूसरी के अनुसार रघुवंशी राम के पूर्वज मान्धाता का क़िला है। जो भी हो, ऊपरी सतह पर यह गुप्तकालीन वैभव लिये हुये खड़ा है। शिव, नन्दी, गणेश, विष्णु आदि की कई सुन्दर मूर्तियां कोट के टीले पर देखने को मिलीं। कुछ मूर्तियां वहां का एक माली अपने घर उठा ले गया है और उनकी नुमाइश लगा, भक्तों से टके चढ़वाता है। टीले पर एक जगह से भुने हुये जौ, सुपारियाँ आदि निकलीं हैं, किसी पुराने यज्ञ का स्मरण कराती हैं। किसी योगी ने अपनी साधना के लिये टीले में छोटी सी गुफा खोदी थी। टीले के लम्बे फैलाव में कुछ निशानियां ऐसी भी दिखलाई दीं, जो मनवा के कोट को ईसा के बहुत पहले की सदियों में ले जाती हैं। नीचे, उत्तर दिशा के नाले के पास खड़े होकर टीले को देखने पर पुराने क़िले का आकार स्पष्ट नज़र आता है। वहां पुरानी ईंटों की कुछ दीवारें अब तक हैं।

मैंने फिर ग़दर की स्मृतियों की तलाश आरम्भ की। एक वृद्ध श्री भगवान दीन मिले। उन्होंने मुझ से कुछ अवधी कुछ खड़ी बोली में कहा: "हमका सन् १८८७ तक की यादि है, तब हम दस साल के रहे। औ गदर की बातैं हम ये सुनी हैं कि ग़दर के बाद हमारे मकान का कुआं बन्द हुआ था। हमारे चाचा और पिता बतलावत रहे कि उइमा—उसमें ग़दर वाले अपने औजार छोड़-छोड़ कर भाग गये रहे।"

मैंने पूछा: "यहां नैपालियों से लड़ाई हुई थी?"

"अब इत्ता तो साहब हम पढ़े लिखे नहीं, जो कुछ सुना रहा सो बताय दिया।"

इतने में श्री बराती पासी आ पहुँचे। उनकी आयु भी पिचहत्तर-छियत्तर के लगभग थी। श्री भगवान दीन ने उनसे कहा: "साहेब कहति हैं अकि हियां नैपालिन ते लड़ाई भै रहै? हमका तौ मालुम नाहीं तुम सुने हो तौ बताओ।"

श्री बरातीजी बोले, "भाई नैपालिन ते तौ हम नाहीं सुना, मौलुवी ते औ अँगरेजन ते भई रहै यू जरूर सुना है। हियां ते डेढ़ दुइ मील पर तेली का तालु है। नाँउ तौ वहिका फतेअली क ताल रहै बाकी बोलत चालत उहु तेली क ताल होइगा। हुवैं ते अँगरेजन की फते भई। मौलुवी भागिगे। हियां सब पँवार बवाँर रहै तौ कोई मदत नाहीं दिहिस। तबहे मौलुवी भागिगे।"

इन दो वृद्धों के अतिरिक्त वहां पर और कोई पुराना आदमी न था। चौंतीस वीरों की लड़ाई का कोट यह नहीं है। पर अम्बरपुर में तो कोई कोट नहीं, यह मुझे अच्छी तरह मालूम था। समस्या पड़ी कि वह लड़ाई हुई कहां?

खैर, अम्बरपुर पहुँच गये। दिन दोपहर का समय था। गाँव में घुसते ही एक आँगननुमा मैदान में पेड़ के पास कई लोग मिले। कुआं भी पास ही बना हुआ था। हमारे पहुँचते ही चारपाइयां बिछ गईं। गाँव जुट आया। मैंने पढ़ीस जी के दूसरे पुत्र चिरंजीव चुन्नी के सम्बन्ध में पूछा। पता लगा कि वह कुर्क़ अमीन हो गया है, खैर काम की बातें शुरू कीं। पण्डित रामसेवक शुक्ल, जिनकी आयु लगभग चौहत्तर-पिचहत्तर के है, सुनाने लगे: "पुरखा लोग कहति रहैं कि तेली के तलाव पर अँगरेजन ते लड़ाई भै। मौलवी आये रहैं औ हियैं जूझिगे। कुछु बाँहे मां बाँधे रहैं तौ उनका गोली न लागै; जब उनकी बाँह ते तबीज छुटाय दीनगा तब उईं मारेगे।

"औ भगदड़ि भै रहै। लोग गाँवें के भागे रहैं। ई बरुआ नारे के पास, सरायन गोमती के संगम पर जाय कै जंगलन मां छिपे। हमरे गाँव मा एक घनस्यामदास रहै। उयि बड़े दरिद्र रहैं। जलमु भरि वड़ा दुखु पाइनि। तौ जब भगदड़ि परी अउरु सब लोग अपन-अपन सोना-चाँदी वटोरय लागे —औ का लै जाई का न लै जाई करै लागे, तब घनस्यामदास बड़े मगन भे। अपन एकु टुटहा तवा अउरु एकाध बासन अउरु जो रहा होय, उठाय कै अपनैं ते कहिनि कि 'दरिद्र दास तुम आजु काम आये।" 'दरिद्रदास' का दर्शन मजा दे गया।

दूसरे वृद्ध पण्डित रामसुख शुक्ल, जो रामसेवक जी के बड़े भाई हैं, सुनाने लगे: "पहिले जब मोलवी आये तौ सब लोग कहिनि साथ देब, बाद मां नाहीं दिहिनि। मोलवी मारा गा। मोलवी कहिनि कि हमका ध्वाखा (धोखा) दिहे हौ, तुम्हार बंसु नासि होयि जाई।......औ जब लड़ाई भै तौ हियां भगदड़ि परी। गाँव के सब जन भागि गे। बस केसरीदास रहें। उयि जाति के नाऊ रहैं पर बड़े पहुँचे भये लोग रहैं। तौ अउर सब भागिगे; उयि कहिनि कि हम न जाब। तौ याक पासिन रहै, गंगा पासी की दुलहिन, हमरे गावैं की रहै, उयि के लरिका भवा रहै। अउरु बिजन आयगा—पासैं अँगरेजी फौजैं आय गईं रहैं। वहिके घर वाले सब भागिगे रहैं। तौ बिचरउनी पासिन बहुतु घबरानि। दौरि के केसरीदास के पास आई, कहिसि कि सब चलेगे अव मै कइसे बचौं! केसरीदास कहिनि कि जब तक मोर देहीं मा प्रान हैं तुइ चिन्ता न करु। पर फिर बिजन हियां न आवा। मोलवी मारिगे।"

नेपालियों की लड़ाई का यहां भी पता न चला। हां, यहां आकर यह पता अवश्य लगा कि एक अम्बरपुर और है, महमूदाबाद के पास है। यह स्थान मौलवी अहमद उल्ला शाह के अद्भुत रणकौशल का परिचायक अवश्य रहा है। मार्च '५८

में लखनऊ की फ़तह के बाद मौलवी अहमदउल्ला शाह वाड़ी में तीन हज़ार सैनिकों के साथ जमा हुए। सर होप ग्राण्ट को छकाते हुए वे आगे वढ़े। उन्होंने एक ऊँचे ध्वस्त टीले (इसी मनवा के कोट) पर तोपें चढ़ा, अपने आपको सुरक्षित कर, अंग्रेज़ सेनाओं को अपने गोलों के खतरे में डाल दिया था। मौलवी साहब अदम्य साहसी और वीरपुरुष थे। पुवायां नरेश ने उनका सिर काट कर पचास हज़ार रुपये का इनाम अंग्रेज़ों से अवश्य पा लिया, पर अनन्त सदियों के लिये अपने नाम को कलंकित कर गये। जगन्नाथसिंह जैसे ग़द्दार के कारण ही बेचारा पुवायां ग्राम इतिहास में चिर काल तक बदनाम रहेगा।

अम्बरपुर में मुझे मालूम हुआ कि अटरिया क श्री प्रयागदत्त शुक्ल सौ वर्ष से ऊँचे हैं और उन्हें गदर का बहुत हाल मालूम है। अटरिया गाँव कुछ दूर नहीं था। पहुँच गये। शिवाले के पास ही पण्डित प्रयागदत्त बुढ़ापे की ग़फ़लत में अपने बरामदे में पड़े हुए थे। उनके पुत्र ने उनके कान के पास जाकर ज़ोर से हमारे आने का आशय समझाया। प्रयागदत्त जी बैठ गये, उनकी स्मृति, बोली, कान और आँखें सभी अंग शिथिल हो गये हैं। ओबरी बाराबंकी के साहबदीन इनसे अधिक कठकठे हैं; टिकुरी बहराइच के ठाकुर ननकूसिह कान और आँखों से अवश्य लाचार हो चुके हैं परन्तु स्मरणशक्ति और वाणी में ओज है। एक सदी के आसपास वाली आयु के पुरुषों-स्त्रियों से मिलने में एक विचित्र प्रकार का अनुभव होता है—हम जीवित इतिहास से प्रत्यक्ष मिलते हैं।

पुत्र के आशय समझाते ही प्रयागदत्त जी उठ बैठे। उन्होंने कहना आरम्भ किया:

"गदर का हाल हम का जानी। वहिके दुयि बरिस बाद भयेन। सन् ४६ (फ़सली) मां गदर भा। हियां पहिले एकु अंगरेजु आवा रहै मुलुक द्याखै। हुआं ते हुकुम भा, गंगाघाट पर मिलौ। छह अंगरेज रहे किस्ती पर चले, बक्सर घाट पर राव रामबक्स काटि डारिन। दुबारा फिर नबाब नक्की कहिन अकि मिलौ। अगिनबोट बोर दिहिन।

"हियां उमरिया बदली। नवाबगंज मां बलभद्रसिह लरे हैं। उमरिया मां तीन सौ गोरा मारेगे। तेली के ताल मां भई। मनवा के कोट पै मौलबी तोपैं चढ़ाय लैगे। बेगम भागी; राजा मार्नासह नेपाल के आगे नघाँय आये।

"मौलबी जौन तेली के तालु पै लड़ा हैं, बास्सा जौन रहे उनके माफिक रहे मौलबी। तौन उयि लड़े रहे। यहै तीर मौलबी कटिगे तेली के ताल पै।"

यह वार्ता मैंने पैराग्राफ़ों में उसी क्रम से प्रस्तुत की है जिस क्रम से वे एक

साँस में बोले हैं। उनके रुकने के साथ ही पैरा बन्द कर दिया है। इस बार प्रयाग-दत्तजी कुछ लम्बे रुके। यह देख मैंने उनके पुत्र से कहा: "पूछिये, यहाँ नेपालियों से लड़ाई हुई।"

पण्डित जी ने अपने पिता के कान में ज़ोर से कहा। बड़े पण्डित जी फिर कहने लगे: "नेपाली फौज अंगरेजन क मददु दीन रहै। नैपाली तब आये रहे जब लखनऊ मां लड़े रहे। लखनउआ लूटै मां परिगे याही ते हारे। नवाब नक्की मिलिगे। वेगम तौ कहिनि, वक्त खराब है सब मच्छी भवन मा कयि दीन जाँय, मुलु चार-पाँच सै डोला मां अंग्रेजी फौजैं आय गईं। मार काट मचिगै। अंगरेजी फौजैं इटौंजा महोना हुइकै, मनवा हुइकै, बाड़ी कयिती गईं। रस्ता भर जहाँ जहाँ चले हुआं बिजन करत चले।"

पण्डितजी फिर लम्बी चुप्पी साध गये। मैंने उनके पुत्र, जिनकी आयु लग-भग पचपन-साठ के होगी, से कहा: "पूछिये, गदर में प्रजा किसका साथ देती थी, अंग्रेज़ों का या वेगम का?"

उत्तर आया: "अंगरेजन के साथ सब रहैं वाकी मान बेगम का देत रहैं।"

किंवदंतियों में सत्य-असत्य कुछ ऐसा गड्ड-मड्ड होता है कि उसका रूप ही अनोखा हो जाता है। जैसे पहले अंग्रेज मुलुक देखने आया उसने वहां याने विला-यत में जाके कहा, फिर गंगाघाट पर फ़ौजें आईं, आदि उन्होंने बतलाया। मेरे मन में यों आता है कि पहला अंगरेज कर्नल स्लीमैन, अवध का रेज़िडेंट है जो गदर के तीन-चार वर्ष पहले ही अवध के दौरे पर निकला था। गंगाघाट आदि की घटनायें बहुत बाद की—गदर काल की हैं। बेगम हज़रतमहल राजा मानसिंह के साथ नेपाल गईं। इस सूचना की भी एक ही रही; मगर इससे यह अवश्य स्पष्ट होता है कि राजा मानसिंह वेगम के साथ भी थे। मनवा के कोट पर मौलवी साहब द्वारा तोप चढ़ा ले जाना, अंग्रेज़ी फ़ौज का मार्ग आदि बातें ठीक हैं। लख-नौये लूट में पड़े थे यह बात भी अपनी जगह पर बिलकुल सच है, पर हार के जिस प्रसंग से जुड़ कर आई है उससे उसका कोई नाता नहीं। अपने अंतिम मोर्चों पर लखनऊ ने बड़ा रक्तदान दिया है। लखनऊ में तिलंगों की लूट चिनहट के युद्ध ३० जून '५७ से पहले की बात है। इसी प्रकार नवाब नक़ीअली खां का अंगरेज़ों से मिलना और कानपुर में अगिन बोट का फँसना दूसरी।

फिर भी किंवदंतियों का महत्व मेरी दृष्टि में बहुत है।

शाम को नवाब नक्की का प्रसंग छिड़ा तो डाक्टर नवल बिहारी जी ने एक बात सुनाई। कहने लगे : " एक बार मछरहट्टा गाँव के एक व्यक्ति ने किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में कहा कि डाक्टर साहब, वो शख्स तो नक्की निकल गया।" मुहाविरों के शौक़ीन को नई रकम मिली, पूछा अर्थ क्या है ? उत्तर मिला, "धोखे बाज़ या ग़द्दार।"

नवाब अलीनक़ी खां की जन्म भूमि मछरहट्टा ने अपने नक्की नवाब को खूब अमर किया है।

मैंने डाक्टर साहब को अपना बहराइच ज़िले का अनुभव सुनाया। अंग्रेज़ों से पुरस्कार में ज़मीदारी पाने वाले कुटुम्ब को 'गद्दारन का घर' कहा गया था। डाक्टर साहब बोले : "मैं आपको एक मुहावरा और देता हूँ। बचपन में हम भाइयों में एक बड़ा चुगलखोर था। वह सदा बड़ों की दृष्टि में भला बनने की नीयत से हम लोगों की चुगली खाता था। हमारे चाचा कहा करते थे कि ये ससुरा पूरा बंगाली है।"

मैं अवाक रह गया। फिर पूछा : "अच्छा, हिन्दी में एक मुहाविरा भूखा बंगाली भी चलता है।"

मेरी धारणा है कि उनकी रिश्वतखोरी से आया होगा। बंगाली बाबू का पेट बड़ा, उसकी भूख भी बड़ी है। यों शायद खाने में तेज़ भी होते हैं।

अवध के प्रबंध में सहायता करने के लिये बंगाली आये थे। अँग्रेज़ के साथ बंगाली बाबू उनका ट्रेन्ड क्लर्क बन कर आया। आम तौर पर अवधी भारतीय का विधाता बंगाली भारतीय था। कलकत्ते का यह बाबू स्वयं अपने ही प्रदेश के दिहाती संबंधियों से जो व्यवहार करता था उसका वर्णन शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय अपने उपन्यास 'श्रीकांत' में कर गये हैं। इन्द्रनाथ के एक 'बाबू' कलकतिया भैया आप तो जाड़े की रात में अपने से छोटों के कोट भी उतरवा कर छाती से चिपका रहे थे, मगर नाव फँस जाने पर इन्द्रनाथ और श्रीकांत को पानी में उतर कर नाव ढकेलने की डाँट फटकार भरा गर्मा-गर्म आदेश देने लगे। ऐसे खुदपरस्त बाबू अपने प्रदेश से दूर, बिहार, आगरा अवध या दिल्ली, पंजाब आदि स्थानों की भारतीय प्रजा के साथ न जाने क्या व्यवहार करते होंगे। घर के घर में यदि कोई भाई किसी को परिस्थितिवश आतंकित कर दबा कर रखता है तो उसके विरुद्ध घृणा हो ही जाती है। आगरा कालेज के प्राध्यापक डा० सत्यनारायण दुबे ने मुझे मैन-पुरी ज़िले की एक पुरानी कहावत सुनाई थी : 'कमाये टोपी वाला, लूटे धोती

वाला।' टोपी वाले से तात्पर्य है अंग्रेज़ और धोती वाले का अर्थ है बंगाली बाबू। डाक्टर मजूमदार ने अनेक बंगाली बाबुओं की डायरियों के हवाले दिये हैं। 'पुरबियों' ने अवश्य उन पर क्रूरतायें कीं, मान लिया; पर बंगाली बाबू ने ठंडे दिनों में 'पुरबी' प्रजा को 'हिन्दुस्तानी कूकुर, शाला छातूखोर' की--ओछी दृष्टि से देख देख कर बड़ा तुच्छ बनाया था। वह क्या क्रूरता नहीं थी?

डाक्टर मजूमदार विद्वान् ठंडे मस्तिष्क से विचार करने वाले मनुष्य हैं। अरे, बंगाली भाइयों की डायरियां होतीं तो उनके एक एक शब्द पर विश्वास भी किया जाता, बंगाली बाबुओं की डायरियों को उनके बाबूपन से अलग करना बड़ा कठिन है।

मगर मैं तो कहूँगा कि वाह री जनता! तेरे शब्दों और मुहावरों के पीछे जाने कितना इतिहास भरा होता है!

ख़ैराबाद

यह नगरी गदर से पहले ज़िले की राजधानी थी। मुंशी हरप्रसाद नाज़िम और मौलवी फ़ज़लहक़ के कारण ग़दर में ख़ैराबाद का महत्व बढ़ा।

वर्षों पहले एक मित्र की बारात में यहां आया था। छोटा सा क़स्बा है, लखौरी ईंटों के पुराने मकान और मनहूस खण्डहरों से बस्ती भरी पड़ी है। मेरी अपनी धारणा यह है कि पच्चीस-छब्बीस वर्ष पहले जब पहली बार ख़ैराबाद को देखा था तब से अब वह और अधिक उजाड़ है। यों ख़ैराबाद का नाम तो किसी ख़ैरू पासी की बदौलत पड़ा पर गजेटियर के अनुसार विक्रमादित्य का नाम तक इसकी हिस्ट्री में जुड़ा हुआ है। किसी समय अरबी भाषा के विद्वानों तथा इस्लामी दार्शनिकों का बहुत बड़ा केन्द्र था। मौलवी फ़ज़लहक़ एक ऐसे ही विद्वानों के परिवार के वंशज और स्वयं भी महापण्डित थे। उनकी अरबी कविता का लोहा स्वयं अरब के साहित्यिक मानते थे। हम मियां की सराय में मौलवी साहब के पोते मौलवी हकीम जफ़रुलहक़ साहब से मिलने गये। वर्मा जी ख़ैराबाद म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब के यहां ले गये? उन्होंने हकीम ज़फ़रुलहक़ साहब को अपने यहां बुलवा लिया। मौलवी साहब ने फ़रमाया: "सन् '५७ में बहुत से उलेमाओं ने शिरकत की थी। बहुतों को काले पानी की सज़ायें हुईं थीं। मेरे दादा साहब भी कालेपानी की सज़ा पाकर अण्डमान गये थे। वहां

उन्होंने अरबी में सन्' ५७ के कुल वाक़यात 'सूरतुल्हिन्द' किताब में लिखे हैं। यह किताब उन्होंने जेल के अफ़सरान से चुराकर कहीं फटे पायजामों की चिन्दियों में, पत्तों पर, चमड़े पर, लिख-लिखकर जो क़ैदी हिन्दुस्तान की तरफ आते गये उनके हाथों मेरे वालिद के पास भेजते गये। फिर यहां उसकी एक बाक़ायदा नक्ल तैयार की गई। अंग्रेज़ों के ज़माने में तो उसके छपवाने का सवाल ही नहीं उठता था। अब शाया हुई है और वह भी इस तरकीब से कि एक पुश्त पर अरबी में छपा है और उसके सामने उर्दू में तर्जुमा शाया किया गया है। एक बात और अर्ज़ कर दूँ जो मैं जानता हूँ कि बाद बहुत कोशिशें करने के मेरे वालिद यानी मौलवी फ़ज़लहक़ साहब के बेटे उनकी रिहाई का हुक्मनामा लेकर जब अण्डमान पहुँचे तो पता लगा कि मौलवी फ़ज़लहक़ साहब की लाश को अभी-अभी क़ब्रिस्तान ले गये हैं। बाक़ी और कुछ मैं जानता नहीं। कुछ दिन हुये 'क़ौमी आवाज़' में रतनलाल बंसल साहब ने मेरे दादा पर एक आर्टिकिल शाया करवाया है। आप उसे पढ़ जाइयेगा। उसमें कुल हालात मिल जायेंगे। हां, एक बात और जानता हूँ। मेरे दादा ने एक फ़तवा पेश किया था जिसके मुताबिक ग़दर की लड़ाई को उन्होंने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ जेहाद क़रार दिया और हर मुसलमान का उसमें शरीक़ होना मज़हबी फर्ज़ बतलाया। इसी पर तो उन्हें कालेपानी की सज़ा हुई थी। मगर ये कुल बातें आपको उस आर्टिकल में मिल जायेंगी।"

मैंने पूछा: "वे कपड़े के टुकड़े, चमड़े के पट्टे और पत्ते, जिनपर मौलवी साहब ने अण्डमान से ग़दर के हालात लिखकर भेजे थे, क्या आपके पास हैं?"

"जी नहीं, हमारे घर में नहीं हैं।"

मौलवी फ़ज़लहक़ बचपन से ही बहुत कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा सम्पन्न थे। तेरह वर्ष की आयु में ही, [सन् १८०९ में उन्होंने पढ़ाई पूरी कर ली और अपने पिता के शिष्यों को पढ़ाने लगे। बंसल जी के लेख में एक मज़ेदार घटना का उल्लेख है। एक बड़ी उम्र के साहब मौलवी साहब से पढ़ने आने लगे। गुरूजी छोटे और चेले बहुत बड़े। गुरूजी की बुद्धि कुशाग्र और चेले का यह हाल था कि कुयें के पत्थर थे जिस पर महज़ दो-चार बार रस्सी आने जाने की रगड़ से निशान नहीं बना करता। मौलवी फ़ज़लहक़ साहब पहले ही दिन उनसे झुंझला उठे। किताबें फेंक दी और कह दिया कि यह आपके बस का रोग नहीं है, मेहरबानी करके कल से तकलीफ न कीजियेगा। वे साहब बेचारे बड़े दुखी हुए

और उन्होंने मौलवी फ़ज़लहक़ के पिता से जाकर अपना दुःख निवेदन किया। पण्डित पिता ने फ़ौरन ही अपने पण्डित बेटे को बुलवाया और एक थप्पड़ रसीद करते हुये कहा : "वेवकूफ़, तू यह नहीं सोचता कि तेरा जैसा दिमाग़ सब कहां से पा सकते हैं ? तू मालदार का लड़का ठहरा, किसी चीज़ की कमी नहीं महसूस की, जिसके पास बैठा उसने खातिरदारी से पढ़ाया। हमेशा अच्छा खाने को, अच्छा पहनने को मिला, लेकिन इन बेचारों को यह सब कहां से मिले।" विद्वान् और अनुभवी पिता की शिक्षा मौलवी साहब के व्यक्तित्व को आजीवन के लिए सँवार गई।

मौलवी साहब दिल्ली के अंग्रेज़ रेज़ीडेण्ट की अदालत मे सरिश्तेदार हो गए। बादशाह अकबर शाह तथा रेज़ीडेण्ट इन्हें बहुत मानते थे। सन् १८२८ ई० में मौलाना मुफ्ती बनाये गये। तरक्क़ी तो हुई पर अंग्रेजों से पट न सकी। वे लोग खुशामद पसन्द थे और मौलाना किसी की खुशामद करना जानते नहीं थे। अफ़सर नाराज हो गये, सरकारी वकील बनाकर इनका तबादला इलाहाबाद में कर दिया गया। वहाँ इन्होंने कुछ रोज काम किया, बाद में इस्तीफा दे दिया।

इसके बाद मौलवी फ़जलहक़ साहब रियासतों में घूमते रहे। झज्झर, अलवर, सहारनपुर, टोंक, लखनऊ, रामपुर आदि स्थानों में रहे। दिल्ली के बहादुरशाह भी इनका बहुत मान करते थे। इन्होंने क्रान्ति आरम्भ होने पर दिल्ली का विभिन्न रियासतों से सम्पर्क स्थापित कराने में बड़ा श्रम किया। जनरल बख्त खाँ रुहेला भी मौलवी साहब को बहुत मानते थे। इन्होंने यह फ़तवा दिया कि इस लड़ाई में लड़ना हर मुसलमान का धार्मिक कर्तव्य है। मुसलमान जनता पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। ग़दर के बाद अंग्रेजों ने इन्हें खैराबाद में गिरफ्तार किया। अंग्रेज जज इनसे पढ़ चुका था। उसने फाँसी के बजाय कालेपानी की सजा दी। वहीं १८६१ में इनका स्वर्गवास हो गया।

मुंशी हरप्रसाद नाज़िम के संबंध में मुझे कोई जानकारी प्राप्त न हो सकी। चौधरी अचलबिहारी लाल खैराबाद के पुराने ताल्लुक़ेदार वंश के हैं। उन्होंने बतलाया : "राजा हरपरशाद यहां नहीं रहते थे। उनकी तरफ़ से उनके समधी यानी हमारे परबाबा चौधरी रामनरायन यहां का इंतज़ाम सम्हालते थे। चौधरी रामनरायन पर तोप रखने का मुक़दमा भी चला था, कहा जाता है कि उनके पास तोप बिरंजी थी। राजा हरपरशाद के खानदान वाले जायस के क़रीब नसीराबाद में रहते हैं।"

राजा हरप्रसाद का हाल तो न मिला मगर उनके समधी चौधरी रामनरायन की बातों के बहाने मुझे शाही ओहदेदारों और ताल्लुकेदारों के संबंध जानने को अवश्य मिल गये। यह तो पहले भी कई जगह सुन चुका था कि अवध के ताल्लुकेदारान शाही खज़ाने में आमतौर पर एक झंझी कौड़ी भी देना अपनी शान के खिलाफ़ समझते थे। आमतौर पर जब नाज़िम या आमिल की फ़ौजें आतीं ताल्लुकेदार गढ़ी छोड़ कर भाग जाते। अक्सर मुठभेड़ भी हो जाती। पकड़ जाने पर आमिल लोग राजाओं की बड़ी दुर्गत करते। उनके मुँह पर पाखाने का तोबड़ा बाँधा जाता। नाख़ूनों में कीलें या काँटे ठोके जाते, पैरों में काँटेदार बेड़िया डाल कर डंडे के ज़ोर से दौड़ाया जाता। बाज़ राजे ज़मीदार ऐसे कंजूस होते थे कि दमड़ी के लिये अपनी चमड़ी की मुतलक़ परवाह न करते थे।

कैसे जंगली न्याय के दिन थे वे भी। राजा, ताल्लुक़दार, आमिल,—अपने दाँव पर कोई किसी को नहीं छोड़ता था। शक्ति संचय करने का मात्र उद्देश्य यही था कि जो कमज़ोर पड़े उसे खूँख्वार भेड़िये की तरह दबोच लिया जाय। आज भी यद्यपि शक्तिशाली अशक्त पर ऐसे ही अन्याय कर लेता है, परन्तु सभ्यता के विकास ने जीवन की मान्यतायें बदल दी हैं। इस तरह की बातें अब रोज़ सुनने में नहीं आती। निरंकुशों पर अपेक्षाकृत न्याय का अंकुश है।

नैमिषारण्य

प्रातःकाल नैमिषारण्य के लिये चल दिया। नैमिषारण्य और मिश्रिख हिन्दू मात्र के लिये अत्यन्त पवित्र तीर्थ हैं। सत्यनारायण की कथा सुनने वालों ने 'एकदा नैमिषारण्ये' बहुत बार सुना होगा। अट्ठासी हज़ार ऋषियों के सम्मेलन की कथा भी नैमिषारण्य के साथ जुड़ी हुई है।

मेरे पास पौराणिक कथाओं को धार्मिक दृष्टिकोण से अपनाने लायक़ मन नहीं। मैं अपने देश का प्राचीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रूप देखना चाहता हूँ। यह भी प्रचलित 'कुलट्यूर' फैशन के प्रभाव में नहीं वरन् मेरे मन में सचमुच यह बहुत बड़ा सवाल है कि अपने देश को किस रूप में देखूं। जैसा किसी भी समझदार व्यक्ति के लिये उचित होता है, मेरे लिये भी है, अर्थात अपने देश के योग, दर्शन, साहित्य, शिल्प आदि की महान् परम्पराओं को देख कर गौरवान्वित होता हूँ। मैं सचमुच भाग्यशाली हूँ कि मेरा जन्म भारत देश में हुआ है। परन्तु मेरा यह गौरव भाव इस परम धार्मिक मानवीय दृष्टिकोण वाले महान् सांस्कृतिक

देश के घोर अधार्मिक, अत्यन्त अमानुषिक रूप और असांस्कृतिक परम्पराओं की ओर से भी आँखें नहीं मींच पाता। उदाहरण के लिये, धर्म के नाम पर आत्म-हत्या करना, काशी करवट लेना, सतीदाह करना, प्रायश्चित के नाम पर किसी को जीते जी जला देना, कानों में गर्म सीसा पिघलाना, पशु-बलि करना—धर्म के नाम पर इन अमानुषिक कृत्यों को करने वाले मनुष्यों से घृणा होती है, तीर्थों के पण्डों और मन्दिरों के पुजारियों से घृणा होती है। देवदासियों के नाम पर स्त्रियां धर्माधिकारियों के अनाचार अत्याचार का साधन बनाई गईं, सर्वत्र मात्स्य-न्याय प्रचलित हुआ। धर्म के नाम पर क्रूरता कठोरता का अंत न रहा। यह सब भी 'महान् भारतीय संस्कृति' में समाता है। मुझे भारत देश के—अपने—इस रूप से घोर घृणा है। मुझे यह भारतीय व्यक्तित्व का भयंकर विरोधाभास प्रतीत होता है। 'सर्वखल्वमिदं ब्रह्म' वाले देश में धर्म के नाम पर ब्राह्मणों, बौद्धों, जैनों आदि ने पारस्परिक धर्म प्रतीकों को तोड़ा है। यह सब क्या है ? क्यों है ?

ऋग्वेद में संघबद्धता के आदर्श की धूम है, बुद्ध ने भी उसी संघबद्धता को मान कर आगे बढ़ाया। क्या कारण है कि वह सांघिकता हमारे दैनिक व्यवहार में बैर और फूट बन गई ?

दक्षिण के विशाल मंदिर देखे। अपने शिल्पी पुरखों के प्रति अपार गौरव का बोध हुआ। इस देश के मनुष्य ने पत्थर में प्राण डाल दिये हैं। जड़ता में चेतना उत्पन्न कर दी है। आमतौर पर हर मंदिर से बाहर निकलने पर दूसरा अनुभव यह हुआ कि भिखारी, बच्चों, स्त्रियों और पुरुषों की भीड़ यात्रियों के पीछे चरचेंटे सी चौंटती हैं पण्डे उन्हें मारते हैं, यात्री मारते हैं। वे आपस में मारपीट करते हैं; उनकी बुरी गत देख कर बुरा लगता है पर उन भिखारियों को यह सब कुछ नहीं व्यापता। उनकी चेतना जड़ हो गई है। जो देश अपने लिये इतना सौंदर्य चाहता है वह स्वयं अपनी ही मनुष्य जाति को इतना असुन्दर बनाना कैसे सह पाता है ?

इसी प्रकार के प्रश्नों ने ही मेरी इतिहास की भूख जगाई है। मै अपनी और समाज की उलझनों को समझकर स्वयं सुलझना चाहता हूँ।

मेरे मन में नैमिषारण्य का अट्ठासी हज़ार साधुओं का सम्मेलन, कथायें, माहात्म्य—सब कुछ एक नये सामाजिक संगठन का आभास कराते हैं। यह बौद्ध धर्म के पराभव और ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान का काल था। ब्राह्मणों द्वारा बतलाई गई धार्मिक राह पर चलने वाले राजा-महाराजाओं ने अपार धन व्यय

किया होगा, तब यह महान् साधु सम्मेलन होना सम्भव हुआ होगा।

जायसवाल जी के 'अंधकार युगीन भारत' के अनुसार बौद्ध-धर्म के पतन का एक कारण विदेशी कुषनों का बौद्ध-धर्म ग्रहण करना भी था। विदेशी शासकों को अपने द्वारा पराजित और शासित प्रजा स्वाभाविक रूप से तुच्छ प्रतीत होती होगी। बौद्धों और ब्राह्मणों की शत्रुता इस देश में थी ही। कुषन राजा जब बौद्ध बन गये तब उन्हें ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष की साम्प्रदायिक आड़ में अपने द्वारा शासित प्रजा पर अधिक अत्याचार करने का बहाना मिल गया। राज्याश्रय पाकर बौद्ध आचार्य, भिक्खुगण बहुत मोटे हो गये थे। साम्प्रदायिक घृणा ने उन्हें संकीर्ण हृदय वाला बना दिया था। जनता में उनके प्रति आदर नहीं रहा था। ऐसे समय में शिव का भार अपने कन्धे पर उठा कर चलने वाले भारशिवों ने विदेशी कुषनों को खदेड़-खदेड़ कर भारत से बाहर निकाल दिया। जहां तक मुझे याद पड़ रहा है, जायसवाल जी ने अपनी पुस्तक में नैमिषारण्य सम्मेलन का श्रेय भारशिवों को दिया है। मैं नहीं जानता कहां, पर हाल ही में कहीं यह भी देखा था कि उक्त सम्मेलन का आयोजन पाण्डवों के वंशज किसी राजा ने कराया था। इसमें सत्यासत्य क्या है यह तो इतिहास के विद्वान् जाने, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बिना किसी ज़ोरदार संगठन के ऐसा काम हो ही नहीं सकता।

नैमिषारण्य सम्मेलन का एक महान् उद्देश्य सूत द्वारा महाभारत बांचना भी है। सत्यनारायण की कथा, सिद्धिविनायक की कथा, हरतालिका व्रत की कथा, ऋषिपंचमी की कथा, सत्यविनायक की कथा, जो विविध पुराणों से ली गई हैं, सब नैमिषारण्य की धरती पर सूत-शौनक सम्वाद के रूप में फूटी हैं। इनमें बहुत सी जगहों पर ख्वाहमख्वाह नैमिषारण्य और सूतादिकों का नाम जोड़ा गया होगा, फिर भी ऐसा लगता है जैसे बड़े आयोजित ढंग से सनातन धर्म का पुर्नसंगठन हुआ था। नैमिषारण्य एक प्रकार से कथावाचक सूतों और मुनियों, साधकों का विश्वविद्यालय बन गया था। आश्चर्य है कि काशी जैसे प्राचीन केन्द्र के बजाय नैमिषक्षेत्र ब्राह्मण धर्म की राजधानी कैसे बना? कुछ न कुछ ऐतिहासिक कारण तो होंगे ही। टॉयब्वायज़ ह्वीलर ने अपने 'भारत के इतिहास' में अपनी एक मज़ेदार अनुभूति बखानी है। वह कहता है कि यों तो इस देश के सामाजिक धार्मिक जीवन में विशेष अन्तर नहीं पड़ता—सिकन्दर और मेगस्थनीज़ के समय में जनता सूर्य, चन्द्र और नदियों को पूजती थी, विष्णु और शिव को बलि चढ़ाती थी और नंगे योगियों का आदर करती थी। उसके

एक हजार वर्ष बाद चीनी-यात्री हुएन्-सांग ने भी भारत में वही दृश्य देखे और उसके एक हजार वर्ष बाद अंग्रेज़ों ने भी यहां आकर वही सब पाया।

एक तरह से यह ठीक है, पर भगवान्-द्वय बुद्ध और महावीर ने अपने व्यक्तित्वों का बड़ा ज़बर्दस्त प्रभाव इस देश पर डाला था। बुद्ध ने एक बड़ी ज़ोरदार बात उठाई थी। उन्होंने लोगों से कहा कि धर्म को बिना सोचे समझे मत ग्रहण करो; जो बुद्धि को उचित जँचे वही धर्म है। ब्राह्मण के लिये यह बात करारी चुनौती थी। समाज से ब्राह्मणों का एकाधिपत्य उठ रहा था। उन्होंने बौद्धों और जैनों का घोर विरोध किया। परन्तु ब्राह्मण इन प्रगतिशील शक्तियों के सामने हारे। सम्राट अशोक के बाद तो लोक में बुद्ध और जैन तीर्थंकरों के अतिरिक्त और भी अनेक पूज्य धार्मिक प्रतीक थे। कुछ लोग विष्णु को प्रधान देवता मानकर पाँचरात्र धर्म मानते थे, कुछ शिव को मानकर पाशुपत धर्म, कुछ देवी को प्रधान शक्ति मानकर शाक्त मतावलंबी थे। सूर्य, गणपति, कार्तिकेय, विभिन्न नदियां, वृक्ष और सर्प, गरुड़, हनुमान भी इस देश की जनता द्वारा पूजे जाते थे। इन सब में भी खूब लड़ाई थी। लेकिन ऐसा लगता है कि एक प्रबल विरोधी को परास्त करने के लिये सारे धर्मों ने मिलकर संयुक्त मोर्चा बनाया। महाभारत के पाठ से यह संयुक्त मोर्चा जमाया गया। महाभारत ग्रन्थ जिस रूप में आज हमारे पास है वह महात्मा सौति की देन है। विद्वान् मानते हैं कि महर्षि श्री द्वैपायन व्यास ने 'जय' नामक ग्रन्थ रचा था। उनके एक शिष्य वैशम्पायन जी ने उस ग्रंथ को कुछ और बढ़ा-चढ़ा कर 'भारत' के नाम से पाण्डव अर्जुन के पौत्र परीक्षित को सुनाया। इस नये 'महाभारत ग्रन्थ' में पांचरात्र, पाशुपत, शाक्त आदि सब मतों को एक झंडे के नीचे ले आया गया। पुरानी कहानियों का संग्रह कर उन्हें व्यवस्थित रूप दिया गया।

मुझे यह सच लगता है कि यदि नैमिषारण्य संगठन न होता तो वैष्णवों का गुप्त साम्राज्य स्थापित न होता। नैमिषारण्य में एक बहुत बड़े समन्वय का आयोजन हुआ था लेकिन वह फिर अंधी दौड़ की तरफ भगाये लिए जा रहा था। हमारा ब्राह्मण पुरखा बड़ा तेजस्वी तपस्वी होते हुये भी तानाशाह था। वह जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त न कर उसे घुड़कता था। वह कहता, "बस-बस, तुम इस कार्य में श्रद्धा रक्खो और करो। तुम्हारे लिये इतना ही जानना काफ़ी है कि इससे तुम्हारा क़ल्याण होगा। बाक़ी सब सब कुछ जानने का अधिकार ब्राह्मण को है; तुम लोगों को केवल ब्रह्मवाक्य का प्रमाण ही मानना चाहिये।"

नैमिषारण्य के पुनरुत्थान आयोजन द्वारा बड़ा समन्वय तो अवश्य हुआ परन्तु तानाशाही न गई। भगवान् शंकराचार्य ने उस तानाशाही को तोड़ा। उन्होंने बौद्धिकता को बढ़ावा दिया ; प्रश्न उठाये, शास्त्रार्थ किया, अन्धनिष्ठा के धर्म को तर्क और बुद्धि की ज्योति दी। चूंकि पुरोहित वर्ग का उनके धर्म प्रसार से लाभ हो रहा था इसलिये उनका बड़ा आदर तो किया मगर उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध कहने से भी न चूके। खैर, मेरा मन तो इस समय नैमिषारण्य से जुड़ा है। विदेशी कुषनों को हँकाल देने के बाद नये सिरे से जो सामाजिक, धार्मिक और नैतिक क्रान्ति हुई उसके प्रमुख केन्द्रों में नैमिषारण्य प्रमुखतम है।

वीस मील का रास्ता आनन-फानन में कट गया। गाड़ी ने मुझे एकदम चक्रतीर्थ के निकट ही ला खड़ा किया।

चक्रतीर्थ नैमिषारण्य का प्रमुख आकर्षण केन्द्र है। तमिल भाषा में, विशेष रूप से तमिल ब्राह्मणों की बोलचाल में पानी को तीर्थ कहते मैंने बहुत सुना है। हमारे यहां, जनसाधारण की समझ में तीर्थ माने कोई मन्दिर, कुँआं, घाट, नदी वाला क़स्बा विशेष होता है। नैमिषारण्य आते हुये मुझे लगा कि उत्तर भारत में और कहीं का जनसाधारण भले कुछ का कुछ समझे मगर सीतापुर ज़िले का मनुष्य तीरथ के वही अर्थ जानता है जो तमिल भाषा में हैं। मेरा साथी ड्राइवर मुझे मिश्रिख और नैमिषारण्य के सभी तीर्थ घुमायेगा, यह उसने मुझसे आते समय कहा था। उसने एक तीर्थ यहां, एक वहां और फिर वहां जो कहना शुरू किया तो मैंने टोक कर पूछा : "क्यों भाई, तुम तीरथ किसको कहते हो ? जहां-जहां तुम मुझे ले जाओगे वहां क्या है जो तीरथ है ?"

"वहां पानी के कुण्ड हैं साहब, नीमसार में चक्कर तीरथ है, चरन कुण्ड है, गोदावरी कुण्ड है। मिसरिख में दधीच कुण्ड है, सीता कुण्ड है। अभी नीमसार में ब्यास गद्दी के पास जब मिट्टी के लिये खोदाई भई तो एक पुराना तीरथ उसम से और निकल आया। आप को वह भी दिखाऊँगा।"

नैमिषारण्य विशेष रूप से अपने चक्रतीर्थ और ललिता देवी के मन्दिर के कारण प्रसिद्ध है। कहते हैं यहाँ विष्णु का सुदर्शन चक्र वृत्तासुर को मार कर पृथ्वी फोड़ पाताल चला गया था। चक्रतीर्थ अब नये सिर से बनवा दिया गया है। मुज़ैक की बेंचें जगह-जगह पड़ीं हैं। दूर-दूर तक चारों तरफ़ फ़र्श पक्का है। चक्रतीर्थ पर मैंने गुजराती और दक्षिणी भारतीय यात्रियों को भी देखा। एक वृद्ध पण्डित जी से, जो मुझे सरकारी गाड़ी से उतरते देख पास आ गये थे, मैंने अपनी

धरम कहानी छेड़ी । पण्डित बल्लू प्रसाद ने बतलाया: "कोटरा रियासत कमालपुर के अहलकार मुंशी चण्डी सहाय गुरुसहाय ने यहाँ कोठी बनवाई थी । उन बेचारों का भी गदर में सफाया हुइगा अउर गुलाब सिंह बिरुआ के सरदार रहे । बिरुआ के राजा तो घंघरिया ओढ़निया पहिरे भागिगे । मगर गुलाब सिंह ज्वान मर्दाना थे, असिल छत्री । तौ उन्होंने अंगरेजन को अपनी तरवार का पानी दिखाया । गुलाब-सिंह हियाँ आये रहे । तरवार हाथ माँ लीन्हें उइ चक्रतीर्थ में नहाये औ, फिर चले गये । पुरखे बतावत रहैं कि नैपाल भाग कर गये रहे । औ पेशवा—"

"जी हाँ, पेशवा नाना राव तो मैंने सुना यहाँ कई बरस रहे ।"

"हाँ साहब कई बरस रहे । दुई साधू यहाँ ऐसे आये । एक ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी करिकै दुसरे कैलासन के बाबा करिकै मसहूर हते । उइ तौ साहब चेहरा-मोहरा ते दिक्छनी मशहूर भये औ हते । यह सब छिपे नाम ते रहे । आवैं खूब खरिचा करैं, बच्चन का फल मिठाई देवैं, ललिता देवी में संगमर्वल का पत्थर लगवाया । उनके पास साहब एक छड़ी हती । बस रोजु उसमें से खोलके एकठे नग निकाल लें औ बेचि देवैं औ खरचा चलै । बड़े चेले कारिन्दा—पूरा लाव लस्कर उनके साथ रहा साहेब ।"

"वो यहाँ कितने दिन रहे ?"

"बहुत दिन रहे । फिर यहाँ किसी से उनका झगड़ा होइ गया तौ फिर उठिकै कैलासन चले गये ।"

"किस बात पर झगड़ा हुआ ?"

"आप ललिता देवी के मन्दिर में मथुरा माली से मिलिये । उहिकी उमिरि अस्सी बरिस तैं ज्यादा है साहेब । उइ आप को बतावैंगा ।"

"कैलासन! कैलासन के बाबा—' रह रह कर मेरे मन में उठने लगा कि यह नाम पहले भी सुना है । किसी कन्नौज—मीरा की सराय के साधू के सम्बन्ध में अपने मित्र मिश्र जी से सुना है । वो बाद में नैमिषारण्य चले आये थे और कैलाशन के बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुये थे । कानपुर के इतने निकट मीरा की सराय में या नैमिषारण्य में इतने ठाठ-बाट से रहने की ग़लती नाना धोंडूपंत पेशवा जैसा बुद्धिमान मनुष्य करे, अपना असली नाम गुपचुप ढंग से ही सही मगर इतना प्रचारित करे कि बच्चा-बच्चा जान जाय, उस पर फिर झगड़ा करे, उसके बाद जाय भी तो महज चार-पाँच मील दूर कैलास मन्दिर में जाकर बैठ जाय·········
लेकिन यहाँ ठहरूं, झगड़ा करने की बात मिश्र जी की कहानी में भी थी ।

मिश्र जी ने एक बार प्रसंगवश अपने गाँव मीरा की सराय (कन्नौज) के पास की एक कथा सुनाई थी वह इस प्रकार है :

"विश्वनाथ का टीला कन्नौज से चार-पांच मील दूर पर स्थित है। उस टीले पर कोई जाता नहीं था। किंवदंती है कि गदर में वहां बहुत से लोग मारे गये थे, अंग्रेजों द्वारा विजन हुआ था, तब से वह स्थान भुतहा माना जाता था। एक दिन एक सन्यासी वहां आये, देखने में बड़े तेजस्वी और चेहरे-मोहरे से दक्षिणी लगते थे। लम्बे शरीर पर सफ़ेद चोलना धारण किये हुए थे। उन्होंने स्थान पूछा। किसान लोग थे, उन्होंने ठाकुरों का घर बतला दिया। वह ठाकुर वंश भी गदर का बाग़ी वंश था। वहां उनकी सेवा हुई। सामने टीले को देख कर उसकी कथा पूँछी, पता लगा कि ऊपर एक शिवालय भी है। बस, यह सुनते ही वे उठ खड़े हुए और ठाकुर से कहा, हमारे साथ चलो। उस भुतहे टीले पर जाने का नाम सुनते ही काँप गया। विश्वनाथ का टीला महा भुतहा स्थान माना जाता था, वहां और उसके आस-पास कोई दिन में जाने का साहस भी नहीं करता था। परन्तु सन्यासी जी न माने वे अकेले ही चले। एक युवक को भी जोश आ गया, उनके साथ गया। मन्दिर की जीर्णावस्था देखी, शिव जी के आसपास कूड़ा देखा। साफ करने लगे। फिर पानी के लिए पूछा, पता लगा कि पुराना कुँआ भी है। यह सब देखभाल कर वह नीचे उतर आये और आकर कहा कि जल तभी ग्रहण करूँगा जब ऊपर का कुँआ साफ़ हो जायगा। उसके बाद वे फिर उस भुतहे टीले पर जम गये। पुराना समय था, सन्यासी की बात की प्रतिष्ठा थी। कुँआ साफ़ कराया गया। फिर सन्यासी जी ने मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया, संगमर्मर आदि लगवाया। यह किसी ने नहीं जाना कि सन्यासी जी रुपया कहाँ से लाते थे। बस दिन में एक बार स्नान करने के लिए ही नीचे उतरते थे। शिवजी का अद्भुत् शृंगार करते थे, इत्र की रूह का लेपन करते थे। मेरे बाबा वहाँ जाया करते थे और उन्होंने ही यह किस्सा सुनाया था। उनकी सिद्धि का बड़ा चमत्कार था। और लोग यह भी कहते थे कि ये नाना पेशवा हैं।

"एक बार दो भाइयों में गृह-कलह हुई। क्रोधवश एक भाई ने दूसरे भाई के एक बच्चे को दूर ले जा कर मार डाला और लाश कुँए में डाल दी। हत्या करने के बाद ही उसे बुद्धि उपजी और वह सीधा सन्यासी जी के पास आया। उसने अपना पाप उनसे कह डाला। सन्यासी जी कुछ क्षण तो चुप रहे, फिर कहा कि काम तो तुमने बहुत बुरा किया, परन्तु कह दिया इससे मैं तेरी रक्षा करूँगा।

"सन्यासी जी ज्योतिष विद्या के भी बड़े सिद्ध पण्डित माने जाते थे। जब दूसरे भाई का लड़का घर न पहुँचा और सब ढूंढ हारे तब हत्यारे का भाई सन्यासी जी की शरण में पहुँचा। सन्यासी जी ने उसे सांत्वना दी और क्रमशः उपदेश करते हुए उन्होंने सत्य प्रकट कर दिया। फिर कहा कि अब तुम इस पर केस आदि न चलाना उसे ज्ञान मिल चुका है परन्तु जिसके पुत्र की हत्या हुई थी वह न माना मुकद्दमा चला। सारा केस सन्यासी जी की गवाही पर ही आधारित था। सन्यासी जी को कोर्ट जाना पड़ा। मगर सन्यासी जी अपने शरणागत को अभय-दान दे चुके थे, अतः कोर्ट में 'उन्होंने नरो वा कुंजरो वा' जैसा झूठा बयान दिया, कहा कि वह मेरे यहां था। अभियुक्त छूट गया।

"इसके बाद ही नाना पेशवा के नाम से अफ़वाहों में प्रख्यात सन्यासी जी वहां से चले गये। जाते समय मेरे पितामह उनके पास थे। उनसे उन्होंने कहा : 'अपने इस पाप का प्रायश्चित न जाने मुझे किस प्रकार करना पड़ेगा।' इसके बाद वो नैमिषारण्य चले गये थे। वहां भी सुना कि उन्होंने ललिता देवी के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और कैलासन के बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए।"

कैलासन के बाबा की कथा का पूर्वार्द्ध भी यही सिद्ध करता है कि ये व्यक्ति नाना पेशवा हरगिज़ नहीं हो सकते। न तो अंग्रेज सरकार का खुफ़िया पुलिस विभाग ही इतना गावदी था और न नाना साहब ही।

बाराबंकी के श्री दीन दयालु दीक्षित ने अपने बाबा और सन्यासी नाना साहब की नैमिषारण्य में भेंट होने की कथा मुझे लिख कर दी थी। याद पड़ता है कि बीस-बाइस वर्ष पहले नैमिष में नाना साहब के स्वर्गवास होने का समाचार पत्रों में छपा था।

दस बारह वर्ष पहले आबू गया था। अम्बा जी से कुछ मील आगे कोटेश्वर महादेव का बड़ा रम्य स्थान है। वहां एक छोटे से मण्डप में एक काठ की जीर्ण-शीर्ण नक्क़ाशीदार चौकी पर एक क़लमी चित्र रक्खा है। मुझे बतलाया गया कि यह नाना पेशवा का चित्र है, उन्होंने यहां तपस्या की थी।

लगभग पाँच-छह वर्ष हुए जौनपुर ज़िले का एक युवक लखनऊ आया था। प्रेस ट्रस्ट ऑफ़ इंडिया के तत्कालीन लखनऊ स्थित संवाददाता श्री दिवाकर निगुडकर ने उसे मेरे पास भेजा। उसने कथा सुनाई कि नाना पेशवा जौनपुर ज़िले में रहे, किसी अहीरिन स्त्री (या राजपूत स्त्री) से विवाह किया। संतान हुई। वह युवक अपने को नाना साहब का पौत्र बतलाता था। कहता था हमारे पास प्रमाण हैं।

मैंने कहा : "लेकर आओ ।" वह आज तक नहीं आया ।

चक्रतीर्थ से मैं ललिता देवी के मंदिर गया । श्री मथुरा माली से भेंट हुई । उन्होंने बतलाया:—

"अब मेरी उमिर अस्सी बरस की है । हम दस-बारा साल के हुइबा तब नाना-राव पेसवा बाबा बन के आये थे । इमली के खाले रहे । बह्मनन को न्यौता करैं, खूब खिलावैं । देवी के मंदिर में सब पत्थर उन्हीं का लगवाया है ।"

मैंने पूछा: "क्या बो कहते थे कि मैं नानाराव पेशवा हूँ ?"

"कभी अपनी जवान से तो नहीं कहा पर नौकर बतलावैं कि यही नानाराव पेसवा हैं ।"

"देखने में कैसे थे ?"

"बड़े गोरे, लाल-लाल बदन रहा । यहां साल सवा साल रहे । फिर कैलासन चले गये । वहां बहुत रोज रहे ।"

"उनका यहां किसी से झगड़ा हुआ था ?"

"झगड़ा-वगड़ा नहीं भया । अरे वो किसी से न बोलै न चालैं । कुबड़ी पकड़े रहत रहैं औ भजन-पूजा में रहैं । नौकर-चाकर सबकों खिलावैं-पिलावैं ।"

"उनके पास कोई खज़ाना था ? खर्चा कहाँ से करते थे ?"

"ये हमैं नहीं मालूम बाबू ।'

ये व्यक्ति और चाहे जो हों पर नाना पेशवा नहीं थे । बड़े नेताओं को जनता इतना प्यार करती है कि उनकी मृत्यु का खयाल भी नहीं सहन कर पाती । नेताजी सुभाषचंद्र वसु असंख्य भारतीयजनों के विश्वासानुसार आज भी जीवित हैं ।

व्यास गद्दी का स्थान भी देखने गया । ऊँचे टीले पर व्यास जी का मन्दिर बना है । यहां आकर यह कल्पना नहीं होती कि हजारों साधु इस छोटी सी जगह में बैठे होंगे, मगर बात उठ कर भी कोई ख़ास असर न डाल सकी । दो हज़ार वर्ष पूर्व इस ज़मीन की स्थिति क्या रही होगी यह कौन जान सकता है । व्यास गद्दी पर भी नया निर्माण और सुधार हुआ है । नैमिषारण्य की सुव्यवस्था देख कर बड़ा सुखी हुआ । कुछ वर्षों पहले तक यहां पहुँचने का मार्ग भी दुर्गम था, यह जगह और भी सुन्दर बनाई जा सकती है । क्या ही अच्छा हो यदि रिसर्च के विद्वानों के लिये साथ ही मेरे जैसे उन हज़ारों जिज्ञासु लोगों के लिये, जो अपने देश की परम्पराओं को समझना चाहते हैं, यहां एक अच्छा पुस्तकालय क़ायम हो । लोग ठहरें और सस्ते दर पर रह सकें, ऐसे छोटे-छोटे क्वार्टर भी

बनाये जाने चाहिये । नैमिषारण्य प्राकृतिक दृश्यों के लिये भी सुन्दर स्थान है ।

पाण्डवों का क़िला भी देखा । क़िले के टीले के नीचे महाबीर जी की विशाल मूर्ति है, लगभग सत्रह-अट्ठारह फ़िट ऊँची होगी । बतलाया गया कि यह पाण्डवों के क़िले पर मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्ति की नक़ल है। शायद पुराने आक्रमण-कारियों को धोखा देने के लिये बनाई गई हो । क़िला, जैसा कि नाम से ही ज़ाहिर है पाण्डवों का बनवाया हुआ बतलाया जाता है । उसके ऊपर स्थित महाबीर जी के मन्दिर के पास ही १२ इंच लम्बी ८ इंच चौड़ी और ३।। इंच मोटी ईंटों का ढेर देखने को मिला । ऐसी ईंटें मैं लखनऊ के लक्ष्मणटीले से भी पा चुका था। ये भारशिव काल की ईंटें बतलाई जाती हैं । मेरे ख्याल में यह क़िला उस समय का होगा जब यहां धार्मिक पुनरुत्थान का आयोजन हुआ था । हमारा पुरातत्व विभाग यदि फ़िलहाल सब जगह नहीं तो कम से कम ऐसे ऐतिहासिक महत्व के स्थानों पर अपना ध्यान अवश्य केन्द्रित करे । पाण्डवों के टीले से गोमती और उसके पार का दृश्य बड़ा ही मनोरम लगता है । टीले में साधकों द्वारा खोदी गई दो तीन गुफायें हैं , पता लगा एक में अब भी एक ऐसे साधु रहते हैं जो कई वर्षों पहले यहां आये परन्तु आज तक नैमिषारण्य में घूमने नहीं निकले, चक्रतीर्थ तक भी नहीं गये, प्रातः सायंकाल केवल देह धर्म पालन के लिये ही बाहर निकलते हैं । नैमिषारण्य अब भी साधकों की भूमि है ।

लौटते समय आम के लाख पेड़ों वाले उपवन से गुज़रते हुए मिश्रिख का दधीचि कुण्ड और मन्दिर भी देखा । देवकार्य के लिये अपनी देह विसर्जन करने वाले महात्मा के प्रति श्रद्धा जागी । परन्तु ऐसी जगहों को पण्डों ने दुकानदारी के के ऐसे ठिकाने बना रक्खे हैं कि देख कर घृणा होती है । काशी, अयोध्या, मथुरा, मदुरा, चिदम्बरम् कन्याकुमारी—कोई जगह हो, पण्डे गन्दगी फैलाने वाली बरसाती मक्खियों की तरह बुरे लगते हैं । ब्राह्मणवाद इन पण्डे पुरोहितों के स्वार्थवश होकर घृणित और जघन्य हो गया । अन्धनिष्ठा इस देश के लिये कालकूट विष के समान रही है । ब्राह्मण, बौद्ध, जैन सभी धर्मों के पोपों ने इस देश के ज्ञान पर अच्छी झाड़ू फेरी है । वह कौन सा शुभ दिन होगा जब हमारा देश इन पापियों से मुक्त होकर तपस्वी महात्माओं की उन पावन सिद्धियों को मानव कल्याण के लिये अर्पित कर सकेगा जिनके कारण यह देश पूज्य माना जाता है । जिस दिन हमारे समाज से पण्डे पुरोहितों का धर्म बिदा हो जायगा उसी दिन तपोभूमि भारत देश मानवता का कल्याण करने के लिये विश्वविद्यालय के समान हो जायगा।

मध्यान्तर

अवध के छः जिलों में ग़दर सम्बन्धी किम्वदन्तियाँ बटोरते हुए मेरे पास अद इतनी सामग्री अवश्य हो गई है कि उस पर विहंगम दृष्टि डालते ही १८५७ की रूप-रेखा स्पष्ट हो जाती है। बाराबंकी में महादेवा या हज़रतपुर में, सामन्तों की सभा में वेगम हज़रतमहल की जोशीली स्पीचें देना एक क्रान्तिकारी संगठन के संकेत प्रस्तुत करता है। वेगम हज़रतमहल निःसन्देह बड़े जीवट की स्त्री मालूम पड़ती हैं। महादेवा में उनका भाषण करना और फिर उसके परिणाम-स्वरूप हज़ारों हिन्दू-मुसलमानों का तलवारें उठा कर देश के लिये मर मिटने की कस्में खाना मन में सचमुच ही बड़ा स्फूर्तिदायक दृश्य प्रस्तुत करता है।

गज़ेटियर लिखता है कि बाराबंकी ज़िले के ताल्लुकेदार अंग्रेज़ों के विरुद्ध होकर भी प्रायः मौन थे। यह सच है परन्तु अन्य ज़िलों से आये हुए सामन्तों और उनकी सेनाओं की प्रेरणादायिनी जोशीली कारगुज़ारियों को देख कर क्या बारा-बंकी ज़िले का जनसाधारण अछूता बच गया होगा? मुझे ऐसा नहीं लगता उसी जिले के अनेक लड़वैयों के नाम लोगों ने बतलाये हैं। बहराइच और सीतापुर ज़िले के रैकवार सरदार भले ही बाराबंकी की भूमि पर लड़ते, परन्तु यदि उस ज़िले की जनता का उनके साथ सहयोग न होता तो सौ वर्ष बाद आज भी उन किस्सों को सुनाते हुए वहां का मनुष्य इस तरह जोश में न भर उठता जैसा मैने उसे देखा है। एक सदी से भी अधिक आयु वाले साहबदीन का वलभद्रसिंह नाम लेते ही सहसा पुरानी स्मृतियों से दीप्त हो उठना असम्भव होता। वलभद्रसिंह की लाश तीन घण्टे तक लड़ती रही, अँग्रेज़ 'जन्त्री' पढ़े थे सो औरत बुलवाई और उसके छूते ही लाश गिर पड़ी—इस प्रकार की बातें सत्य न होने पर भी हमारे यहां वीर-जुझारू नायकों के लिये परम्परा से कही जाती हैं। मैने लक्ष्मी बाई के सम्बन्ध में भी सुना, ठाकुर ननकऊसिंह के 'जंगनामे' में अनेक सिरकटी लाशें लड़ती हैं। यह परम्परा चन्दबरदाई के प्रिथीराज रासो, जायसी के पद्मावत, तुलसी के रामचरितमानस, केशवदास की रामचन्द्रिका, जगनिक के आल्हखण्ड आदि में भी दिखलाई देती हैं। नायक की वीरता की पराकाष्ठा दर्शाने का यह एक प्रकार से मुहावरा बन गया है।

अयोध्या फ़ैजाबाद में हिन्दू-मुसलमानों का साथ-साथ लड़ना, (अयोध्या में तीन वर्ष पहले के हिन्दुओं के विरुद्ध भीषण जेहाद की पृष्ठभूमि में) हमारी एक

सदी पहले की उमगती हुई राष्ट्रीय-चेतना का जाज्वल्यमान प्रमाण है। किसी भी और नगर में यह एकता प्रमाण देने के लिये दर्शायी जा सकती है, परन्तु अयोध्या में यही चीज़ प्रतीक बन कर और भी अधिक स्फूर्तिदायक प्रतीत होती है।

सुल्तानपुर में दो रूप देखने को मिलते हैं। एक तो अमहट के खानज़ादों का जुझारू रूप जो बेगम की प्रेरणा से स्वातंत्र्य युद्ध में शरीक़ हुए और इस प्रकार व्यापक संगठन का परिचय दिया। दूसरा चित्र पुराने सुल्तानपुर के खण्डहरों से मिलता है। गदर में केवल भारतवासियों की क्रूरता को ही देखने वाले भारतीयों से करबद्ध हो मेरा सविनय निवेदन है कि एक बार पुराने सुल्तानपुर नगर के खण्डहर अपनी आँखों से देख आयें। अँग्रेज़ों ने गाँव के गाँव घेर कर जलाये हैं; जलते हुए मनुष्यों के भागने पर संगीनों की चौहद्दी बाँध कर उन्हें आग में ढकेला है; अमानुषिक प्रतिहिंसा से भारतवासियों का क़त्ले आम किया है---इन पढ़ी-सुनी बातों का प्रत्यक्ष प्रमाण पुराने सुल्तानपुर नगर के खण्डहर हैं। अँग्रेज़ों के द्वारा किये गये अत्याचारों का आभास कराने के अतिरिक्त ये खण्डहर सौ वर्ष पूर्व के सामाजिक जीवन की झलक भी दिखा देते हैं। जैसा कि शायद मैं पहले लिख चुका हूँ, इन खण्डहरों में एक जगह मंदिर और मस्जिद की जुड़वाँ इमारतों के ध्वंसावशेष भी विद्यमान हैं।

गोंडा-बहराइच में राजा देवीबख्श और 'जंगनामे' में वर्णित बलभद्रसिंह सहित अनेक छोटी-बड़ी जातियों के वीरों के नाम और काम क्या आज भी हमारा हौसला नहीं बढ़ाते ? क्या ये सामूहिक एकता के चित्र सत्तावनी क्रान्ति को खरे अर्थ में क्रान्ति नहीं सिद्ध करते ? बेगम, रैंकवारों के मुखिया की गढ़ी में बैठ कर युद्ध का सूत्र संचालन करती हैं, अवध के प्रमुखतम हिन्दू सामन्त उनके साथ हैं।

सीतापुर ज़िले में भी हमें मौलवी अहमदउल्ला शाह और बेगम हज़रतमहल का अपने समय के लोगों पर ज़बर्दस्त प्रभाव और उनकी अद्‌भुत संगठनात्मक प्रतिभा के प्रमाण मिलते हैं। नैमिषारण्य में लोगों को हलुआ पूड़ी खिलाने वाली नाना साहब की किम्वदन्तियां मेरे मन से बरसों के कूड़ा-करकट की तरह साफ़ हुईं, इससे बड़ा सन्तुष्ट हूँ। लोग प्यार में अपने जननायकों पर कभी-कभी बेतुकी और अतिरंजित प्रशंसा लाद कर उनके व्यक्तित्व को भोंडा और अविश्वसनीय बना देते हैं। नाना साहब जितने ही गम्भीर, चतुर और मेधावी थे, उतने ही वे कैलासन के बाबा के रूप में ब्राह्मणों को हलुआ-पूड़ी खिलाते हुए, नौकरों की दबी ज़बान से अपने नाम का प्रचार करवाते और झगड़ा-झंझट करते हुए

ओछे लगते हैं। मेरे पास प्रमाण तो नहीं परन्तु सर जॉन के, वसु, सुन्दरलाल और सावरकर लिखित इतिहास पढ़ कर मुझे इस बात का विश्वास है कि बंगाल आर्मी के स्वाभिमानी विद्रोही सूबेदारों की क्रान्ति योजना को सामन्तों नवाबों और दिल्ली तक पहुँचाने में नाना साहब धोंडूपंत बाजीराव पेशवा तथा अज़ीमउल्ला खां का बहुत बड़ा हाथ था। योरप से लौट कर अजीमुल्ला खां ने कलकत्ते में निःसन्देह अँग्रेज़ों के ख़िलाफ़ ज़हर उगला होगा। अवध के पदच्युत शासक और उनके 'नक्की' वज़ीर से उसकी भेंट होना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं। अली नक़ी खां लखनऊ में प्रचलित जनश्रुतियों के अनुसार और अपने गांव मछरहट्टा की जनता द्वारा बनाये गये मुहावरे के अनुसार ग़द्दार हैं; परन्तु अँग्रेज़ों से धोखा खाने के बाद क्या यह सम्भव नहीं कि उन्होंने बदला लेने की भावना से विद्रोह की आग भड़काने का आयोजन किया हो? मुझे तो यह तनिक भी अटपटी बात नहीं मालूम होती। अलीनक़ी ख़ां मटियाबुर्ज छोड़ कर कलकत्ता शहर में रहने के लिये चले गये थे, यह बात सुनने में आती है। क्या यह सम्भव नहीं कि अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ साज़िश रचने के लिये ही उन्होंने मटियाबुर्ज से बाहर रहना उचित समझा हो? अज़ीमुल्ला उनके साथ भारतीय सूबेदारों के सामने क्रीमिया युद्ध के दृश्य बखानने, वहां की नक्शाबन्दी बताने के लिये जा सकता है। स्वयं मजूमदार महाशय यह मानते हैं कि रूस के इंगलिस्तान से अधिक तगड़े होने की अफ़वाह इस देश में अजीमुल्ला ख़ां के द्वारा ही फैली थी। अली नक़ी ख़ाँ ने अवधी सूबेदारों से, अयोध्या के राजा मानसिंह से तथा अन्य सामन्तों से मिलकर योजना को आगे बढ़ाने के लिये प्रयत्न किया होगा। अज़ीमुल्ला ख़ां की प्रेरणा से नाना पेशवा का विद्रोह के लिये जाग पड़ना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं। तीर्थ यात्रा के बहाने नाना साहब का संगठन करने के हेतु निकलना कुछ अजीब सी बात तो नहीं लगती जो विश्वास न किया जाय। ग़दर के समय के एक मराठी यात्री विष्णु भट्ट गोडशे ने पेशवा की कानपुर की लड़ाई का वर्णन किया है। उस चित्र में नाना पेशवा का व्यक्तित्व बोलता है। नाना और उनके दल के बाला साहब, राव साहब, राम राव और सब से बढ़कर महासाहसी तात्या टोपे अपनी शूरवीरता और संगठन शक्ति के अनोखे उदाहरण छोड़ गये हैं।

इतनी जगह घूम कर मेरी आस्था बलवती हुई है। अपनी शक्ति के अलावा अपनी कमज़ोरियां भी सामने आई हैं। खीरी के लोनेसिंह पास-पड़ोस के सामन्तों को दबोच कर कूप-मण्डूक की तरह अपने को बड़ा क्षत्रिय समझते हैं। बौंडी और

रेहुआ के सकुटुम्बी सगोत्री सामन्त ईर्ष्यावश हो एक दूसरे के सिर काट कर रण पूजने की महत्वाकांक्षा रखते हैं, पचास हज़ार रुपये की लालच के लिये पुवायां के जगन्नार्थसिह मौलवी अहमदउल्लाशाह को मार डालते हैं, अपने साढ़ू लोनेसिंह को धोखा देकर गिरफ्तार करवा देते हैं—यह बातें हमारी कमज़ोरी का प्रमाण हैं। इक्के-दुक्के अंग्रेज़ों को पकड़ कर उनके प्रति क्रूरता बरतना, सब कुछ कह-सुन कर भी हमारी कायरता का अत्यन्त लज्जाजनक उदाहरण है। अंग्रेज़ों ने भी ऐसे अनेक उदाहरण छोड़े हैं। मुंशी जहूरुलहसन अंग्रेज़ों की स्वर्ण मुद्रायें हड़पने के लिये उन्हें गिरफ्तार करा देते हैं यह भी शर्मनाक घटना है।

इस प्रकार मुझे अपनी अच्छाइयों और बुराइयों के प्रमाण मिले। बुराइयां हैं, पर हमारी अच्छाइयां भी उनके मुकाबले में कुछ कच्ची या कम नहीं बैठतीं। अट्ठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में फैली हुई देशव्यापी घोर अराजकता से संगठन, साहस और वीरता के यदि ऐसे उदाहरण हमें मिलते हैं तो बहुत ही मूल्यवान जान पड़ते हैं। अगर हमारे राष्ट्र में इतनी भी शक्ति न होती तो गदर में बुरी तरह कुचले जाने के बाद भारत की बहुमुखी प्रतिभा शतदल की भाँति इस प्रकार विकसित ही नहीं हो सकती थी जैसा कि हमारे इतिहास ने उसे प्रत्यक्ष देखा है। रामकृष्ण परमहंस, दादा भाई नौरोजी, रानाडे, तिलक, गोखले, दयानन्द, विवेकानन्द, गांधी, रवीन्द्र, अरविन्द, बंकिम, भारतेन्दु, रामतीर्थ, जगदीश चन्द्र वसु, रामानुजम्, रामन्, जवाहर, सुभाष आदि सभी अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व गदर के बाद उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ही अवतरित हुए। सनातन भारत, चीन, मिस्र,—प्राचीन सभ्यता की परम्परा वाले प्रत्येक देश तथा इनके अतिरिक्त रूस, तुर्की, बग़दाद, जापान, अफ्रीका सभी के लिये एक प्रकार से उन्नीसवीं सदी बड़ी क्रांतिकारी सिद्ध हुई थी। पतनशील सामन्ती प्रथाओं के कोढ़ से कुरूप, अरसे से गतिहीन, भौतिक विज्ञान की नई और महान् शक्ति से शून्य प्राचीन काल की महान् सभ्यता वाले अनेक देशों में एक ऐसा परिवर्तन होता दिखलाई दिया जैसा कि सदियों से नहीं हुआ था। विज्ञान की शक्ति बड़ी थी पर उसका उपयोग करने वाले स्वार्थी और अपेक्षाकृत हीन संस्कृति के थे। पुरानी सभ्यतावाले देशों के लिये वे चुनौती थे। भारत का गदर ऐसे अवसर पर हुआ था जबकि अन्य देशों में भी उथल-पुथल मची थी। दूर बैठे मार्क्स, एंगेल्स् भी भारतीय क्रान्ति के समाचार पढ़-पढ़कर, पृथ्वी के इस भाग में नव-जागरण को देखकर वैचारिक स्फूर्ति पा रहे थे। इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली आदि देशों के समाचार-पत्र हमारी लड़ाई

पर उत्साह से टिप्पणियां देते हुए समाचार छाप रहे थे।

मेरी आज तक यह समझ में नहीं आता कि हम आज कल के पढ़े-लिखे भारतीय सत्तावनी क्रान्ति के सिपाही विद्रोह उर्फ़ ग़दर नाम से आखिर चिढ़ते क्यों हैं। यदि किराये से किसी के लिए भी लड़ने वाला अचेत भारतीयजन तक अँग्रेज़ मालिकों से चिढ़कर विद्रोह कर उठा तो क्या इससे भारतीय क्रान्ति की नाक कट गई या नीची हो गई? सामन्ती शक्ति भी साथ थी, यह मान लिया; कुलीनों का भी कुछ अंश (महत्वपूर्ण अंश) क्रान्ति में सक्रिय सहयोगी था, यह होते हुए भी सिपाही विद्रोह को हमें छोटी चीज़ नहीं मान लेना चाहिये। सन् सत्तावन का सिपाही विद्रोह ऐसा ग़ज़ब का था कि एक बार सारे उत्तराखण्ड में व्याप्त हो गया। सिपाहियों के जोश से अफ़ीमची, विलासी और अपने मिथ्या दम्भ में सगोतियों के सिर पर रण पूजने की कायरता रखने वाले, फूट में पड़े सामन्तों की भुजाओं में भी क्षात्र-रक्त हुमक पड़ा। यह क्या मामूली बात है? सिपाहियों के परिवार वाले और उनके जैसे लाखों ग्रामीणजन जिस ज्वाला में खेलते-खेलते बढ़ गये उस ग़दर और उस सिपाही-विद्रोह को कोटि-कोटि प्रणाम। यह मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि हमारी जनता १८५७ के ग़दर के कारण 'गदर' शब्द को क्रान्ति का पर्याय मानती है। 'गदर' शब्द का मूल अर्थ जो है सो है, परन्तु हमारी जनता की समझ में जो नया अर्थ है वह भी कोशकारों को ग्रहण करना ही होगा।

रायबरेली

११ जुलाई। कारणवश अधिक दिन लखनऊ में रुकना पड़ गया। आज प्रातः सात बज कर पाँच पर यहां पहुँच गया। रायबरेली ज़िले के सूचना अधिकारी श्री हरिश्चन्द्र मेहरोत्रा मेरे सहपाठी और बाल-बन्धु हैं। उनका घर स्टेशन के सामने ही था। घर पहुँच गये। हरिश्चन्द्र ने कहा : "चन्दापुर और नायनराज के वंशज रायबरेली में ही रहते हैं और ये लोग आज कल में लखनऊ जाने वाले हैं, इसलिए उनसे आज ही मिल लिया जाय।" इच्छा तो यह थी कि शीघ्र से शीघ्र अवध के मर्दाना राणा की पुण्य-भूमि शंकरपुर के दर्शन करूं, परन्तु उस प्रोग्राम को दूसरे दिन के लिये रख कर सबसे पहले चन्दापुर के वंशजों से मिलने चल दिया। 'स्वतंत्र भारत' में श्री अंजनी कुमार के लेख से ही इस ज़िले के नाम पाये थे। उक्त लेख में गदर में भाग लेने वाले चन्दापुर

के राजा का नाम शिवदर्शन सिंह था। तब तक मुझे यह नहीं मालूम था कि शिवदर्शन सिंह दरअस्ल लोक-काव्य में प्रसिद्ध 'सुदरसन काना' हैं। चन्दापुर के श्री जितेन्द्र सिंह नवयुवक हैं, भले हैं। लखनऊ के कालविन ताल्लुक़दार कालेज में पढ़ते थे, तब वहां भी किसी सभा समिति के सिलसिले में अपने सहपाठी, मेरे आयुष्मान् ओमप्रकाश खुनखुन जी के साथ मुझसे मिल भी चुके थे। ज़मींदारी से पूर्व श्री जितेन्द्र सिंह गोद द्वारा अधिकार पाकर चन्दापुर राज के गद्दीधर सामन्त थे; अब भी राजा ही कहलाते हैं।

राजा शिवदर्शन सिंह पहले तो राणा वेणीमाधव के संगठन में थे, बाद में कमज़ोर पड़ गये। लोककवि श्री दुलारे उन्हें अमर कर गये हैं। राजा 'सुदर्शन' के बहाने मैं उस पूरे गीत को लिखने का लोभ संवरण नहीं कर सकता जिसे मैंने बहुत पहले सुना था और जिसके द्वारा ही राणा वेणीमाधव बख्श से मेरा करीब-क़रीब प्रथम परिचय हुआ था :

अवध मां रानाँ भयो मरदाना ॥
पहिल लड़ाई भई बक्सर माँ सेमरी के मैदाना।
हुवाँ से जाय पुरवा माँ जीत्यो तबै लाट घबड़ाना॥
नक्की मिले मान सिंह मिलिगे मिले सुदर्सन काना।
छत्री बंस एकु ना मिलिहै जानै सकल जहाना ॥
भाई बन्ध औ कुटुम कबीला सबका करौं सलामा।
तुमतो जाय मिल्यो गोरन ते हमका हैं भगवाना ॥
हाथ माँ भाला बगल सिरोही घोड़ा चले मस्ताना।
कहैं 'दुलारे' सुन मोर प्यारे यों राना कियो पयाना ॥

अब तो राणा वेणीमाधव के सम्बन्ध इतना कुछ जान चुका हूँ कि गदर के के सिलसिले में उनके नाम स्मरण मात्र से ही मन स्फूर्ति पा जाता है। देश के लिये सर्वस्व बलिदान करने वाले हुतात्माओं की स्मृतियाँ इसीलिये तो सहेजी जाती हैं। अस्तु।

वर्तमान राजा जितेन्द्र सिंह के पिता श्री चन्द्रलोचन सिंह भूतपूर्व राजा चन्द्रचूड़ सिंह, सी० आई० ई० के भाई हैं। उनसे पूछा: "राजा शिवदर्शन सिंह के सम्बन्ध में कोई पुराने कागज-पत्र या लेख आदि हों तो—"

"लेख मिलब तौ मुसकिल है। एक किताब है 'कनपुरिया बंस'—वहिमाँ राजा सिउदर्सन सिंह का हाल लिखा है। लड़ाकू हमेसा के रहे। नबाबी हुकूमत

रही। तबहूँ चकलेदारन ते लड़ाई होत रही। एक का तौ मारै डाला। फिर जब गदर भा तब अंगरेजन ते लड़े।"

श्री चन्द्रलोचन सिंह द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार राजा सुदर्शन उर्फ़ शिवदर्शन सिंह ने मालगुज़ारी कभी अदा न की, न नवाबों को और न अँग्रेजों को ही। शारीरिक शक्ति बहुत थी, चाँदी वाला रुपया चुटकी से मसल देते थे। घुड़सवार एक नम्बर के थे; घाघरा और गंगा के बीच में पूरे सवार माने जाते थे। घाघरा के उस पार इकौना के राजा मुन्ना और बलरामपुर के महराज दिग्विजय सिंह पूरे सवार माने जाते थे। उधर के लोग इन्हें आधा सवार कहते थे और इस प्रकार ढाई सवारों में इनकी गिनती थी।

पहले राणा बेणीमाधव के साथ इनकी टुकड़ी थी। बाद में अंग्रेजों ने चंदापुर की तोप पकड़ी। उस समय शिवदर्शन सिंह मौजूद थे। तोप से चन्दापुर का नाम मिटवाया गया, फ़िर भी पूरी तरह न मिटा। शिवदर्शन सिंह ने कहा कि तोप हमारी नहीं है। इस पर अँग्रेजों ने तिलोई के छोटे भाई बाबू ठाकुर प्रसाद पर फैसला छोड़ा। तिलोई और चन्दापुर में वैमनस्य चला आ रहा था। बाबू ठाकुर प्रसाद ने कह दिया कि तोप पर नाम तो चन्दापुर का ही लिखा हुआ है। इस पर इनका आधा इलाका ज़ब्त करने का हुक्म हुआ। शिवदर्शन सिंह से कहा गया कि या तो एक लाख रुपया दो या आधा इलाक़ा। हाँ, इलाक़े में यह रिआयत अवश्य की गई कि जो मौजे राजा देना चाहें उन्हीं को अंग्रेज़ सरकार स्वीकार कर लेगी।

लोगों ने सलाह दी कि एक लाख रुपया दे दो। राजा शिवदर्शन सिंह ने कहा: "सारेन का रुपैया न देब। रुपैया लयिकै बिलाइत चले जैहैं, औ मौजन पर तौ आगे कबहूं कब्जा कयि लीन जाई।"

राजा का इलाका सौ मौज़ों का था, पचास ज़ब्त हो गये। उन्होंने वे मौज़े न दिये, जिनमें ब्राह्मण ठाकुरों की बस्ती थी, कहा: "मौक़ा आने पर इन्हीं उच्चवर्ण वालों की सेना लेकर ज़ब्त किये जाने वाले इलाक़े पर फिर से अधिकार कर लेंगे।"

आधा इलाक़ा ज़ब्त कर इनका नाम बाग़ियों में लिख दिया गया। तब राजा सुदर्शन उर्फ़ शिवदर्शन सिंह ने अपने जीते-जी अपने पोते जगमोहन सिंह को गद्दी सौंप दी और राज-काज से अलग हो गये। राजा के अपनी कोई संतान नहीं थी। उन्होंने अपने भतीजे हरप्रसाद सिंह को गोद लिया था। हर प्रसाद सिंह

अपने पुत्र जगमोहन सिंह के जन्म के बाद ही परलोकवासी हो गये थे, इस लिये गद्दी जगमोहन सिंह को मिली। चंदापुर में एक तोप और थी। उसे चरक पर चढ़ा रातोरात अटरा भेजा जा रहा था। रास्ते में चरक टूट गया। तोप वहीं एक खेत में तोप दी गई। लेकिन बाद में पता चल गया। लोगों ने कहा कि यह चंदापुर की तोप है। कमिश्नर ने कहा कि आप क़बूल कर लें। पर राजा जगमोहन सिंह ने ऐसा न किया। लोगों ने कहा कि अटरा वाले राम बख्श सिंह के घर के लोग पकड़े जांय तो क़बूल कर लें। वहां की औरतें तक पकड़ी गईं। पेड़ पर लटका कर सख्ती की गई। तब तक राजा रामबख्श सिंह भी आ गये और राजा जगमोहन सिंह से कहा कि 'हां' न कहना। जब स्त्रियों पर अत्याचार होने लगा तो राजा जगमोहन सिंह कहैं "बाबा, अब बताय देई ?" राजा रामबख्श सिंह ने तब भी न कहने दिया।

फिर मामला रफ़ा-दफ़ा हो गया, मैक्डानल्ड साहब के ज़माने तक ये लोग बाग़ी लिखे गये, परन्तु उनसे चूँकि मित्रता थी इसलिये, उनके प्रयत्न से राजा जगमोहन सिंह का नाम बाग़ियों की सूची से निकाल दिया गया। दो ज़ब्तशुदा मौज़े भी लौटा दिये गये, एक तो जपालमऊ जो मऊ और मुरैनी के बीच में है और दूसरा राजापुर जो भिरथुआ और सीवन के बीच में है।

राजा शिवदर्शन सिंह के ज़ब्त किये गये आधे इलाक़े में से नौ मौज़े 'डियरा' वालों को मिले; छोटा बड़ा 'पारा' और 'तौली' मौरावां वालों को मिले; राघोपुर आग़ा अहमद जान पंजाबी को दिया गया; जेओना सरवर मियां वकील के बाबा को मिला; ठिकुरहा, माझ गाँव, भैयापुर, ताजुद्दीनपुर चौधरी साहब सुबेहा को दिये—ऐसे ही सब सरकारी खैरख्वाहों में वह आधा इलाक़ा बाँट दिया गया।

श्रीमान चन्द्रलोचन सिंह ने चन्दापुर घराने से संबंधित एक और कथा भी सुनाई। नसीरुद्दीन हैदर के समय में चन्दापुर के निकटवर्ती ग्राम ताजुद्दीपुर (ताजुद्दीनपुर) के एक दलजीत सिंह थे। वे नसीरुद्दीन हैदर की अर्दली में थे और उसकी नाक के बाल हो रहे थे। दलजीत सिंह और धनिया महरी नसीरुद्दीन हैदर का घर खूब लूटते थे। दलजीत सिंह ने बड़ा माल मारा।

नसीरुद्दीन को सूजाक की बीमारी थी। हकीम ने बैंगन खाने पर प्रतिबन्ध लगाया था। नसीरुद्दीन ने बड़ा हठ किया तो दलजीतसिंह ने बैंगन खिला दिया। संयोग से उसी रात नसीरुद्दीन का देहान्त हो गया।

उसके बाद ही दलजीत सिंह के यहां दौड़ आई। लूट हुई। दलजीत सिंह के यहां की स्त्रियां गहने आदि बहुमूल्य सामग्री लेकर चन्दापुर की ओर भागीं। राजा शिवदर्शन सिंह ने भी अपने आदमियों को लूटने भेजा। उन स्त्रियों से आभूषण छीन लिये गये। उन आभूषणों में एक नौलखा हार भी था। एक शाल थी, जो बहुत मूल्यवान थी। जब पता चला कि दलजीत सिंह का माल चन्दापुर में है, तो यहां भी दौड़ आई। राजा शिवदर्शन सिंह ने वह माल अपने मित्र सूर्यपुर बहरेला के राजा के यहां रखवा दिया। यह रियासत बाराबंकी ज़िले में थी। सूर्यपुर पर अयोध्या के राजा मान सिंह ने आक्रमण किया और बहुत सा माल लूट ले गये। उस लूट में वह नौलखा हार और शाल अयोध्या चला गया, बहुत दिनों तक वह हार अयोध्या में रहा।

फिर अयोध्या की एक रानी थीं। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी एक प्रसिद्ध पुरुष थे जिनका रानी जी पर बड़ा प्रभाव था। प्राइवेट सेक्रेटरी महोदय ने अपने लड़के के विवाह के अवसर पर रानी से कुछ ज्वेलरी, जिसमें वह नौलखा हार भी शामिल था, शादी के लिए उधार माँग ली। उसके बाद रानी ने कई बार तक़ाज़ा किया पर प्राइवेट सेक्रेटरी महोदय बराबर टालते रहे और वह हार उनके यहां ही रह गया।

दलजीत सिंह को श्री चन्द्र लोचन सिंह ने देखा था। उस समय दलजीत सिंह वृद्ध था, हर तरह से तबाह हो चुका था और आजीविका के तौर पर मरहम बेचा करता था।

नौलखा हार व्यापक सामंती दुराचार की कहानी का प्रतीक है।

दिन में हम लोग चन्दापुर कोट भी देखने गये। राजा शिवदर्शन के समय तक जो पुराना कोट था, वह उन्हीं के काल में ध्वस्त हो गया था ; राजा जगमोहन सिंह ने नई कोठी बनवाई थी।

श्री जितेन्द्र सिंह ने बड़े उत्साह से एक-एक कमरे, एक-एक जगह दिखलाई। पुराने काग़ज़ात, जिसकी लालच में यहां आया था, देखे, मगर राजा शिवदर्शन अथवा गदर से संबंधित काग़ज पत्र जान पड़ता है, चुन-चुन कर नष्ट कर डाले गये थे। राजा जगमोहन सिंह को 'कम्पेनियन ऑफ दि मोस्ट एमिनेंट ऑर्डर ऑफ दि इंडियन एम्पायर' (सी० आई० ई०) बनाया गया, दोयम नंबर के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बने, दरबार में 'मेडिल ऑफ ऑनर' मिला; वे भला फिर ऐसे काग़ज-पत्र घर में रहने देते।

श्री चन्द्रलोचन सिंह जी ने काग़ज़ात के संबंध में तो पहले ही कह दिया था

कि नहीं बचे, भूल-चूक से कोई काग़ज़ शायद रह गया हो तो हो; मगर घराने से संबंधित गदर या पुराने इतिहास का विवरण शायद हस्त-लिखित ग्रंथों में हो सकता है। पुस्तकों का इस राजवंश में किसी समय बड़ा आदर रहा है। राजा चन्द्रचूड़सिंह बड़े ही विद्याव्यसनी पुरुष थे। उनके देहान्त के बाद इक्कीस-बाईस हज़ार पुस्तकें रायबरेली के शारदा सदन पुस्तकालय को दे दी गई थीं।

हस्तलिखित पोथियों में प्रायः समस्त पुराण, महाभारत, दर्शन संबंधी साहित्य अब भी चन्दापुर महल के एक पोशीदा मालख़ाने में पुरानी टूटी अलमारियों में धूल और मकड़ी के जालों के साथ-साथ बाक़ी बच गये थे, कुछ अंग्रेजी उपन्यास और पुरानी छपी हुई किताबें भी थीं। आप्टे के सुप्रसिद्ध और अप्राप्य संस्कृत-अंग्रेजी कोश की दो प्रतियां देखीं। मनुआं डोल गया; एक प्रति का दान मांगने में मुझे तनिक भी लाज न आई। श्री जितेन्द्र सिंह बेचारे संकुचित-से होने लगे, बोले: "आप अवश्य ले जाइये। और भी जो पुस्तक चाहें ले लें।" मैंने मतलब की एक और पुस्तक भी ले ली। सन् १८९३ ई० में मेकमिलन कंपनी से प्रकाशित 'दि गोल्डेन बुक ऑफ इंडिया' में गदर के बाद के भारत, लंका और बर्मा देशों के हिज़ हाइनेस, राजा बहादुर, राय बहादुर, नवाब बहादुर, ए. बी. सी. डी. एक्स. वाई. ज़ेड. आदि सब क़िस्म के टाइटिल पाने वालों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इस 'गोल्डन बुक' के दर्पण में बहुत से सुनहरे सर्दार अपनी गदर की गद्दारी का स्पष्ट प्रतिबिंब झलकाते दिखलाई पड़ जाते हैं। राजा जितेंद्रसिंह ने राजा शिवदर्शन सिंह की एक छड़ी तथा एक अन्य छड़ी भी मुझे भेंट की।

हम पड़ोस के जनई ग्राम गये। किसी प्राचीन को दबाये हुये ढूह वहां पड़े हैं, उन पर मध्यकालीन ईंटों की एक मीनार खड़ी है। थोड़ी दूर पर ही एक इंदारा (बड़ा कुआँ) भी है, जिसकी ईंटें किसी प्राचीन काल की निशानी-सी अब शायद सौ-पचास ही बच रही हैं। कुँये में एक बड़े सांप की केंचुल भी लहरा रही थी।

हमारे साथ एक सरल हृदय भक्त मार्का ठाकुर युवक भी थे जिनका तकिया कलाम 'राम जी की इच्छा से' आते-जाते रास्ते भर मज़ा देता रहा। रामजी की इच्छा से वे सोशलिस्ट पार्टी के 'आँग्लमूर्ति हटाओ' आन्दोलन में जेल गये और अपनी पूजा-पाठ आदि में विघ्नबाधा देख रामजी की इच्छा से माफ़ी मांग कर लौट भी आये। एक क्षत्रिय जातीय-सभा में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पेश कर उसे पास कराने के लिये ज़ोरदार स्पीच दे डाली; वह प्रस्ताव रामजी की इच्छा से स्वयं उनके विवाह का ही था। परन्तु रामजी की इच्छा से भक्त ठाकुर अब तक कुँआरे ही हैं।

सायंकाल नायन राजवंश के श्री शिवदुलारे से भेंट हुई। नायन के राजा भगवान बख्श सिंह का नाम भी गदर के संबंध में पढ़ा था।

श्री चंद्रलोचनसिंह ने नायन राज़ से संबंधित एक बड़ी मज़ेदार कथा सुनाई थी। श्री शिवदुलारे की बातें यहाँ उद्धृत करने के पहले उस ग़दर के पहले की बात का उल्लेख कर देना उचित होगा।

नवाबी शाही सरकार को मालगुज़ारी न देना सामंतों का आम रिवाज़ था, यह मैं पहले भी कई स्थलों पर लिख चुका हूँ। नायन वाले भी सरकारी खज़ाने में झंझी कौड़ी नहीं देते थे। इसलिये उस क्षेत्र के शाही चकलेदार खानअली से उनकी आये दिन की अदावत रहा करती थी। एक बार खानअली नायनगढ़ का ध्वंस कर उस जगह तालाब बनवाने का प्रण कर निकला। उसने अपनी सेना को ललकार दी कि—

"मारौ मुरगा खाओ कलिया।
नायन खुदाय करौ तलिया॥"

नायन वालों तक यह बात पहुँच गई। उन्होंने अपनी सेना से कहा—

"मारौ बकरा खाओ कलिया।
टका न पाई खान अलिया॥"

ग़दर में, श्री शिवदुलारे के कथनानुसार, भगवान बख्श का विशेष हाथ न था, वे संयोग से उसमें फँस गये थे। बात यों हुई कि केशवापुर में अंग्रेज़ों का ज़िला दफ्तर और छावनी थी। केशवापुर नायन राज में ही था। जब ग़दर मचा तो नायन वालों ने छावनी लूटने की नीयत से हमला किया और बहुत सामान उठा लाये। उस सामान में सादे स्टाम्प कागज़ों का बंडल भी था। इन लूट के स्टाम्प काग़ज़ों पर बाद में गोस्वामी तुलसीदास जी की 'विनय-पत्रिका' की नकल की गई। लूट के काग़ज़ों पर रामनाम की लूट का विनय भरा लेखा लिखने का खयाल भी खूब है।

जीत हो जाने पर अंग्रेज़ों ने जब नायन वालों की गिरफ्तारी का प्रबंध किया तो यहां पंचायतें बैठ गईं। नायन के कई पट्टीदार थे। सबने मिल कर यह तय किया कि घर में जो सबसे बूढ़ा हो उसे गिरफ्तार करा दिया जाय तो बाक़ी लोग और राजपाट ज़ब्त होने से बच जायगा। भगवान बख्श सिंह सत्तर-अस्सी वर्ष के बूढ़े थे। उन्हें समझा दिया गया।

दूसरे दिन वे ही अंग्रेज़ों की कचहरी में हाज़िर किये गये और उन्होंने कह दिया कि दोषी मैं ही हूँ और कोई नहीं

अंग्रेज़ों ने बाक़ी पट्टीदारों का हक़ तो न छीना मगर इनकी पट्टीदारी का का भाग गुज़ारे के लिये एक गाँव देकर ज़ब्त कर लिया गया। फिर तो भगवान-बख्श बड़े छटपटाये, बड़े-बड़े तर्क लगाये मगर कोई असर न हुआ।

अंग्रेज़ों से जो माफ़ीनामा नायन वालों ने पाया था उसके शब्द श्री शिवदुलारे के कथनानुसार कुछ इस प्रकार थे "रऊसा-ए-नायन सल्तनते नवाबी के पाले-पोसे हैं। महज तमाशा की वजह से इन्होंने केशवापुर फूँक दिया था, लिहाजा इनका क़सूर माफ़ किया जाता है।"

इनके अतिरिक्त 'कनपुरिया क्षत्रिय वंश परिचय' नामक पुस्तक से, जो श्री जितेन्द्रसिंह के पास देखने को मिली, मुझे तिलोई टिकारी और मानसिंह घराना के ग़दर से सम्बन्धित होने की बात मालूम हुई।

तिलोई राजा के सम्बन्ध में उक्त पुस्तक में लिखा है: "राजा बुनियादसिंह ने अपने भतीजे जगपालसिंह को गोद लिया। इन्होंने पहले तो सन् १८५७ ई० के गदर में भाग लिया, परन्तु शीघ्र ही उसे छोड़कर अंग्रेज़ों को सहायता देना प्रारंभ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि बैस बागियों ने इन्हें बहुत सताया, परन्तु ग़दर की शांति होने पर इन्हें अठेहा के कनपुरिया रामग़ुलाम सिंह से ज़ब्त किया हुआ एक बड़ा इलाक़ा मिला।"

टिकारी रियासत के बाबू सर्वजितसिंह ने १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में अँग्रेज़ों की सहायता की—"कई भटकते हुए अँग्रेज़ों को अपने कोट में सुरक्षित रख कर इलाहाबाद पहुँचाया। इस सेवा के बदले में उन्हें भागूपुर की रियासत मिली, जो नायन ग्राम के कनपुरिया बाग़ी भगवानबख्श सिंह से ज़ब्त कर ली गई थी। इसके अतिरिक्त अठेहा के कनपुरिया ठाकुर रामगुलाम सिंह के ज़ब्त किये हुए चार गाँव मिले और यह भी रियायत हुई कि उनके जीवन काल तक वे माफ़ी रहेंगे। इसके अतिरिक्त पुरानी और नई रियासत का शुमार अवध की ताल्लुक़दारी रियासतों में हो गया और टिकारी के ताल्लुक़दार होने की सनद बाबू सर्वजित सिंह को मिल गई।"

गोस्वामी जी ने ऐसों की भी वंदना की है, उसी परिपाटी के अनुसार इन देश-जाति-द्रोहियों का वंदन करता हूँ।

टिकारी रियासत की एक पूर्वकालीन कथा भी बड़ी रोचक है और कायर सर्वजित सिंह के स्वाभिमानी वीर पितामह से सम्बन्ध रखती है।

कथा इस प्रकार है: बाबू जंगबहादुर सिंह का जन्म संवत् १८१८ विक्रमी

अर्थात् सन् १७६२ ई० में हुआ था। यह राज्य-प्रबन्ध में इतने कुशल और वीरता में इतने बढ़े-चढ़े थे कि इनका मान बादशाही दरबार में भी होता था। उन दिनों ज़मीन की मालगुजारी वसूल करने के लिये ठेका दिया जाता था, और ऐसे ठेकेदारों की चकलेदार संज्ञा होती थी। राज्य शासन सुदृढ़ होने के कारण ज़मींदार लोग प्रायः सरकारी मालगुज़ारी नहीं देते थे; कभी छिप जाते थे, कभी युद्ध करते थे, कभी पकड़े जाकर क़ैद में रहते थे, कभी अनेक दण्ड सहते थे। चकलेदारों को प्रायः पूरा अधिकार था कि जिस प्रकार चाहें रुपया वसूल करें। यद्यपि ये लोग नादिहन्द ज़मींदारों को अमानुषीय दण्ड देते थे, जैसे नाखूनों में बाँस की फरचियां ठुकवाना, विष्ठा का तोबरा मुँह पर चढ़वाना, जलते हुए लोहे के सूजे से पीठ पर लकीरें खिंचवाना, मुश्कें कस कर पेड़ में बँधवाना आदि, तथापि प्रधान लक्ष्य रुपया वसूल करना था; और इसके लिये अन्य बलवान ज़मींदारों को जब मालूम हो जाता था कि अमुक बलवान जमींदार चकलेदार की सहायता पर है तो वे चुपके से मालगुजारी दे देते थे। ऐसे बलवान ज़मींदार बाबू जंगबहादुर सिंह भी थे; यह जिसकी सहायता करते थे उसी की जीत होती थी; अतः इनकी धाक जमी थी।

बाबू जंगबहादुर सिंह इतने स्वाभिमानी थे कि मुसलमानी राज में हिन्दुत्व की आड़ लेकर "न वदेत् याविनीं भाषा प्राणैःकण्ठगतैरपि" की पूरी पाबन्दी करते थे। फ़ारसी-अरबी के हज़ारों शब्द उस समय तक साधारण बोल-चाल में प्रचलित हो गये थे; परन्तु इनकी धुन थी कि जिन शब्दों को यह अरबी-फ़ारसी शब्द समझते थे उनका उच्चारण मुँह से नहीं करते थे। यह बात धीरे-धीरे सरकारी अधिकारियों को भी ज्ञात हो गई। एक दिन एक चकलेदार ने परीक्षार्थ पूछा कि बाबू साहेब, आप फ़ारसी 'अस्प' को क्या कहते हैं; तुरन्त उत्तर दिया कि 'अश्व' कहते हैं। फिर पूछा कि 'फ़ीलवान' को क्या कहते हैं; कहा 'महावत' कहते हैं।

जो लोग इनसे ईर्ष्या रखते थे उन्हें शिकायत का पूरा मौक़ा मिला। उन लोगों ने बानू बेगम साहिबा से, जो उस समय फ़ैजाबाद में रहती थीं और जिन्हें नवाब अवध की ओर से सलोन और अठेहर परगने जागीर में मिले थे जाकर खूब गहरी शिकायत की कि यह आदमी आपके मुसलमानी धर्म का कट्टर विरोधी है, अन्य फ़ारसी शब्द तो कहता ही नहीं, आपको भी 'बेगम साहेबा' न कहकर 'तुरकिन रानी' कहता है। यह सुनकर बेगम साहेबा क्रुद्ध हो गईं और मौका देखने लगीं।

कुछ ही दिनों में मौका हाथ आ गया। बाबू जंगबहादुर सिंह के जिम्मे सरकारी मालगुज़ारी बाकी रह गई; इसी कारण उन्हें सन् १८२१ ई० में क़ैद कर लिया। फिर भी बेगम साहेबा को वही पुरानी बात याद दिलाई गई। उन्होंने कहा परीक्षा की जाय। सामने एक खेमा गड़ा था और एक भिश्ती मशक में पानी भरे आ रहा था। बाबू साहेब से खेमे की ओर इशारा करके पूछा गया कि यह क्या है; उत्तर दिया कि यह तो 'कपड़े का कोट' है। फिर मशक की ओर इशारा करके पूछा गया कि यह क्या है; उत्तर दिया कि यह 'पानी की मोट' है। प्रकट रूप से तो बेगम साहेबा ने प्रशंसा की कि यह बड़ा वीर पुरुष अपने धर्म का पक्का है; परन्तु भीतर-भीतर कुढ़ती रहीं कि इस क़ाफ़िर को हमारी ज़बान से इतनी घृणा है।

अंत में इन्हें दण्ड देने का मार्ग निकाला गया। बेगम साहेबा की सेना ने इनके गाँव भागीरथपुर पर धावा किया जहाँ इनके ज्येष्ठ पुत्र बाबू विन्ध्या सेवक सिंह शासन करते थे। युद्ध हुआ और उसमें बाबू विन्ध्या सेवक सिंह का शिर काट लिया गया। जब शिर बेगम साहेबा के सामने पेश हुआ तो उन्होंने आज्ञा दी कि यह शिर जंगबहादुर सिंह को दिखला कर पूछो कि किसका शिर है। हार्दिक दुःख पहुँचाने की पराकाष्ठा की तदबीर यही थी कि ज्येष्ठ पुत्र का कटा हुआ शिर दिखाया जावे। ऐसा ही किया, बाबू जंगबहादुर सिंह ने पहचान कर अभिमान के साथ कहा कि किसी वीर पुरुष का होगा। यह भी कहा कि "हमारे वंश के एक वीर पुरुष राजा बलभद्र सिंह थे जिन्होंने अपना शिर दे दिया था, और दूसरा वीर पुरुष यह है; इसकी वीरता के लक्षण अब भी मुझे इसके हँसते हुए-से मुख पर प्रतीत होते हैं।

कनपुरिया क्षत्रियों में मानसिंह घराने के ठाकुर रामगुलाम सिंह का नाम भी सत्तावनी क्रान्ति के सिलसिले में आता है। 'कनपुरिया क्षत्रिय वंश परिचय' में इनके सम्बन्ध में लिखा है : "ग़दर के समय रामगुलाम सिंह ने शंकरपुर के बाग़ी राना बेनीमाधो बख़्श का इतना बड़ा साथ दिया कि उसके दण्ड में इनकी सब जायदाद ज़ब्त करके तिलोई के राजा को देदी गई; इनके पास केवल चार गाँव गुज़ारे के लिये रह गये। ये भी पीछे से टिकारी के ताल्लुक़दार को दे दिये गये। इस प्रकार एक पुरानी रियासत का अन्त हो गया।

"स्थानीय जाँच में हमें ठाकुर रामगुलाम सिंह का जो हाल मालूम हुआ वह लिखते हैं। इसके लिये कोई प्रामाणिक काग़ज़ नहीं मिले किन्तु ज़बानी बातें मालूम

हुई हैं। ठाकुर रामगुलाम सिंह मुसलमान शासक की ओर से रियासत का प्रबन्ध करने के लिये नियत थे। कारतूस काटने के झगड़े में जो भारी बलवा हुआ और जिसमें कई फ़ौजें बिगड़ गईं उसी के सिलसिले में अनेक तालुक़दारों ने लखनऊ के बिरजीस क़द्र की सहायता के लिये आपस में एक अहदनामा लिखा कि अंग्रेज़ों का सामना करना चाहिये। जब काला कांकर के राजा हनुमंत सिंह के पुत्र लालता प्रतापसिंह प्रतापगढ़ जिले के बिसनाही हल्के के चाँदा स्थान पर मारे गये तब राजा हनुमंतसिंह तथा तिलोई के बाबू ठाकुरप्रसाद सिंह ने ठाकुर रामगुलाम सिंह के पास खबर भेजी कि अहदनामा तोड़ देना चाहिये। यह बात उनको पसंद न आई, और यद्यपि तालुक़दार लोग उनके विरोधी हो गये, तथापि उन्होंने बाग़ियों की सहायता करना बन्द नहीं किया। जब टक्कर साहेब का पड़ाव अठेहा में आया तब उन्होंने ठाकुर रामगुलाम सिंह को बुलाकर सुलह की बातचीत की, परन्तु उत्तर पाया कि हम इस समय बाग़ियों के हाथ में हैं; यदि उनका साथ छोड़ देंगे तो वे हमें ज़िन्दा न छोड़ेंगे। इस पर दोनों ओर विचार होने लगा। रामगुलाम सिंह ने भीतरी भाव से अंग्रेज़ों की सहायता का इरादा किया; और टक्कर साहेब नें उनकी रक्षा का कोई उपाय सोच कर भगवानदास कारिन्दा के हाथ सन्देश भेजा। परन्तु वह कारिन्दा ठाकुर साहेब के पास नहीं पहुँचा। इधर रामगुलाम सिंह ने उद्योग करके जनरल बेरू साहब को केशवापुर में बागियों के हाथ से बचाकर अपने साले, राजा हनुमंत सिंह के पास भेज कर खबर दी कि इन्हें रक्षा के साथ इलाहाबाद भेज दीजिये। राजा हनुमंतसिंह को अपनी खैरखाही दिखाने का अच्छा अवसर मिल गया। परन्तु रामगुलाम सिंह की मौजूदगी में पूरी नेक नामी राजा साहेब को नहीं मिल सकती थी, अतः उन्होंने सोचा कि रामगुलाम सिंह को पहले चूर्ण करा देना चाहिये। निदान उन्होंने किसी प्रकार समझा बुझा कर बेरू साहेब ही से रामगुलाम सिंह पर आक्रमण करा दिया। तीन पहर लड़ाई हुई जिसमें २ अंग्रेज ८५ अफ़सर ९५० सिपाही मारे गये। अन्त में रामगुलाम सिंह शंकरपुर के राना बेनीमाधौ के यहां चले गये और वहां से नैपाल भाग गये। कुछ दिनों पीछे जब रामगुलाम सिंह की नेकनियती का सुबूत अंग्रेजों को मिला तब टक्कर साहेब ने खून माफ़ करके उनको नैपाल से बुलाया और उन्नाव ज़िले में चार गाँव गुज़ारे में दिये। उनकी रियासत जो तिलोई को इन्तज़ाम करने के लिये दी गई थी वहीं रह गई।"

ठाकुर रामगुलाम सिंह की कुछ सिफ़ारिशी चिट्ठियां जो हमें उनके

उत्तराधिकारियों से मिल सकी हैं उनकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है। कोई नाम ठीक-ठीक नहीं पढ़े जाते।

ठाकुर रामगुलाम सिंह की सिफ़ारिशी चिट्ठियों का हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है।

[पत्र १]

रामपुर खजुरिहा के भूतपूर्व ताल्लुक़दार रामगुलाम सिंह को मैं यह चिट्ठी देता हूँ। सन् १८५८ ई० के अन्त में हमारी सेना ने उनका कोट उड़ा दिया, तब वह अपना अपराध अक्षन्तव्य समझ कर नैपाल भाग गये थे, परन्तु उसके दूसरे ही वर्ष के अन्त में उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया। चूँकि वह निर्दोष मनुष्य थे, और हमारी सरकार के प्रति किसी द्वेष के कारण नहीं किन्तु अनुचित परामर्श के कारण उन्होंने हानि उठाई थी, इसलिये उनके गुजारे के लिये मैंने उन्हें लार्ड कैंनिग से एक छोटी रियासत दिलवाई। तबसे उनका चाल-चलन बराबर ही बहुत अच्छा रहा है।

लखनऊ, २८ फ़रवरी, १८६६ ई०　　　　द: सी० बिंग फ़ील्ड

[पत्र २]

इधर कुछ ही दिनों में कई बार ठाकुर रामगुलाम सिंह से मिल कर मुझे हर्ष हुआ। किसी समय ज़िला प्रतापगढ़ के कुल परगना अटेहा के मालिक थे, परन्तु सन् १८५७ ई० के गदर में किसी अंश में सन जाने के कारण उनकी कुल रियासत जाती रही। उनके पुराने इलाके में मुझे कितने ही मामलों की जांच-परताल करनी पड़ी, और उनके बारे में मैंने बहुत कुछ सुना, परन्तु किसी समय कोई बात उनके प्रतिकूल न सुनी। अब उनका चालचलन बहुत ही अच्छा है; उनके पास यूरोपीय अफ़सरों की सिफ़ारशी चिट्ठियां हैं; जिनमें विंगफ़ील्ड साहेब (भूतपूर्व चीफ़-कमिश्नर) की भी चिट्ठी है। एक बड़ी रियासत के स्वामित्व की वैभवमयी अवस्था से गिरकर अब वह एक गाँव के ठाकुर की नीची हैसियत पर आगये हैं; इसका कारण लोगों की बुरी सलाह थी, न कि हमारी सरकार के प्रति उनका कोई द्वेषभाव था। इसलिये वह विशेष ध्यान के अधिकारी हैं। मैनें उन्हें सदा एक शीलवान सज्जन पाया।

द: एम० फ़ेरार, ए० एन० ओ० कैम्म कुढ़िया, ९-३-६९।

[उक्त पुस्तक की सन् १९३० ई० में केवल छह सौ प्रतियां वितरणार्थ छापी

गई थीं। रियासत बेरारा जिला रायबरेली के रईस बाबू रणबहादुर सिंह ने पण्डित चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए०, एल० टी० से उसे तैयार कराया था।]

ठाकुर रामगुलाम सिंह के लिये लिखे गये अंग्रेज़ों के सिफारशी पत्र यह स्पष्ट करते हैं कि सत्तावनी क्रांति के असफल होने के बाद अनेक 'स्वाभिमानी' क्षत्रिय, ब्राह्मण और उच्च वर्गीय मुसलमान ताल्लुक़ेदार अंग्रेज़ों के प्रति खैरख्वाही दिखलाते हुए उनके तलवे चाटते थे। अंग्रेजों के सार्टीफिकेट बटोरने की, नाक रगड़ने की बात देख, यह सोच कर हैरत होती है कि आखिर हमारे इन ताल्लुक़दार पुरखों का क्षात्र धर्म और स्वाभिमान कहां चला गया था। इन चरित्रों को देख कर कवि दुलारे के लोकगीत की राणा संबंधी वे पंक्तियां याद आती हैं।

"भाई बंध औ कुटुम कबीला सबका करौं सलामा।
तुम तौ जाय मिल्यो गोरन ते हमका है भगवाना।।"

मैं सोचता हूं नैपाल के जंगलों में भटकते हुए हमारे सत्तावनी क्रांति के नायकों को अपना राजपाट जाने, अंग्रेजों से हारने का शायद इतना ग़म न होता होगा जितना कि अपने साथियों के दुनियादारी की लालच से धोखा देकर साथ छोड़ने और अंग्रेजों के मददगार बन जाने का हुआ होगा। इन सामंतों ने आपस में अहदनामें किये थे, इस बात का नया प्रमाण ठाकुर रामगुलाम सिंह की इस पुस्तक में दिये गये परिचय से भी मिलता है।

एक दूसरी बात के प्रति भी संकेत मिलता है: जब किसी सामंत के संगठन छोड़ कर अंग्रेजों से मिल जाने की बात का पता क्रांतिकारी संगठन के लोग पाते थे तो भगोड़े सामंत को बहुत सताते थे। ऐन लड़ाई की गर्मी में मैं क्रांतिकारियों के इस 'पाप' को भी पाप मानने के लिये तैयार नहीं हूँ, कारण कि कठोर संघर्ष के काल में जो साथी दग़ा देता है उससे यह भी भय लगता है कि वह शत्रु पक्ष को संगठन की गुप्त बातें भी प्रकट कर देगा।

तीसरी बात यह मिली कि हमारे सामंतों में अनेक ऐसे थे जो 'पीसनहारी ने पीसा और समेटनहारी ने जस लूटा' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए आपस में घोर दग़ाबाजी कर जाते थे। अंग्रेजों को बचाकर राजा हनुमन्तसिंह की मार्फ़त इलाहाबाद भेजने का आयोजन करने वाले रामगुलाम सिंह राजा हनुमन्त सिंह से ऐसा ही धोखा खा गये। राजा हनुमन्त सिंह, इस पुस्तक के अनुसार ठाकुर रामगुलाम सिंह का जस लूट ले गये और उस लूट को सुरक्षित रखने के लिये उन्होंने रामगुलाम सिंह की झूठी शिकायत कर उन्हें तबाह भी करवा दिया।

ठाकुर रामगुलाम सिंह गुनाह-बेलज्ज़त शहीद हुए; न खुदा ही मिला, न विसाले सनम !

कनपुरिया क्षत्रियों में एक भी ऐसा दिलेर न उठा जो वैस क्षत्रिय राणा, विसेन क्षत्रिय देवीबख्श सिंह, और रैकवार वीर बलभद्रसिंह की तरह सत्तावनी इतिहास पर अपनी छाप छोड़ जाता ।

वैसे विभिन्न क्षत्रिय जातियों में कनपुरिया ही ऐसे हैं जो मूलतः अवधवासी कहे जा सकते हैं । कनपुरिया वंश के निकास की कथा भी बड़ी रोचक है । अश्वत्थामा के वंश में सत्याधर और वामदेव से कान्यकुब्ज शुक्ल और पाण्डेय लोगों के वंश चले । इन पाण्डेय लोगों में गेगासों के पाण्डेय बहुत ऊँचे माने जाते हैं । गेगासों ज़िला रायबरेली में गंगा तट पर बसा हुआ एक ग्राम है जिसका शुद्ध नाम गर्गाश्रम बतलाया जाता है । इसी ग्राम के एक पाण्डेय सूक्ष्म मुनि के नाम से प्रसिद्ध थे । लगभग साढ़े सात-आठ सौ वर्ष पूर्व मानिकपुर के गहरवार राजा मानिकचन्द निःसंतान होने के कारण दुःखी रहते थे । वे मुनि की सेवा में लगे । मुनि के वरदान से उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई । चूँकि कन्या के पिता ने मुनिवर को यह वचन दिया था कि मेरे जो भी संतान होगी, आपकी सेवा में रहेगी सो वह कन्या बड़ी होने पर मुनि की सेवा में रहने लगी । एक दिन मुनि ने प्रसन्न होकर उस लड़की को पुत्रवती होने का वर दिया । कन्या सहम गई, बोली, आपके वरदान से मुझे कलंक लग जायगा । मुनि बोले, कि पुत्र तेरे कान से उत्पन्न होगा । इस प्रकार कान से उत्पन्न होने वाले पुत्र से कनपुरिया क्षत्रियों का वंश चला ।

इस अनहोनी सी किंवदन्ती के अतिरिक्त एक उचित लगने वाला तर्क भी मिलता है । अविवाहिता कन्या से उत्पन्न होने वाला पुत्र कानीन कहलाता है । राजा मानिकचन्द्र की कन्या के गर्भ से उत्पन्न गेगासों के सूक्ष्म मुनि का पुत्र कानीन कहला सकता है ।

कनपुरियों का पूर्व इतिहास उनकी वीरता के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करता है; फिर भी समझ में नहीं आता कि १८५७ की क्रान्ति में कनपुरिया क्षत्रियों का इतिहास तुतलाता क्यों रहा ।

डलमऊ

दूसरे दिन भीरा गोबिन्दपुर और डलमऊ का प्रोग्राम बनाया । भीरा में राणा वेणीमाधव की अंगरेज़ों से ज़बर्दस्त मुठभेड़ हुई थी और डलमऊ में मौलवी अहमद

शाह के संबन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त होने की आशा थी। मौलवी साहब डलमऊ में रहे थे, वहां से उन्होंने राणा वेणीमाधव बख़्श को पत्र लिखा था। वह पत्र मैंने डाक्टर रिज़वी के पास देखा भी था।

डलमऊ में मुझे दुर्भाग्यवश मौलवी साहब के संबन्ध में कोई सूचना प्राप्त न हो सकी। गदर के प्रति वहां के लोग उदासीन थे, उसकी चरचा छेड़ने पर वे भरों और मुसलमान राजाओं की लड़ाई का हाल सुनाने लगते, मैंने उसी को प्राप्त कर अर्द्ध सन्तोष पा लिया। डलमऊ पंचायत के प्रधान पंडित गोपीनाथ जी ने डलमऊ में गंगातट पर स्थित भरों के पुराने क़िले के संबन्ध में बतलाया।

यह क़िला भरों का है, फगुए के दिन इस पर हमला किया गया था। फाग में भर लोग हथियार नहीं छूते थे। यों बड़ी बहादुर क़ौम थी, पर दारू पीने की लत उन्हें पड़ी हुई थी। सो होली में सब भर सिपाही, राजा दारू पिये मस्त पड़े थे, उसी में हमला हो गया। कहते हैं कि क़िले में पानी के फाटक भी थे। जब शर्की राजा के आदमी क़िला तोड़कर अंदर घुस गये तो भरों ने अपनी औरतों की इज़्ज़त बचाने के लिये पानी के फाटक खोल दिये, स्त्रियां डुबा दी गईं, दुश्मन उनकी इज़्ज़त नहीं ले पाया।

उस ख़ून भरी होली की याद में डलमऊ गाँव के लोग आज भी होली के दिन होली नहीं मनाते। तीन दिन तक सूतक लगता है, गांव में किसी के यहां तवा नहीं चढ़ता।

डलमऊ डाल बाल सात भाइयों का बसाया हुआ है, सातों भाइयों के मेले यहां लगते हैं। डाल बाल का मेला डलमऊ और पखरौली के बीच भादों में अमावस के बाद सोमवार को लगता है। कहते हैं कि डाल बाल जब लड़ते हुए भागे तो वहां पहुंचने पर तँबोली से कहा कि पान खिलाओ। तँबोली बोला कि तुम अपना सिर तो गँवा आये, अब पान कैसे खाओगे। तँबोली के यह कहते ही डाल बाल की सिरकटी लाशें धरती पर गिर पड़ीं। वहीं मेला लगता है। तीसरे भाई ककोरन थे। ककोरन का मेला मनिहर शर्की के पास सावन में लगता है। चौथे भाई बैंदान थे, बैंदान का मेला होली के बाद पहले सोमवार को बहाई में लगता है। कुम्हार गधे की मूरत बनाते हैं, जो उनकी समाधि पर चढ़ाई जाती हैं। पाँचवे भाई का नाम रहमाल था, रहमाल का मेला यहां से लगभग, पाँच मील दूर गंगापार होता है। यह मेला भी भादों में ही होता है और उसमें बड़े-बड़े दंगल होते हैं। बाकी दो

भाइयों का हाल नहीं मालूम। मनिहर शर्क़ी में ककोरन के इर्द-गिर्द भरवटिया अहीरों के बहुत से घर हैं। उनके यहां भरों के बहुत से क़िस्से मिल सकते हैं।

पंडित गोपीनाथ जी ने आगे कहा कि ग़दर के मौलवी का क़िस्सा शायद लतीफ़न पतुरिया बतला सके। उसकी अवस्था ८५-९० बरस की है।

मुसम्मात लतीफ़न से भेंट हुई। एक तो वह बहुत ऊँचा सुनती थीं, दूसरे ग़दर का हाल उन्होंने कुछ नहीं सुनाया। बार-बार उनकी स्मृति को खोदा तो कहने लगीं "अब्बा बतलावत रहैं कि हियां नीचे तोपैं लागी रहैं, और ऊपर से तोपैं लागी रहैं। बादसाह दिल्ली से आये रहैं। लियाक़त हुसैन के बेटे मुन्नन के पास तवारीख है। अउरु मँहिका ज्यादा कुछ खबरि नाईं है। आप बड़ी दूरि से आये हौ, हम किस्सा नहीं सुना सके, पर एक ठईं लावनी जरूर सुने जाव।"

बी लतीफन ने अपनी पिच्चासी की आयु को जवानी के दिनों की सान पर चढ़ा दिया। एक भजन क़िस्म की लावनी सुनाई।

बड़ी बी ने पूछने पर बतलाया कि चालीस-पचास वर्ष पहले डलमऊ में तवायफ़ों के अनेक घर थे, अब कोई नहीं रहा। रंगरेज़ भी बहुत थे अब नहीं रहे। इन दो का रहना क़स्बे की समृद्धि और न रहना उसकी दरिद्रता का सूचक है।

हम क़िले की तरफ चले। इस क़िले की कहानी 'निराला' जी ने अपने उपन्यास 'प्रभावती' में सदा के लिये सजीव कर दी है।

अजीब है ये दिमाग़ की मशीनरी। वर्षों के अंतर में न जाने कितनी बातों, घटनाओं और रोजमर्राह हुजूम में जो बातें खो जाती हैं, वह मौके पर अचानक ताज़ा तस्वीर की तरह मन की दृष्टि के सामने यों आ जाती हैं जैसे अभी हो रही हों। क़िले के ध्वस्त फाटक की ओर बढ़ते हुए दूर एक कमरे के खण्डहर को देखते ही मुझे लगभग इक्कीस वर्ष पहले का एक दृश्य याद हो आया। लखनऊ, भूसामंडी, हाथीखाना वाले मकान में, ऊपर सड़क के सामने वाले बड़े कमरे में, टहलते हुए ठीक कमरे के बीचोबीच कहानी सुनाते-सुनाते रुक कर 'निराला' जी भाव में तन्मय होकर अपना हाथ और आँखें सड़क की ओर ऊँचे उठाते हुए बोले: "मैंने—मैंने अपनी आँखों देखा, जैसे प्रभावती ऊपर के कमरे से उस चाँदनी में उतरती हुई गंगा की ओर आ रही है।" रामविलास जी, 'पढ़ीस' जी तो थे ही शायद कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी भी वहीं बैठे थे। डलमऊ में 'निराला' जी की ससुराल है। यहां के कुल्ली भाट भी 'निराला' जी की लेखनी से अमर हुए हैं।

ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ता गया, डलमऊ आकर अपनी गदर वाली झोली खाली रह जाने का दुःख भूल इस स्थान के प्राचीन वैभव की कल्पना में खोता गया। फाटक की बनावट, इक्का-दुक्का खड़े खण्डहर और किले के टीले का फैलाव, उसके अपने समय के मज़बूत और शानदार क़िलों में से एक होने के प्रमाण देते हैं। ऊपर आते ही गंगा के दर्शन होने लगे। बड़ा ही रमणीय स्थान है। नैमिषारण्य में पाण्डवों के क़िले के ऊपर से घुमाव लेकर बहती हुई गोमती और उसके आस-पास का दृश्य देखकर मुग्ध हो गया था, किन्तु यहां आकर उसे भूल गया। गंगा जी की शोभा ही निराली है और यहां इतिहास की स्मृतियां लिये खण्डहरों वाला विशाल टीला मनहूस न लगकर करुण बन जाता है। चारों ओर ईंटें ही ईंटें बिखरी हुई हैं—मुझे एक क्षण के लिये ऐसी लगीं जैसे रणक्षेत्र में हजारों सैनिकों के शव पड़े हों। यह बर्बरता जो हज़ारों बरस से दुनियाँ बराबर सहती आई है, वह सभ्यता की सुमेरु-सी इस बीसवीं सदी के उत्तरार्ध-काल में भला कैसे सही जाती है ? आये दिन अखबारों में बड़े-बड़े विध्वंसक आविष्कारों की अफ़वाहें आती हैं। क्या खूब है कि मनुष्य का मस्तिष्क नित नूतन विकास कर रहा है और फिर भी बर्बरता से पीछा नहीं छूटा।

और ऊँचे पर कुछ बना-चुना स्थान दिखाई दिया, कुटिया झलकी। पूछने पर भाई हरिश्चन्द्र ने बतलाया कि "कुछ वर्षों से एक साधु यहां रहते हैं, उन्होंने ही ऊपर सब साफ़ कर लिया है। ये ईंटें बटोर-बटोर कर ही ये देखो दीवारें खड़ी की हैं। उनके कारण यहां जंगल में मंगल हो गया है।"

बाबा जी से भेंट हुई; कोई पच्चीस-छब्बीस वर्ष की आयु होगी। सीधे, भले, अपने रस में आधे बावले बाबा जी प्रेमी जीव हैं। बताशे खिला कर ठंडा पानी पिलाया, फिर गीता पर बातें होने लगीं, फिर मैंने पूछा: "यहां आपको रहते कितने वर्ष हो गये ?"

हँस कर बोले: "उँगलियों पर तो याद नहीं फिर भी अन्दाज मेरा ये है कि नौ-दस बरिस पहिले आये रहे।"

"ये स्थान खोदकर चौरस करते समय आपको पुराने सिक्के या मूर्ति इत्यादि या और कोई पुरानी वस्तु मिली ?" मैंने पूछा।

"तीन ठइँ ताला निकले, पुराने जमाने की तुलसी की गुरिया मिलीं, हाथी के दाँत मिले और जब इँदारे की सफाई शुरू की तौ तीन ठइँ बड़े-बड़े सर्प भी निकले, अब वो प्राचीन काल का इँदारा बिलकुल साफ हो गया है, उसमें जल निकल

आया है, वही जल आप लोगों ने इस समय पान किया है।" निकली हुई वस्तुयें बाबा जी ने कहीं इधर उधर फेंक दी, सर्प इसी टीले पर अन्यत्र छुड़वा दिये।

हम बारहदरी देखने के लिये गंगा के किनारे की एक दीवाल पर चढ़कर ऊपर गये। यही वह बारहदरी है, जिससे 'निराला' जी की 'प्रभावती' उतरी थी। क़िले का एकमात्र यही स्थान अब तक पूरा बना बचा हुआ है। बारहदरी के ठीक नीचे गंगा मोड़ लेकर आती हैं। उस पार दूर-दूर तक वृक्षों से छाये हुये मैदान गंगा के प्रसाद से हरे-भरे मनोरम लगते हैं। बारहदरी के नीचे ही पक्का घाट है, छोटा सा मन्दिर, उससे कुछ दूर आगे दिखलाई पड़ने वाले शिखर और उसके बाद वृक्षों के समूह के बीच-बीच में खण्डहरों की बस्तियां।

यहां से क़िले का पूरा टीला देखकर उसकी महत्ता का चित्र सामने आ जाता है। बाबा की कुटी का स्वच्छ स्थान, उसके बाद खण्डहर और कंकड़ ईंटों से भरा टीला, दूर पर दूसरे बुर्ज के ढूह—लगता है कि किसी समय उधर भी बुर्ज और बारहदरी रही होगी। अनोखे प्राकृतिक सुहावनेपन वाले डलमऊ में खण्डहरों की बस्तियां दूर तक फैली हुई, बड़ी पीर जगा देती हैं।

भीरा गोविन्दपुर

हम लोग भीरा गोविन्दपुर की ओर चल दिये।

भरों के खण्डहरों से युक्त इस गाँव में पहुँचते ही हमें कुछ विद्यार्थी मिल गये। हमारा आशय जान उन्होंने बैठने का प्रबन्ध किया और आनन-फानन में लोगों को बुला लाये। थोड़ी ही देर में पच्चीस-तीस व्यक्ति जमा हो गये।

पंडित भगवती प्रसाद भट्ट ने बतलाया कि पुराने बुज़ुर्गों के कथनानुसार गाँव के लोग भाग गये थे। अंगरेजों ने कहा था कि चौबीस घंटे के अंदर गाँव खाली कर दो; फिर भी कुछ लोग अपनी जायदाद बचाने के मोह में यहीं छिपे रह गये। हमारे एक बुजुर्ग भी छिपे रह गये। छत पर बैठे थे, इसी रास्ते पर अंगरेजों की पलटन गारद लगा रही थी, किसी अंगरेज ने देख लिया। गोली मार दी। उनकी लाश आँगन में गिर पड़ी। कई दिनों बाद जब गाँव वाले लौटे तो हमारे घर के लोगों ने उनकी लाश विकृत अवस्था में पड़ी हुई देखी। यह घटना कार्तिक की देवउठान एकादशी के दिन हुई थी।

श्री केदारसिंह ने बतलाया कि पिता बतावत रहे···गौरमिंट की फौज लालगंज

से बड़ैला तालाब के किनारे किनारे आती थी। इस गांव में हमारे पुरखों की जमींदारी थी। यहां से लोग दही, मुर्गी, खाने पीने का सामान लेकर पहुँचे। अंग्रेजों ने पूछा कि यहां कोई लड़ने वाला तो नहीं है। लोगों ने कहा, नहीं हुज़ूर। पर तभी राना की फौज शंकरगंज, महेरू से होती हुई आ रही थी। गांव के पास एक भीठ है, वहीं राना की सेना पहुँची। वहां से अंग्रेजों की सेना देखी। राना ने कहा कि यह गांव हमें बहुत प्यारा है, यहां लड़ाई न हो। मगर साथ के लोग बोले कि आज एकादशी है शत्रु सामने है, छोड़ना न चाहिये। बस फिर क्या था। राणा के साथ एक तोप थी, फ़ायर आरंभ कर दी। संग्राम होने लगा। बाद में इस गाँव में बड़ा अत्याचार हुआ। पहर दिन चढ़े लड़ाई शुरू हुई और दो दिन तक होती रही। फिर राणा की फौज भागी। अंग्रेजों ने बड़ी काट छाँट से काम किया, उत्तर और पूरब दो ओर से राणा की फ़ौज घेरी। पश्चिम की तरफ़ भागे। राणा साहब के कई आदमी गांव के घरों में छिपे रहे। जिनके पास मसाला (गोली बारूद) था, उन्होंने बड़ी मार मारी। जब तक मसाला रहा, लड़ते रहे, फिर मारे गये।

श्री गयादीन ने बतलाया : "हमरे परपाजा एकादसी का मरे। लराई मां मरे। हमरे घरे के केवाँड़न मां कुल्हाड़ी का घाव बना है।"

श्री शिवचन्द्र मणि ने अपने घर के बड़े-बूढ़ों से सुनी हुई बात सुनाते हुए कहा कि अंग्रेजों ने स्त्रियों पर बड़े अत्याचार किये। राजबहादुर सिंह के मकान में एक स्त्री थी, जब अंग्रेजों ने देखा तो उसकी ओर दौड़े, उसने छत से कूद कर प्राण दे दिये। अनेक घर फूंके गये। यह भी कहा जाता है कि प्रातः काल की पूजा राणा ने यहीं की थी।

श्री लक्ष्मीनारायण शुक्ल ने बतलाया : "राणा हियां मौजूद रहे, उनके आदमी मौजूद रहे, बिनहरा की ओर ते अंग्रेजन की फउजैं जात रहीं। हिया लोगन ते पूछिन कहां है दुश्मन। बतावा गा कि बनहुरा मा है।"

राणा के संबन्ध में कहा : "सामने से फउजैं निकलीं, सिपाही कहिन कि दुसमन जाय रहा है। राना बोले कि निकल जाय देव। मुलु सिपाही न माने, फैर किहिन। दुइ ओर ते डगर लागि। जब मसाला चुकिगा तौ राना कहिनि कि चलौ भागौ। पर एक सिपाही कहिसि कि हम न भागब। राना तौ घोड़ा प असवार होइकै चले गये; मुलु सिपाही फुट-फैर करत रहे। हमरे पंचम सिंह बतावत रहे कि याक घरे मा घुसगे तउन अंग्रेज वहिमां आगि लगाय दिहिन। अबहीं तलक बहुत से गोला बिरवन मां लगे रहे।

"फिर—बहुत दिनन की बात है—हम बच्चा रहे, दस-बारा बरिस के, तब एक मनई गेरुआ बस्तर पहिने रहै, दुइ कुत्ते साथ रहैं; उइ केसरुआ के मैदान मां गूलर के तरे उतरे रहैं। उइ दुइ दिन रहे, पूछैं पंचम सिंह हैं, फलाने सिंह हैं, फलनिया है, ई सब पूछैं। फिर कहैं हमरे साथ चलौ। फिर कोउ गा नाहीं। जानै वाले कहैं कि यहै राना हैं। मँझोले कद के रहैं, पक्की छोटी दाढ़ी रहै। उनके बेटा का चहलारी मां गुजारा मिला।"

भीरा गोविन्दपुर में मुझे राणा संबन्धी अनेक नये-पुराने लोक गीत सुनने को मिले। सर्व श्री गयादीन, सूरजबकस सिंह, भजनियां सत्यनारायन, कृष्ण नारायन, शिवचन्द्र मणि शुक्ल, रामशंकर शुक्ल, भोलानाथ, बजरंगसिह और शारदाप्रसाद ने अनेक नये-पुराने गीत सुनाये। श्री रामशंकर शुक्ल की सरदारी में गांव के युवकों ने ढोल, मँजीरा आदि के साथ यही गीत फिर गाकर सुनाये। उस समय पानी झमाझम बरस रहा था। हम लोग घंटा-डेढ़ घंटा तक रस-मग्न रहे। फिर बड़ैला ताल देखते हुए रायबरेली की ओर चले। गाड़ी दलदल में धँस गई। खैर, वहां बाज़ार था, आनन-फानन में सहायता मिल गई। लगभग चार फ़र्लांग बाद नहर के रास्ते पर फिर गाड़ी धँस गई। हम बड़ी चिंता में पड़े। ड्राइवर बेचारा फिर भीरा गया; घन्टे भर में भीरा से पचीस-तीस आदमी आ पहुँचे। गाड़ी फूल सी उठा कर अलग खड़ी कर दी। और फिर 'ठोकर' मार्ग से अर्थात् मज़बूत सड़क से पक्की सड़क तक पहुँचाने के लिये भी कुछ लोग हमारे साथ आये। भीरा वालों ने आजन्म के लिये मुझे बांध लिया।

शंकरपुर

दूसरे दिन सुबह शंकरपुर पहुँच गये। राणा बेनीमाधव के नाम से संयुक्त यह स्थल, पावनपुरी की तरह मुझे प्रतीत हो रहा था। अपने बचपन में ग़दर संबन्धी बातें सुनते हुए तीन चार नाम मेरी स्मृति में सदा के लिये बैठ गये थे, झांसी वाली रानी, नाना, बिरजीस क़दर, हज़रतमहल बेगम और राना। राणा के संबन्ध में एक बात यह भी याद थी कि छत्रपति शिवाजी की भाँति उन्हें भी देवी ने प्रकट होकर अपने हाथ से तलवार दी थी।

शंकरपुर के निकट पहुँचते ही पेड़ों के झुरमुट के पास एक मन्दिर की ओर संकेत कर भाई हरिश्चन्द्र ने कहा: "यही देवी का मन्दिर है, जहां राणा पूजा

करते थे।"मेरा मन श्रद्धा से भर गया—इस समय देवी के प्रति नहीं वरन् राणा के प्रति।

,सादा बना हुआ मन्दिर है, वहुत बड़ा भी नहीं है। यहां मूर्ति नहीं, देवीपीठ है, अर्थात मन्दिर के बीचोबीच एक चौकोर चबूतरी है, जो बीच से ढाल नुमा उठी हुई है। आलों में दो खण्डित मूर्तियां रक्खी हुई हैं। अन्दर की चारों दीवारों में चार चित्र बने हुए हैं, दो पुरुषों के दो स्त्रियों के, एक चित्र पट्टेदार दाढ़ी वाले साफ़ाधारी व्यक्ति का है जो राणा वेणी माधव बख्श बतलाये जाते हैं। उसके ठीक सामने दूसरी दीवार पर लटकती हुई बड़ी मूछों वाले व्यक्ति राणा के पिता हैं। नारी छवियों में एक ओर राणा की माता हैं और दूसरी ओर उनकी पत्नी। ये तस्वीरें भद्दी बनी हैं।

मन्दिर के बाहर आलेनुमा एक स्थान में कुछ घिसी खण्डित मूर्तियां रक्खी हैं। एक गणेश जी की है, एक तलवारधारी किसी व्यक्ति की है। मूर्तियां भद्दी हैं।

यह मन्दिर कभी क़िले के सीमा के अन्दर था; मर्दाने भाग में फाटक के पास स्थित था।

मन्दिर के दाहिनी ओर एक पुराना वटवृक्ष है और दूसरी ओर बाल क्रीड़ा केंद्र, जिसका उद्‌घाटन राज्य के मुख्य मंत्री डा० संपूर्णानन्द जी ने किया था। मन्दिर के सामने ही स्मारक भवन का भी शिलान्यास हो चुका है। पत्थर लगा है, परन्तु उसके आस-पास ईंटें खिसकने लगी हैं। देवी के मन्दिर के सामने लगभग दो सौ गज़ दूरी पर एक और छोटा मन्दिर दिखलाई देता है। कहते हैं कि यह क़िले के जनाने भाग में स्थित था और सुन्दर बना हुआ माना जाता था। यह मन्दिर अब शून्य पड़ा है। जनाने मन्दिर के आगे आंगन था, यह बतलाया जाता है। इस मन्दिर के पीछे एक तालाब है, यह भी क़िले के अन्दर ही था। पास की बस्ती के एक सज्जन, कहीं फाटक बलताते थे, कहीं पर कोठरियां। मैं वीरान पड़ी उस जगह में इन सब की कल्पना करता फिरता था। मंदिर के पास ही एक पुरवा बसा है, जिसे फुलवारी का पुरवा कहते हैं। यह फुलवारी कभी क़िले के अन्दर ही थी। क़िला अपने वैभव काल में काफ़ी बड़ा रहा होगा। चार्ल्स बाल ने अपनी किताब में उक्त क़िले का वर्णन लिखा है, जिसके अनुसार क़िले के चारों ओर घना और कटीला जंगल था, जिसके अंदर होकर किसी शत्रु का आना अत्यंत कठिन था। क़िले के चारों ओर गहरी खाईं थी और उसका फाटक वहुत मजबूत था। अंदर सभा भवन, दीवानख़ाना और ज़नानी हवेली क़ीमती साज सामानों से पटे पड़े थे।

फुलवारी के सज्जन ने बतलाया कि ठाकुर गजाधर सिंह राणा का सारा हाल जानते हैं, वही हमारी सहायता कर सकेंगे और राणा के संबन्ध में आल्हा बिरहा फाग आदि सुनाने वाले दो सज्जन जो फुलवारी में रहते हैं उन्हें लेकर वे भी शीघ्र ही वहां पहुँच जायेंगे।

ठाकुर गजाधर सिंह का मकान क़िले के क्षेत्र से लगभग दो फ़र्लांग दूर था। बड़ा मकान, बड़ा फाटक ठाकुर साहब के वैभव का परिचय दे रहा था। उनकी आयु साठ-पैंसठ के लगभग होगी। वे शंकरपुर पंचायत के प्रधान भी हैं। ठाकुर साहब के वृद्ध मामा, युवक पुत्र और आस-पास के दो एक व्यक्ति जुट आये।

ठाकुर गजाधर सिंह ने बतलाया : "यूँ तो जहाँ आप बैठे हैं वह भी शंकरपुर ही कहलाता है मगर असली जगह वही है जहां आप होके आये हैं। देवी के मंदिर के पास उत्तर में जो पुरवा बसा है वह गदर के बाद का है पहले वहां फुलवाड़ी थी इसी लिये उसे फुलवाड़ी का पुरवा कहते हैं। ताल के किनारे की शिवलिया गढ़ी के आंगन में थी; ताल गढ़ी के बाहर था।

"पहले ठाकुर शिवप्रसाद सिंह शंकरपुर के मालिक थे। फतेबहादुर सिंह उनके बेटे थे। राम नरायन सिंह उनके छोटे भाई थे। फतेबहादुर का पुरवा उत्तर-पूरब के कोने में हैं और आज कल शंकरपुर ही कहलाता है। फतेबहादुर का देहान्त अपने पिता ठाकुर शिव प्रसाद सिंह के सामने ही हो गया था।

"रामनरायन सिंह के तीन बेटे थे : राना बेनीमाधो, बाबू नरपतसिंह और बाबू युवराजसिह। जगतपुर में पुलिस स्टेशन के पीछे उत्तर की ओर एक बड़े मकान का खण्डहर आज भी पड़ा है। यही रामनरायन सिंह का मकान था।

"शिवप्रसाद सिंह के बाद बेनीमाधो ने अपने ताऊ की गद्दी पाई। राना बेनीमाधो तब तक सयाने नहीं हुये थे, छोटे ही थे। उनके दोनों छोटे भाइयों में से मँझले नरपतसिंह तो अपने पिता के मकान में ही रहे मगर छोटे युवराज सिंह भवानीबख़्श के पुरवा में रहने लगे। वहां उनकी गढ़ी है जो पुराना थाना के नाम से प्रसिद्ध है। और जो बेनीमाधो के पिता का मकान है, वह बाबू बंगाली की कोठी के नाम से प्रसिद्ध है। ये बाबू बंगाली अंग्रेज़ों के ख़ैरख्वाह थे। राना की जायदाद ज़ब्त होने पर बंगाली को उनके बीस गाँव और वो मकान इनाम में दिया गया था। लगभग पैंतालीस बरस हुये बाबू बंगाली दक्षिणारंजन मुखर्जी, जिनको ये जगह इनाम में मिली थी उनके पोते कुँवर भुवन निरंजन मुखर्जी अपनी जायदाद खजूर गाँव वालों को बेचकर चले गये।

"राना बेनीमाधो के एक चाचा और थे, उनका नाम ठाकुर शिवगोपालसिंह था।

"राना की जब अंग्रेज़ों से लड़ाई हुई तो वे अपने भाई, लड़के, परिवार के सब लोगों को लेकर लड़ते-भिड़ते चले गये। राना के नैपाल जाने के बाद उनके भाई और पुत्र सब लौटकर यहां आ गये। गौरमिन्ट की ओर से उन्हें चहलारी में गुज़ारे के लिये जगह मिली। राना बेनीमाधो के बेटे राना रघुराज सिंह निःसंतान मरे। तब उनके चाचा ठाकुर शिवगोपाल सिंह के लड़कों को वह इलाक़ा मिल गया। उस वंश के चन्द्रभाल सिंह, शिवदयाल सिंह और सूर्यविक्रम सिंह की रानियां मौजूद हैं। शिवदयाल सिंह के कई लड़के हैं, पर एक का नाम मालूम है, इक़बाल बहादुर सिंह।

"राना बेनीमाधो के बेटे राना रघुराज सिंह के नाम से रघुराजगंज बाज़ार बसाया गया।

"राना की ननिहाल नायन वालों के यहां थी। जब खान अली ने नायन पर हमला किया तब राना छोटे थे और अपने ननिहाल वालों की ओर से लड़े भी थे। उस लड़ाई में उन्हें घाव भी लगा था।

"लखनऊ की नवाबी सरकार में ये नाज़िम थे। वाजिदअली शाह ने नाज़िम बनाया था। ये उनकी तरफ़ से कहीं लड़ने गये, नवाब से बीड़ा लेकर गये और फ़तह किया। इस पर नवाब ने इन्हें 'सिरमौर राना बहादुर दिलेर जंग' का खिताब दिया। सभी कुछ दिया।

"पहले इनके दो सौ उन्तालीस गाँव थे। अंग्रेज़ों ने जब नवाब का राज लिया तो इनका भी कुछ इलाक़ा ज़ब्त कर लिया। ये अंग्रेंज़ों के बड़े खिलाफ़ हो गये। इन्होंने बेगम का और बिरजिसकदर का साथ दिया। पहले अंग्रेज़ों ने इन्हें मिलाने के जतन किये। इनकी बीरू साहब से दोस्ती थी, इन्होंने कभी बीरू साहब की जान बचाई थी। बीरू साहब ने कहा कि आप मिल जाइये, जितना इलाक़ा हम जीतेंगे उसका आधा आपको दे देंगे। मगर राना ने कहा कि हम 'धरम के बदे लड़ब बेगम और बिरजिस कदर का साथ न छोड़ब।'

"अंग्रेज़ी फ़ौजें एक परसदेपुर की ओर से और दूसरी गुरबकसगंज की ओर से आईं; एक सेमरी में थी वो रास्ते में मिली, भीरा गोविन्दपुर में राना से लड़ाई हुई।

"शंकरपुर से निकलकर राना 'गढ़ी नारेपर' (नरेन्द्रपुर) गये, वहां से भीरा पहुँचे। राना का विचार यही था कि यहां लड़ाई न हो, इसीलिये निकल गये।

"राना दुर्गाजी के बड़े भक्त थे। दुर्गाजी के मन्दिर में वे बड़ी देर तक पूजा किया करते थे। कहते हैं कि पूजा करते-करते उनकी तलवार म्यान से बाहर निकल आती थी। कहते हैं कि यह मन्दिर गढ़ी की खिड़की में था और उनके समय में कोठरी की तरह बना था।

"गदर के बहुत बरसों बाद साधू के भेष में दो बार राना यहां आये थे। पहली बार तो मेरी उमर छोटी थी, समझ नहीं पाया। दूसरी बार जब आये तब मैं चौदह-पन्द्रह बरस का था। राना लाल वस्त्र पहने थे, गेहुँआं रंग था और छोटे कद के थे, वे अपना नाम रविनाथ ओझा लाल वस्त्रधारी बतलाते थे।"

मैंने पूछा : "दूसरी बार जब आये, उस बात को आपकी वर्तमान आयु के हिसाब से कितने बरस हो गये।"

ठाकुर साहब ने कहा "आप यों जोड़ लीजिए कि सन् चौदह वाली बड़ी लड़ाई बाद में हुई थी, उसके साल सवा साल पहले आये थे। तो उस समय की बात आपको सुनाता हूँ। बैंसन की उमरी में एक परसन महराज रहते थे। वो राना की फ़ौज में रह चुके थे। दूसरी बार जब राना बेनीमाधो यहां आये तब परसन महराज अंधे हो चुके थे। परसन बाबा मिलने आये और उन्होंने राना की परिच्छा ली, कहा 'हमैं दिखात नाहीं महराज। भीरा के हवाल बताओ।' तब राना बोले, 'का करिहौ।' परसन बाबा फिर कहिनि कि नाहीं महराज बतउबै करौ। तौ उइ कहिन कि एक कुचड़ी दही। यह सुन कर परसन बाबा 'अरे मोर राजा' कह कर उनसे लिपट गये और रोने लगे। इसकी किहानी ये रही कि भीरा में राना को घोड़े से उतरने का मौक़ा न मिला और वह बहुत भूखे थे। तो परसन बाबा कहीं से जुगाड़ कर के उनके लिये एक कुचड़ी दही ले आये। वही याद दिलाई थी।

"मेरे पिता जी का नाम ठाकुर यदुनाथसिंह था, वे भी रोज राना की कचहरी करते थे। राना जब दुसराय के बाबा के भेस में आये तब की बात है। एक दिन राना साहब ने उनसे कहा कि हमने सुना है कि शिवराज पर कर्जा हो गया है। उनको हमने बुलाया था, पर वो आये नहीं। आते तो हम उन्हें अपना खज़ाना बता देते।"

मैंने पूछा : "ये शिवराज कौन थे?"

"शिवराज सिंह, खजूर गांव के राना।"

ठाकुर साहब के वृद्ध मामा ठाकुर जगतपाल सिंह भी वहीं बैठे थे। उन्होंने कहा: "जब राना यहां आये थे तो मैं भी आया था। मंदिर के पास उनकी कचहरी

लगती थी, मैं भी गया। मुझसे पूछा, 'कहां के रहने वाले हौ?' मैं बताया जिला प्रतापगढ़ तरौल के, तब राना तरौल के बाबू गुलावसिंह का हाल कहने लगे। कहा कि बाबू गुलाव सिंह से हमारी दाँतकाटी रोटी रही, बड़ी दोस्ती रही। उनके यहां से बहेलिये यहाँ हमें शिकार कराने आते थे, कहते-कहते उनकी आँख में आँसू आ गए।"

ठाकुर गजाधरसिंह ने कहा: "एक बार हमारे पिता जी ने पूछा कि महराज आपका खर्चा कहां से आता है, तो बोले वेगम परबन्ध कर गई हैं, हमको मिलता है उनका दस-बीस रुपये रोज का खर्चा था। एक अंग्रेज़ी पास सेवक, चाहै सिकिटरी कहौ चाहै कुछु कहौ, उनके साथ रहता था। तीन चार सेवक और थे।

"राना महाभारत बहुत बाँचते थे—पहले भी बाँचते रहे। और पहले वे शिकार के भी बड़े शौक़ीन थे। कहा करें कि जिस राजा के राज में हिरन बुढ़ाय के मर जाय उस राजा को नरक होता है।

"राना साहेब जब बावा के भेस में आये तो नवाबगंज से लल्लन रंडीआई। कहा कि महराज आये हैं, मैं नाचूंगी। राना साहेब ने उसे एक दुशाला और कुछ रुपया दिया।

"अली और इमामी यहाँ के बड़े पहलवान थे। अली मिलने आया। उससे पूछा कि तुम्हारा भाई इमामी कहां है। उसने कहा कि मर गया। अली पहलवान फिर बोला कि महराज हम आपके नाम पर डंका देंगे। राना ने कहा, 'रहै देव, का होई।' पर वह नहीं माना तो बोले कि अच्छा। उसने डंका बजाया, उसको भी कुछ इनाम दिया।

"राना साहब के गुरू रहे, सराय के त्रिवेदी। उनके बंस के लोगों को भी बुलाया और भोजन करा के दक्षिणा दी।

"राना साहब का चेहरा-मोहरा ऐसा था कि जैसे शेर का हो। लेकिन जब उठते थे तो कमर ज़रा झुक जाती थी।"

मैंने पूछा : "वे यहां कब तक रहे?"

"दुसराय के जब रहे, तब पंद्रह रोज रहे।"

मैंने फिर पूछा : "राणा दो बार यहां आये, छिपे-ढके नहीं रहे, सारी खिलक़त ने जाना। आप बताते हैं डंका बजा, नाच गाना हुआ—तो क्या अंग्रेज़ सरकार को खबर नहीं पड़ी होगी?"

ठाकुर साहब बोले : "पहिली बार जब आये रहे तो बाबू बंगाली के सरबराकार ने कहा कि आप यहां से चले जाइये। तो बोले कि तुम हमको नहीं हटा सकते। फिर दुर्गा जी के मंदिर की ओर हाथ उठा के कहा कि इन्होंने हमें हटा

दिया। आस पास जो आदमी थे वे सर्बराकार को मारने झपटे। फिर उसके बाद ये यहां से चले गये पर कहीं गिरफ्तार कर लिये गये। लखनऊ भेजे गये किसी ने उनकी 'सिनाखत' नहीं की। एक तो उनके समय के आदमी ही कम रहे थे और दूसरे जो मौजूद थे, वो राना साहेब को फाँसी पर नहीं चढ़वाना चाहते थे। इस लिये छोड़ दिये गये। दूसरी बार भी बाबू बंगाली ने इनकी रपट लिखाई थी। राना साहेब ने जलाने के लिये बबूल के पेड़ कटवा डाले थे। थानेदार आया, उससे कुछ बातें हुईं। थानेदार फिर चुपचाप चला गया। उसके दो-चार रोज बाद राना भी चले गये।"

श्री विजय बहादुर सिंह ने ठाकुर गजाधरसिंह को कालीबकस की कथा की याद दिलाई जो ठाकुर साहब ने कभी उन्हें सुनाई होगी। ठाकुर साहब के हां कहते ही विजय बहादुर सिंह सुनाने लगे : "सिध्दौर के एक ठाकुर काली बख्श थे। उनको राणा साहब कालीचरण कहते थे। वो भी मिलने आये थे। काली बाबा ने राणा की पीठ पर तलवार का घाव देख कर पहचाना यह घाव राणा साहब को नायन की लड़ाई में लगा था। काली बाबा और राणा साहब गले मिलकर खूब रोये।"

मैंने ठाकुर साहब से पूछा : "मैंने सुना था कि राणा एक बार रायबरेली के किले में क़ैद किये गये थे। किसी हीरा पासी ने उन्हें छुड़ाया था। क्या आपने भी यह घटना सुनी है?"

"हां-हां।" ठाकुर गजाधरसिंह बोले: "जब नवाबी रही तब नवाब इनसे किसी बात पर बिगड़ गये। रायबरेली के क़िले में कैद हो गये। एक पासी था, उसका नाम, हमारी जान में, शिवदीन था। जब जब क़िले में गजर बजता तब तब वह दीवाल में कीलें ठोकता था। शिवदीन बड़ा नामी और चालाक चोर था। वह बड़ी तरकीब करके क़िले में राना के पास पहुँच गया और उनसे कहा कि महराज, चलिये। राना बड़े खुश हुये; चले। रस्सी छोटी थी, पासी ने अपना साफ़ा उसमें जोड़ दिया, तब भी कम पड़ी, पासी ने अपनी धोती भी बाँध दी। राना बोले, अब भी छोटी है। पासी ने कहा कि महाराज अब मैं लाचार हूँ। तब राना साहब किसी तरह उसी के सहारे उतरे। क़िले के बाहर आये। इनका सब्जा घोड़ा तैयार खड़ा था, उसी पर आ गये। शंकरपुर के क़िले में यह हुकुम था कि जैसे ही रात के बारह बजें वैसे ही एक तोप दागी जाय। यह धोका देने के लिये किया गया था कि लोग समझें राना क़िले में पहुँच गये और जिससे फिर सिपाही उनकी तालाश में न निकलें। ऐसा ही हुआ। राना साहेब सही सलामत क़िले में पहुँच गये। बाद

में उस पासी ने इनाम में यही माँगा कि महराज, मेरी चोरी माफ़ की जाय ।"

श्री धर्मेन्द्रबहादुर सिंह ने सुनाया : "एक क़िस्सा ये है कि राना वेनीमाधो लोधवारी की तरफ़ घोड़े पर जा रहे थे। वहां कोई पासी औरत लड़के से कह रही थी कि जा, सुअर चरा ला। लड़के ने कहा कि मैं नहीं जाऊँगा। मां बोली तो फिर क्या करेगा। लड़का बोला कि राना की फ़ौज में भरती हो जाऊँगा। राना वेनीमाधो वहीं सुन रहे थे, बोले, राजा की फ़ौज में वही भरती होता है जिसका दिल बड़ा होता है। लड़का बोला कि मेरा दिल भी वड़ा है। राना बोले, अच्छा परिक्षा दो। यह कह कर लड़के की छाती पर घूँसा मारा। लड़का झेल गया। उसे भरती कर लिया।"

श्री गजराजसिंह ने सुनाया : "एक बुढ़िया थी। उसके कोई न था। उसके घर वालों ने राना वेनीमाधो और उनके पुरखों का नमक खाया था। वखत-वखत पर इनाम-भेंट में सोना रुपया पाया था। बुढ़िया ने सोचा कि मेरे वाद इस धन का क्या होगा। सो वह लौटाने आरही थी। रास्ते में वड़ी थक गई। संयोग से राना वेनीमाधो सब्ज़ा पे सवार उधर से निकले। बुढ़िया बोली कि मुझे राना साहेब के घर पहुँचा दो। राना साहेब ने उसे अपने घोड़े पर बैठा लिया और आप उसकी रास पकड़े क़िले पर आये। सबसे इसारे से मना कर दिया कि चुप रहना। राना वेनी माधो ने उसे अंदर ले जाकर बिठा दिया और फिर राना बनकर उसके सामने आये।"

श्री गजाधर सिंह ने बतलाया : "जब बलवा शुरू हुआ तब यहां छत्तीस हज़ार फ़ौज थी। बलवाइयों की फ़ौजें अलग थीं। और जब राना नवाब बिरजीसकदर से बीड़ा खाकर आये कि हम अंग्रेज़ों से लड़ेंगे तो खजूर गाँव अपने भाई के द्वारे गये। उनसे मेल नहीं था तो भी गये। घर में औरतों बच्चों को भी कुछ लिया दिया। छोटे भाई युवराजसिंह ने कहा कि कहो तो बदला ले लें। राना बोले कि अब नहीं। अब हम बेगम के साथ हैं। खजूरगाँव के रघुनाथ सिंह ने कहा कि आप अंग्रेज़ों से न लड़ो। राना बड़े ही हठी थे, बोले, जो ठान लिया सो ठान लिया। रघुनाथ सिंह बोले कि अच्छा अपने बेटे को हमारे यहां छोड़ जाइए। उसे अंग्रेज़ों के साथ रहने दीजिए। राना बेनीमाधो बोले कि ये भी नहीं हो सकता। अगर जीतेंगे तो सब कुछ होकर रहेंगे और जो हारे तो फिर तुम तो रहोगे ही।

"एक बात आप और लिख लीजिये कि शाहाबाद के बाबू कुँअरसिंह जो बड़े बहादुर बागी थे, उनकी लड़की से राना वेनीमाधो के बेटे राना रघुराजसिंह का ब्याह हुआ था।"

इस प्रकार :—

करिके सबको बखाना चल्यौ गयो जग से राना ।।
पहिल लड़ाई लड़्यो भीरा मां, दूसर सिमरी मुकामा ।
तीसर धावा भा पुरबा मां गया बिलाइति बखाना ।
लाट सुनि कै घबराना ।।१।।
लाट साहेब ने लिखा परवाना राना तुम मिल जाना ।
जल्दी हाजिर होउ बक्सर मां काहे फिरत दिवाना ।
राना पढ़ि के मुस्काना ।।२।।
राना बुलाइन आपन बिरादर सबको करत बखाना ।
तुम तौ जाय मिले गोरन ते हमका हैं भगवाना ।
करब अपना मनमाना ।।३।।
मारपीटि के राना निकरिगे गोरन मन खिसियाना ।
भगवतदास कहैं कर जोरे अमल करैं भगवाना ।
भजो मन रामै रामा ।।४।।
चल्यो गयो जग से राना ।।

परशुरामपुर ठिकहाई

ठिकहाई में श्री बैजनाथ बख्श सिंह, नायन के गदर वाले भगवानबख्श सिंह के पौत्र रहते हैं, यह मुझे श्री शिवदुलारे ने बतलाया था। वैसे भगवानबख्श सिंह के बारे में अधिक कुछ जानने के लिये मुझमें हौसला नहीं रहा था, फिर भी सोचा कि इतने पास आकर उनके सगे पौत्र से भी कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना बुरा न होगा। गदर में जिनकी जायदादें ज़ब्त हुई हैं, उन सबको ही हीरो मानकर नमन करूँ, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। उनके प्रति सहानुभूति बरती जा सकती है, मगर सहानुभूति की भी एक सीमा है। अभी कल ही की बात है, एक सज्जन बातों के दौरान में कहने लगे कि माना राजा लोनेसिंह ने कोई खास काम नहीं किया, पर उनकी जायदाद ज़ब्त हुई, बेचारे काले पानी भेजे गये इसीलिये उनका स्मारक तो ज़रूर बनना चाहिये। मैंने कहा कि ऐसी लगन हो तो अवश्य बनवाइये, पर वह स्मारक प्रेरणा क्या देगा? लोनेसिंह स्वेच्छा से नहीं वरन् परिस्थितियों से घिरकर स्वतंत्रता प्रेमी वीरों के साथ जुड़ गये। ऐसे ठाकुरों को

मेरी पूजा प्राप्त नहीं हो सकती। लोनेसिंह से कहीं अच्छा आदर्श गोरखपुर के मोहम्मद हुसैन नाज़िम ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने संकट में पड़े अंग्रेज़ों को उबारा, उन्हें सुरक्षित स्थान तक पहुँचाया और उस के बाद भी वे अंग्रेज़ों के शत्रु बने रहे। इसी प्रकार भगवानबख्श भी यदि कोई बड़ा उदाहरण प्रस्तुत कर सके होते तो उनके प्रति मन में जोश होता। नायन वाले केवल लूट-पाट के शौक़ में ही देशभक्तों के दल में मिल गये थे। हाँ, भगवानबख्श सिंह ने अपने परिवार के लिये अवश्य त्याग किया। जो हो, राणा वेणीमाधव के घर आकर उनके ननिहाली सम्बन्धी के पौत्र से मिल लेना उचित समझा। नायन वाले कम से कम इस बात पर तो अवश्य गर्व कर सकते हैं कि अवध के महान् नेता प्रातः स्मरणीय राणा वेणीमाधव बख्श की माता उनके कुल की थीं।

श्री बैजनाथ बख्श सिंह ने बतलाया : "सन् १८५७ में हमारे आजा भगवान-बख्श सिंह ने अंग्रेज़ों से बग़ावत की। इससे उनके बारह गाँव ज़ब्त हुये और गुज़ारे के लिये एक मौज़ा उन्नाव में मिला।

"सुनने में आया है कि भगवानबख्श सिंह राना बेनीमाधो के साथ वृन्दावन में थे। राना वेनीमाधो भाग गये, भगवानबख्श सिंह पकड़ लिये गये। इनसे पूछा गया कि आपको कितने खर्च की दरकार है, आपके यहां कितने लोग हैं ?

"उन दिनों यह अफ़वाह थी कि बाग़ियों के घर वाले सब गोलियों से मार दिये जायेंगे। तो हमारे आजा ने इसलिये किसी का नाम न बताया। कह दिया कि हम तो अकेले हैं—बस घोड़ा है, सहीस है और हम हैं। खरचा भी दो रुपये रोज़ का बता दिया। इसलिये उन्हें मन्यां तहसील उन्नाव परगना हँड़हा में गुज़ारे के लिये दिया गया।

"भगवानबख्श दो भाई थे। दूसरे भाई की शाखा अंग्रेज़ों के भय से छिपी रही। जब इन्हें गुज़ारा मिला तो हमारी दूसरी शाखा वालों ने भी रुस्तमपुर में आकर अपने को उजागर कर दिया। कुछ दिन बाद वे चंदनिहा चले गये। चंद-निहा रियासत से हमारा कुछ सम्बन्ध था। भगवन्तपुर चंदनिहा बैसों का इलाक़ा था और हम लोग कनपुरिया वंश के हैं।

"चंदनिहा से बसाढ़ आये। थोड़ी पून्जी से महाजनी शुरू की। फिर धीरे-धीरे हमने पट्टीदारी के इक्कीस मौजे कर लिये। और तो कोई खास बात हमें मालूम नहीं। हाँ, यह भी सुनने में आया है कि असवापुर की छावनी में लड़ाई हुई थी। और नायन वालों की ऐसी मरजाद थी कि तिलोई में नायन वालों के सिवा और किसी का डंका नहीं बजता था।

हरचन्दपुर और कठवारा

'दैनिक स्वत्रंत भारत' में हरचन्दपुर के यदुनाथ सिंह का हवाला पाया था। परन्तु हरचन्दपुर आने पर वहां के ठाकुर जय देव सिंह से पता लगा कि हरचन्दपुर में कोई रियासत नहीं थी और उन्होंने यदुनाथ सिंह का नाम भी नहीं सुना। अब तक जिन सूचनाओं के सहारे भ्रमण किया उनमें यही सूचना निराधार निकली। यह बात दूसरी है कि प्राप्त सूचनाओं में से कुछ लोग मध्यम श्रेणी के चरित्र सावित हुए। खैर, ठाकुर साहब से बातें होने लगीं। उन्होंने अपना सारा जीवन अवधी सामंतों के दरबारों में बिताया है। किस ताल्लुकेदार को दरबार में किस नंबर की कुरसी मिलती थी, किसकी कैसी शान थी, यह सब बड़े उत्साह से सुनाते रहे। कुर्री-सिधौली के राजा सर रामपाल सिंह रियासत से तो छोटे थे, मगर उनका दबदबा बहुत था। वे अपने पास अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को रखते, उन्हें सेटक्रेरी का काम सिखाते और रियासतों में नौकर रखा देते। इस तरह क़रीव-क़रीब हर जगह उनके आदमी मौजूद थे, और जैसा इशारा वे करते थे, वैसा ही उनके चेले लोग अपने मालिकों को सिखाते थे। राजा साहब का अंग्रेजों के ऊपर भी बड़ा रोब था। और सब राजा जूते उतार कर अँग्रेजों के कमरों में जाते थे, मगर राजा रामपाल सिंह जूता पहन कर जाते थे।

एक मज़ेदार क़िस्सा उन्होंने गदर के बाद का सुनाया। दरबार हुआ; सब राजाओं को सनदें मिली, खजूर गांव के राणा साहब को न मिली। सबको बुरा लगा कि हमारे एक भाई का यों अपमान हो रहा है। राजा साहब महमूदाबाद को बड़ा गुस्सा आया, सनद उठा कर बोले क्या हम अब इसी काग़ज़ के राजा रह गये हैं ?—फिर राजा साहब खजूर गाँव को भी सनद मिल गई।

पंडित शिव सहाय तिवारी ने हरचन्दपुर में किसी युद्ध के न होने की बात दोहराई। एक पुरानी कविता उहोंने अवश्य सुनाई, जिसका एक चरण वे भूल गये थे :

"देखि कै फिरंगिन की जंगी फौज जंग सेल,
भागिगे तिलंगा लोग, बन की गली लई।
जज्ञपाल, हिन्दपाल लाल माधो रघुनाथ,
नेक से निगोड़े जिन पाछे से दगा दई॥

o o o o

वीर शिव रत्न सिंह कीरति भली लई ॥
भाषैं कवि बच्चू सब भूपन की नाक काटि,
वीरता अकेले संग राणा के चली गई ॥"

तिवारी जी ने कविता में आये हुए नामों के संवन्ध में बतलाया कि यज्ञपाल संभवतः राजामऊ के राजा थे, राजा हिन्दपाल कुर्री सिधौली के राजा थे, लाल माधो अमेठी के राजा थे, और बच्चूलाल कवि बछरायां के थे।

इन नामों के साथ मैं सोचने लगा कि ये लोग बाद में अंग्रेज़ों की कृपा से भले ही अपने मुँह मियां मिट्ठू बन गये हों, परन्तु देश की जनता ने उन्हें गद्दार ही समझा। कवियों ने उनका कलंक सदा के लिये अमिट कर दिया। ठाकुर ननकऊ सिंह के 'जंगनामे' में भी अनेक गद्दारों के नाम पीढ़ियों द्वारा घृणा की दृष्टि से देखे जाने के लिये सुरक्षित हैं। देश और मानवता के शत्रुओं के साथ यही व्यवहार होता है।

हरचन्दपुर के श्री बजरंग वली शुक्ल ने बतलाया कि कठवारे में बेगम के एक सरदार रहते थे। बेगम लखनऊ से यहां आई और अपने लड़के बिरजीस क़दर के नाम पर प्रजा से सहायता मांगी। राना बेनीमाधो आदि सब लोग कठवारे में बेगम के लिक्चर से बड़े प्रभावित हुये और उनके साथ हो गये।

यह कथा सुन कर मुझे ऐसा लगा कि हो न हो, बिरजीस क़दर के गद्दी पाने के बाद बेगम ने कई जगह स्वयं जा जाकर संगठन किया था। उनकी वाणी में निःसंदेह बड़ा ओज होगा। और इसी से मुझे लगता है कि विक्टोरिया के घोषणा पत्र के उत्तर में बेगम हज़रत महल के ऐतिहासिक ऐलान का मज़मून स्वयं उनका ही लिखा होगा। बेगम हज़रत महल की संगठन शक्ति सचमुच ही बहुत ऊँचे दरजे की थी।

शुक्ल जी की सूचना के अनुसार हम लोग कठवारा गये; वह हमारे रास्ते में ही पड़ता था। श्री मंगलू खाँ ने बतलाया : "खान बहादुर साहब को ही राना-बेनी माधो अपनी जागीर दे कर चले गये थे। खान बहादुर साहब को जानवरों तक से बड़ा प्यार था। उन्होंने अपने घर के कुत्ते, बिल्ली, तोता, मैना तक की कब्रें बनवाईं। एक गाँव कुतियामऊ था जिसकी कमाई कुत्ते खाते थे।

"गोरे लोग खान बहादुर साहब को क़ैद करके ले गये। इलाका जब्त कर लिया। खान बहादुर साहब का इलाका अत्री, हिलालगंज, कुतियामऊ, दक्खिन पच्छिम तक और पूरब में सोरा के पास तक था। कुछ इलाका गुजारे के लिये खानदानियों को मिला। कठवारा भी गुज़ारे का ही इलाका था। कठवारे में

फाटकबन्दी थी, खाईं थी, उसकी भीतें अब तक मौजूद हैं। गाँव के किनारे एक शिवाला है जिस पर अंग्रेजों ने गोले बरसाये थे। उसके निशान मौजूद हैं।"

मैंने पूछा: "लखनऊ की बेगम यहाँ आई थीं?"

मंगलू खाँ बोले : "मैं कह नहीं सकता। बात यह है कि अब हमारे यहां बुजुर्ग तो रहे नहीं। और मैं बचपन से बवजह ग़रीबी अपनी मेहनत-मज़दूरी में लगा रहा। गाँव वालों ने अब मुझे परधान बना दिया है। मगर हो सकता है कि बेगम साहबा यहां आई हों। उनकी सल्तनत थी, वे कहीं भी जा सकती थीं।"

मैंने श्री मंगलू खाँ के साथ वह शिवाला भी देखा जिसकी दीवाल में गोलियों के निशान और तोप के गोलों से हुए भंभक मौजूद हैं। वह जगह भी देखी, जहां खान बहादुर साहब दफन हैं। खान बहादुर और उनकी पत्नी में किसी बात पर यहाँ तक अनबन हो गई थी कि दोनों ने आजन्म एक दूसरे की सूरत नहीं देखी। जब खान बहादुर की पत्नी मरीं तो वसीयत कर गईं कि उन्हें उनके पति के साथ मक़बरे में न दफ़नाया जाय। मरने के बाद भी वे अपनी क़ब्र पति की क़ब्र के पास नहीं रखना चाहती थीं। दोनों में यहां तक परदा रहा। पति और पत्नी की क़ब्रों के बीच में दीवार खड़ी है।

जाने कौन सी कहानी लेकर उनकी हड्डियां यहां सो रही हैं।

मक़बरे के बाहर खान बहादुर के कुत्ते, बिल्ली, तोता मैना भी पक्की कब्रों में दफ़न हैं।

सेमरी और गढ़ी बैहार

रायबरेली के कांग्रेसी नेता, वकील, कवि, कहानी लेखक और संवाददाता पण्डित अंजनी कुमार ने अपने मित्र सेमरी के लाल साहब को पत्र लिख कर हमारे आने की सूचना दे दी थी। हम लोग सेमरी चले। पण्डित जी रास्ते भर अनेक साहित्यिक विषयों पर बातें करते रहे। उन्होंने पढ़ा खूब है, प्रतिभाशाली भी हैं। देश सेवा, वकालत और साहित्य सेवा—इन तीनों की कशिश उन्हें आजीवन छकाती रही; एक के न हो सके तो किसी के न हो सके। बराबर जेल गये, बड़ा काम किया, किसी समय रायबरेली की जनता इनके नाम पर मरती थी, जिला कांग्रेस के प्रधान थे। वकालत भी खूब चली, मगर उसमें रुचि नहीं थी, कभी जमकर प्रेक्टिस न की। लिखने का शौक ही इन सब शौकों में सर्वोपरि था; मगर उसके लिये समुचित अवकाश न निकाल सके।

पण्डित जी तो ख़ैर आयु की ढाल पर उतर आये हैं और काम-काज से भरा जीवन बिताया है, पर मैंने आमतौर पर छोटे नगरों और क़स्बों के कवियों, लेखकों और कलाकारों को कुण्ठित होते देखा है। लिख कर भी उन्हें लिखना नहीं आता और लिखते-लिखते वे स्वयंसिद्ध महान् हो जाते हैं। यह विषमयी महानता अमरबेल की तरह है, जिस हरे-भरे वृक्ष से लिटपती है उसी को जीते जी मार डालती है। इनमें अनेक आरम्भ में सचमुच प्रतिभाशाली होते हैं। प्रतिभाओं का नष्ट होना किसी भी उन्नतिशील राष्ट्र के लिये अत्यन्त अशुभ है। मेरे विचार से तो एक ऐसे अर्द्ध-सरकारी संगठन की आवश्यकता है जो इन कस्बों में भी संस्थाएँ स्थापित करे। उन संस्थाओं में कलाकार अपनी रचनायें सुनायें, उन पर बहस हो। जो रचनायें स्थानीय गोष्ठियों में उत्तम मानी जायँ वे अन्य नगरों और कस्बों की गोष्ठियों में साइक्लोस्टाइल कर सुनाने के लिये भेजी जायँ। जगह-जगह के लोगों की रायें और सुझाव उगती हुई शक्तियों को प्रगति का सही मार्ग सुझा सकेंगी। सिद्धहस्त लेखकों से उनका संशोधन करवा केंद्रीय संगठन उन्हें प्रकाशित करे। इसी प्रकार उगते हुए संगीतज्ञ, अभिनेता, चित्रकार, नर्तक, मूर्तिकार आदि भी सही तौर पर पनपाये जा सकते हैं। ऐसा संगठन पूर्णरूपेण सरकारी नहीं होना चाहिये। ग़ैरसरकारी इस लिये नहीं हो सकता कि अब ऐसे शुभ कार्यों को चन्दा देकर चलाने वाले उत्साही रईस प्रायः बहुत कम होते जा रहे हैं। अर्द्ध सरकारी संस्था जनता और उसके द्वारा चुनी गई सरकार के सहयोग से बड़ा काम कर सकती है। मैंने रायबरेली में कई व्यक्ति पाये। नीलम, बालकृष्ण अच्छे कवि हैं। अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' ने घूम-घूम कर राणा बेणीमाधव के संबन्ध में लोक साहित्य और उनकी जीवनी एकत्र कर एक पुस्तक लिखी है। भीरा गोविन्दपुर के युवक गायकों की टोली और उनके युवक गीत लेखक श्री चक्रपाणि भी प्रोत्साहन से बहुत आगे बढ़ सकते हैं। रायबरेली के बड़े प्रतिभाशाली कवि स्व० कृष्णशंकर शुक्ल 'कृष्ण' ने आयुमान् तो कुछ भी न पाया परन्तु बाईस वर्ष की आयु में 'बेनीमाधव बावनी' लिखकर वे अमर हो गये। आचार्य द्विवेदी जी, हरिऔध जी, मैथिलीशरण जी आदि अनेक पूज्य पुरुषों ने मुक्त कंठ से 'कृष्ण' कवि की सराहना की थी। 'बेनीमाधव बावनी' गाँव-गाँव में प्रसिद्ध है, कई जगह उसके छन्द भी लोक गीतों की मांग करने पर मुझे सुनने को मिले। स्व० 'कृष्ण' के पिता साहित्य भूषण पण्डित रामावतार शुक्ल 'चातुर' जी ने 'कृष्ण' जी के राणा संबन्धी तीन ऐसे छन्द दिये जो अबतक अप्रकाशित हैं।

तेरी तेग ताव माँहि तड़पत जात 'कृष्ण',
काटि काटि मुंड झुण्ड डुण्ड पटकतु है।
मच्छिका समान ही उड़ावती है शत्रु शीश,
गौरंग सुअंग को सुआँग सों रंगतु है।
खड्ग कोपि तोपि देत तोपन को लोथिन सों,
गनन गनन को तो कछु न गनतु है।
सरपै समान असि, सर पै समान अरि,
सर पै नहाय रक्त सरजा करतु है।

(२)

बेनी बीर बाना बैस बंश मरदाना,
वाकी भूपति जनाना ठानठाना भरी घात है।
इन्द्रपाल, माधवसिंह, चन्द्रपति, रघुनाथ,
मिलिकै फिरंगिन दगा दई सो ज्ञात है।
ताना देखि भ्रकुटी सुयुद्ध में दिवाना देखि,
कम्पनी बिलायत सकल बिललात है।
छीन्यो तोपखाना तब शत्रु है सकाना,
रन राना बिरझाना आज खाना नहीं खात है।

कृष्ण जी की तीसरी कविता वाजिदअली शाह की विलासिता को अवध की राजधानी में अंग्रेज़ी ध्वजा फहराने का कारण बतलाती है।

वाजिदअली शाह था नवाब औध 'कृष्ण कवि',
शासन विधान अंधकूप मुगलान को।
हीजड़न साथ कीन्हीं, वेश्यन विलास कीन्हीं,
नाश कीन्हीं दास भारत महान को।
जान को जहान को ईमान को न परवाह,
खान-पान ज्ञान औ न मान हू कुरान को।
वाही समैं वेली बेलीगारद गारत कीन्ही,
नभ फहरायो है फिरंगिनी बितान को।

हमारे देश में, स्वप्रदेश में कृष्ण कवि जैसी प्रतिभावान न जाने कितनी उगती कलियां बिन खिले ही मुरझा जाती हैं। यह सचमुच हमारा दुर्भाग्य है।......

सेमरी पहुँच गये। पता लगा लाल साहब इकौनी गये हैं। सोचा, यह तो सारा दिन नष्ट करने का योग उपस्थित हुआ है। पण्डित जी ने साइकिल पर पत्रवाहक भेजने का प्रस्ताव किया, मगर इससे हमारा कुछ काम न बनता। लाल साहब बैल-ताँगे पर गये थे। पत्र पाकर भी आते-आते दो सहज ही में बज जाते। मैंने कहा, मोटर से आठ मील तय करना समय की बचत और कार्य सम्पादन के लिये अधिक बुद्धिमत्ता की बात होगी। आठ मील कच्चा रास्ता तय कर इकौनी पहुँचे। ज़िला बोर्ड स्कूल के मास्टर ठाकुर साहब के यहां अतिथि हुये, उत्तम रसोई जीम, लाल साहब को साथ लेकर पक्के रास्ते से चले। मार्ग में बैसों के पूर्वज महाराज सातन का शिवालय सातनपुर में देखा। वहां सातनेश्वर का प्राचीन मंदिर है। मंदिर में कुछ पुरानी नवाबी काल की चित्रकारी के बड़े मामूली से नमूने हैं: सर्प, मयूर, सिंह, मयूर-नृत्य, कीर्तन करते ऋषि आदि बने हैं। मूर्ति प्राचीन है, बाहर भी खण्डित मूर्तियां एक जगह एकत्र कर रक्खी गई हैं। बनावट से हज़ार-ग्यारह सौ वर्ष पुरानी लगती हैं। मूर्तियों का शिल्प ढलते सूरज-सा, अपने उतार के ज़माने की गवाही देता है। मंदिर का चबूतरा पुरानी ईंटों का और मंदिर आसफ़ी लखौरी का बना है।

लाल साहब सेमरी के कथनानुसार यह बैसों का पूज्य स्थान है। महाराज सातन बड़े प्रतापी थे। मुसलमानों ने महाराज से डोला माँगा। महाराज सातन ने इंकार किया। काकोरन में उनकी खाल खींची गई। मरने से पूर्व उन्होंने दो बातें वसीयत में कहीं। पहली वसीयत यह की कि 'बैसों में कन्या को जनमते ही मार डाला जाय। दूसरी वसीयत यह की कि मेरा क्रियाकर्म खान्दान में वही करे जो शत्रुओं से मेरा बदला ले।' लिहाज़ा एक बार नवाबी में बैसों ने राना वेनी माधो की सर्दारी में उन पर हमला किया। नवाब ने कहा कि अब तो हम कमज़ोर हो ही चुके हैं, अब हमसे बदला लेकर क्या करोगे? इस पर राना बेनीमाधो और बैस लोग लौट आये।

हमारा पिछला एक-हज़ार वर्ष का इतिहास बड़े ही विचित्र उत्थान-पतन का द्योतक है। हिन्दुओं में फूट थी। सामंती प्रथा की लूट मार वाली महोच्च-क्षात्र-मान्यता इस फूट की जड़ में काम कर रही थी। किसी ने सच कहा है, सफल लुटेरा ही राजा और सम्राट् बनता है। हमारे यहां और सब जगह अपना राज बढ़ाना राजा का परम धर्म माना जाता था। भारतीय क्षत्रिय, अक्षत्रिय राजा हरदम अपना राज बढ़ाने की चिंता में बड़ी मछली के समान छोटी मछलियों को

निगला करते थे। फिर बड़ी मछलियां परस्पर में निगला-उगली कर मच्छ, महा-मच्छ बनती थीं। इस क्षात्र-कर्म में कभी तो देश सुशासन-संगठन पाकर उन्नति-शील बनता था और कभी बिखरने लगता था। मैं बड़े आश्चर्य के साथ अपने बुद्ध, सिकन्दर काल से मान्य इतिहास के नक्शे को देखा करता हूँ। सिकंदरी आक्र-मण के समय पाटलिपुत्र में शूद्र नंद का बड़ा राज्य था और बहुत से छोटे-बड़े राज्य थे, जो परस्पर में ईर्ष्या और शत्रुता बरतते थे। सिकंदर के आक्रमण के समय हमने अपनी वीरता में कमी नहीं पाई। जीतने के बावजूद सिकंदर के सिपाही महाराज पुरु की भारतीय सेना की मार से इतना सहम गये थे कि आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। बहरहाल वीरता की कमी के कारण नहीं वरन् फूट के कारण भारत ग़ारत हुआ। मानो इस लाज की प्रतिक्रियावश शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य पनपा। चंद्रगुप्त और उसके मंत्री-गुरू महामति चाणक्य कौटिल्य विष्णु गुप्त ने एक सुव्यवस्थित शासन की नींव डाली। उनकी चलाई हुई मशीनरी ने ऐसा जलवा दिखाया कि देश में दिनोंदिन संपन्नता बढ़ी, चेतना का विकास हुआ। हमें यह बात नही भूलना चाहिये कि यदि देश में शांति सुव्यवस्था और मौर्य सरकार की अच्छी साख न होती तो सम्राट् अशोक वे शांतिवादी महान् कार्य करने का अव-सर कदापि न पाते जिनके कारण वे इतिहास में अमर हैं। अशोक के बाद धीरे-धीरे मौर्य साम्राज्य शिथिल होता गया। सरकारी मशीन बिगड़ गई; देश फिर उस हद तक असंगठित हो गया कि विदेशी कुषन न केवल आक्रमण कर सकें बल्कि देश के बहुत बड़े भाग में अपना साम्राज्य भी स्थापित कर सकें। कुषनों की दासता ने फिर राष्ट्रीय शक्ति जगाई, भारशिवों, वाकाटकों ने देश को मुक्त किया। मौर्य, अशोक और फिर कुषन सम्राटों का आश्रय पाकर बौद्ध धर्म बहुत मोटा हो गया था। ब्राह्मण धर्म एक तरह से अपना प्रायश्चित्त-काल पूरा कर नई शक्तियों के साथ लौटने के लिये तैयार हो चुका था। बौद्ध विहारों, मंदिरों के स्थान पर वैदिक-अवैदिक-तांत्रिक प्रतीकों, तीर्थों आदि की पूजा का दौर चला। शंकराचार्य, ब्राह्मण धर्म के भगवान् बुद्ध थे। यों भी बहुत से ब्राह्मण उन पर प्रच्छन्न बौद्ध होने का अपराध आरोपित करते हैं। वे भावुक भक्त, कवि और वेदांत-शास्त्र-निधि महापण्डित थे।

ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में 'एकदा नैमिषारण्ये' वाली लहर दौड़ रही थी। वहां लघु सत्र और दीर्घकालीन सत्र चला ही करते थे। सूत-परम्परा पुराणों की रचना करती जा रही थी। प्रांत-प्रांत में पुराणिक, कथावाचक, गागरिया

भट्टों का जाल फैल गया। कथा और गाथा से सारा देश एक प्रकार के सैद्धान्तिक ढाँचे में ढलने लगा। यज्ञों से अग्नि देव को अजीर्ण हो गया; व्रत, उपवास, गंगा, गोदावरी, कृष्णा, महानदी आदि तीर्थों का माहात्म्य बढ़ गया। बौद्ध-जैन धर्मों से प्रभावित भारत देश में फिर से अपने पाँव जमाने के लिये ब्राह्मण धर्म ने भी अहिंसा को प्रमुख मान्यता दी। वाजपेय, अश्वमेध आदि महायज्ञों का पुण्य गंगा नहाने, कथा सुनने और व्रत उपवास करने से मिलने लगा। पिछले युग के ब्राह्मण धर्म में यज्ञों का तमाशा इतना बढ़ गया था कि राजाओं को राजकाज करने का अवसर नहीं मिलता था। राजा जब यज्ञों की दक्षिणा देते-देते दीवालिये होने लगे, देश की (इहलोक की) आर्थिक दशा परलोक चिन्ता के कारण जब बिगड़ने लगी तो राजाओं ने बौद्ध या जैन धर्म से नई जीवन-ज्योति पाई। जैन से अधिक यहां बौद्ध-धर्म का ज़ोर हुआ। जनता ने भी पहले के धर्म में घुटन और नये धर्मों में ताजी साँस पाई। वही हाल बौद्ध धर्म का उसके भारत में पतन काल के समय हुआ। ब्राह्मण धर्म इस बार उदार होकर आया था। धार्मिक, सांस्कृतिक एकता से गुप्तों और हर्षवर्द्धन के साम्राज्य पनप सके; ढाई सवारों में कन्नौज के साम्राज्य का नाम भी लिया जा सकता है।

एक हज़ार बरस क़रीब-क़रीब सुख चैन और प्रगति के बीते। अजन्ता, एलूर की कैलास गुफा; पुराण, श्रीमद्भागवत; कालिदास, पातंजलि, जयदेव हुये; विदेशी व्यापार-वाणिज्य का प्रसार हुआ, गजलक्ष्मी समुद्र की बेटी भी बन गई; हूणों ने हमला किया तो मुंह की खाकर लौटे—हर दृष्टि से देखिये, ईसवी सन् के पहले हज़ार वर्ष सब मिलाकर उम्दा हैं, उन्नतिशील दिखलाई देते हैं, उसके बाद ब्राह्मण फिर कठोर हो जाता है। बलि-प्रथा शाक्त धर्म के प्रभाव से फिर बढ़ती है।

देश की आस्था फिर बिखरने लगती है। ब्राह्मण गुटों-सम्प्रदायों में, राजाओं में और लाजिमी तौर पर इनकी प्रेरणा से जनता में भी फूट की शक्तियां बढ़ने लगती हैं।

ग़ज़नी, अफ़गानिस्तान आदि की भूमि पर बौद्ध धर्म और संस्कृति का पुण्य-प्रभाव तब तक क्षीण हो चुका था। इस्लाम धर्मावलम्बियों से पराजित हो ये राष्ट्र प्रायः पौने सोलह आने भर इस्लाम धर्म के अनुयायियों से नये रूप में संगठित हो गये थे। बैर-फूट के देश भारत में उनकी दौड़ें आईं। गज़नी के महमूद को, और उसकी मुसलमान सेना को दुहरा-तिहरा लाभ हुआ; एक तो काफ़िरों को जीतकर उनकी आस्था बलवती हुई, दूसरे अपने द्वारा हराये गये देश में तरह-तरह की

मौजें लीं, तीसरे लूट का बेशबहा माल बाँधकर घर ले गये। ग़ज़नवियों को लूटने का चस्का पड़ गया। वे अपने सुल्तान के साथ बार-बार आते थे। फिर गोरी आने लगा। वह युग पृथ्वीराज-जयचन्द जैसे फूट-परस्तों का युग था।

और इसके बाद भी सब पृथ्वीराज और जयचन्द जैसे राजे-महराजे ही रह गये। हमारे इन पृथ्वीराजों में वैयक्तिक वीरता की कमी नहीं है, उस युग की जनता में भी नहीं हैं। हम उस वीरता को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से संस्कार वश देखते आये हैं, परन्तु कभी-कभी झुँझलाहट भी होती है; समझ में नहीं आता कि हम बिना बुद्धि की अंधी शूरवीरता को कहां तक चाटें-दुलरायें ? आपसी बड़प्पन का ज़ोम हमें खा गया। ब्राह्मण थे, वे सब पढ़-पढ़ कर बड़े पण्डित हो गये थे, ब्रह्म-रूप हो गये थे। और ये ब्रह्म आपस में इस बात पर चुटिया झुटौवल करते थे कि उनमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म कौन है। मुसलमानों के इस देश में पैर जमाने के कारण देश की जनता को चाहे जो नुकसान हुआ हो, पर उसके बौद्धिक, धार्मिक नेता, ब्राह्मण वर्ग, को यह लाभ अवश्य हुआ कि उसके उखड़ते पैर फिर जम गये। बौद्धों-जैनों का ब्राह्मण-वेद विरोधी स्वर तो बहुत पुराने जमाने से था ही, छठी-सातवीं शताब्दी से फिर नये स्वर जोर पकड़ने लगे थे। मुसलमानों के आते ही अनेक वेद-ब्राह्मण विरोधी स्वर खट से बंद हो गये। वे सब वेद-ब्राह्मण धर्म के झण्डे तले आ गये। जो न आ सके वे मुसलमानों के कैम्प में चले गये। ब्राह्मण इस प्रकार नया गौरव पा बड़ा कठोर हो गया था। मुसलमान तलवार के जोर पर गाँव के गाँव मुसलमान बनाते चलते थे। ब्राह्मण धर्मी उन पीड़ितों को अपनी अहम्मन्यता से, घृणा से और भी पीड़ित करते थे। नतीजा यह हुआ कि नये भारतीय मुसलमान हिन्दू भारतीयों के सबसे प्रबल शत्रु हो गये। सच है, सगे भाई यदि पारस्परिक शत्रुता पर कमर कस लें तो उनसे बड़ा शत्रु और दूजा नहीं होता।

इस प्रकार भारतीय जन फिर फूट गया; उनकी आस्था बिखरने लगी। ईसा की दूसरी सहस्राब्दि के प्रारम्भिक दिन हमारे लिये बड़े कठिन थे। अवध की भूमि को भी उस काल की कठिन परीक्षा देनी पड़ रही थी। हिंदुओं में वीरों की संख्या में कोई कमी नजर नहीं आती; और फिर भी वे बराबर हारते चले गये। भारतीय मुसलमान अपने देश में एक नई शक्ति के रूप में संगठित हो रहे थे। इसलिये पुराने फूट-परस्तों का नया संयुक्त मोर्चा बन गया। विदेशी मुसलमानों को ऐसी परिस्थिति में भारत पर आक्रमण कर और लूटने-जीतने का स्थायी पासपोर्ट मिल गया।

टूटी हुई आस्था का मनुष्य भी कितना दयनीय होता है। उसमें एक से एक सुन्दर गुण होते हैं पर उन सब गुणों के संगठन से एक अति सुन्दर व्यक्तित्व ढालने लायक शक्ति नहीं होती। और इस तड़प में वह न जाने क्या क्या कर डालता है, कभी अच्छा, कभी बुरा। उसे सराह कर भी सराहा नहीं जा सकता, कोस कर भी कोसा नहीं जा सकता।

हम गढ़ी बैहार पहुँच गये। यह स्थान यों तो जिला उन्नाव में है, पर हमारे आज के यात्रा-क्षेत्र से यह स्थान बिलकुल मिला हुआ था। इसलिये और विशेष रूप से लाल साहब के साथ होने के कारण हमने वीरवर शिवरत्न सिंह और जगमोहन-सिंह के वंशजों से मिलने का निश्चय किया। बैहार असल में बिहार शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। लाल साहब ने बतलाया कि वहां आस-पास पुराने जमाने के ढूह खड़े हैं।

ऊँचे टीले पर मिट्टी से लिपा-पुता एक बड़ा भवन है। इसी में ग़दर कालीन वीर शहीद के वंशज रहते हैं। लाल साहब ने ऊपर चढ़ते समय बतलाया कि शिवरत्न सिंह निःसन्तान मरे थे, और जगमोहन सिंह के तीन प्रपौत्रों से इस समय वीरों का वह वंश चल रहा है। ऊपर मकान के बाहर फूस का एक लम्बा बरामदा सा बना है। एक सज्जन चारपाई पर लेटे हुये मासिक पत्र 'कल्याण' का पारा-यण कर रहे थे। हम लोगों को देखते ही बैठ गये। लाल साहब ने श्री वेंकटेश्वर सिंह से हमारा परिचय कराया। वेंकटेश्वर सिंह जी जगमोहन सिंह के मँझले प्रपौत्र हैं तथा उन्नाव के भगवन्त नगर इन्टर कालेज में अध्यायन कार्य करते हैं; उनसे छोटे प्रतापबहादुर सिंह भारतीय सेना में सूबेदार पद पर हैं। सबसे बड़े श्री विन्ध्येश्वरी सिंह घर पर रह कर जमीन जायदाद सम्हालते हैं। श्री वेंकटेश्वर सिंह ने हमारे आने का आशय जानकर अपने बड़े भाई श्री विन्ध्येश्वरी सिंह को बुलवा लिया। श्री विन्ध्येश्वरी सिंह ने बतलाया : "शिवरतन सिंह और जगमोहन सिंह के पिता दुर्गाबख्श सिंह अंग्रेज़ों के प्रबल विरोधी थे। सन् १८६८ ई० में अवध के अर्थ कमिश्नर बरो साहब ने उन्हें 'परसिस्टेन्ट रिबेल'—दृढ़ विद्रोही लिखा है। सन् १८५७ में वो राणा बेनीमाधो के साथ अहदनामे में शरीक हुए। दुर्गाबख्श सिंह तो वृद्ध हो चुके थे, शिवरतन सिंह ने स्वतंत्रता-संग्राम में बड़ा भाग लिया। दोनों भाई सिरियापुर के पास लोनी नदी के किनारे १३ मई सन् १८५८ को अंग्रेज़ों से लड़ते हुए मारे गये। इसके बाद हमारा पाटन बिहार का ताल्लुक़ा ज़ब्त कर लिया गया। इस जगह पर हमारी गढ़ी थी, उसे अंग्रेजों ने नष्ट कर डाला और हमारी धन

सम्पत्ति भी लूट ले गये । सर होप ग्राण्ट की किताब में उसका वर्णन है ।"

इन भाइयों ने अपने वीर पुरखों के सम्बन्ध में ग्राण्ट और गजेटियर के वर्णन टाइप करा कर अपने पास रख छोड़े थे । तुरत मँगवाये ।

सर होप ग्रॉण्ट लिखता है : "१२ मई को सबेरे मैं नगर पहुँचा । वहां सुना कि शत्रु ने वहां से पाँच मील पूरब सिरसी में मोर्चा जमाया है, यह सुन कर मैं दोपहर में उस ओर बढ़ चला । मौसम बुरी तरह गर्म था और हमारी परेशानी को बढ़ाने के लिये बवंडर उठाती हुई तेज़ लू भी चल रही थी । फिर भी शाम के पाँच बजे तक हम लोग पहुँच गये । दुश्मन का मोर्चा मज़बूत पाया । लगभग पन्द्रह सौ पैदल और सोलह सौ घुड़सवार सेना दो तोपों के साथ नाले के पास खड़ी थी । उनके पीछे घना जंगल था और आस-पास की जमीन टूटी हुई थी । उनके घुड़सवार हमारी दाहिनी ओर हमारे माल-असबाब पर टूट पड़ने की नीयत से तैयार खड़े थे, लेकिन मेरा मन उस ओर से हलका था क्योंकि मैं अपना असबाब पीछे सुरक्षित स्थान पर छोड़ आया था, उसकी रक्षा के लिये दो सौ प्यादे, दो तोपें और घुड़सवारों की एक टुकड़ी भी तैनात कर आया था । हमारी ओर से तोपों ने छर्रा और बममारी शुरू की । हमारी राइफ़ल और सिक्ख सेनायें भिड़कर युद्ध कर रही थीं, ३८ वीं और ९० वीं सेनायें बड़े तोपखाने की रक्षा करती हुई रिज़र्व में थी । हमने शीघ्र ही नाले को विद्रोहियों से साफ़ कर दिया, धनी और प्रभावशाली ताल्लुक़दार अमरतन सिंह और उसके भाई को मार डाला तथा दो तोपें छीन लीं । शत्रु बड़ी तेज़ी से पीछे हट रहे थे । मैंने भी अपना एक सेना-दल उनके पीछे छोड़ दिया और पड़ाव डालने का आदेश दिया । आधी रात में अचानक चीख-गुहार मचने तथा घोड़े की टापों के शोर से हम जाग पड़े । अँधेरी रात का लाभ उठाते हुए शत्रुओं के घुड़सवारों ने हमारे ऊपर अचानक हमला कर दिया था, जिससे बड़ी गड़बड़ी मची । एक बैल गाड़ीवान मारा गया, तो तोपखाने के कप्तान गिबन दो बार धक्का खा कर उलट गये और अन्त में दुर्घटनावशात् अपनी ही रिवाल्वर से घायल हुये ।"

ठाकुर विन्ध्येश्वरी सिंह ने हमें यह भी बतलाया कि अमरतनसिंह, शिवरत्न सिंह का ही दूसरा नाम था । उन्होंने कहा कि दुर्गाबख्शसिंह अपने ज्येष्ठ पुत्र का असली नाम न लेकर इसी के नाम से पुकारते थे । —

"आप तो जानते ही हैं कि हमारे हिन्दुओं में माता-पिता अपने बड़े लड़के का नाम खासतौर पर नहीं लेते ।"

ग्राण्ट द्वारा उल्लिखित 'नगर' नामक स्थान का पूरा नाम भगवन्तनगर है, श्री विन्ध्येश्वरी सिंह ने यह भी बतलाया कि जमीपुर ग्राम में 'शिवरत्न सिंह जूनियर हाई स्कूल' सत्तावनी क्रान्ति के वीर नायक की स्मृति में चलता है, जिला बोर्ड से उसे मान्यता भी मिली है। उन्नाव ज़िले की कांग्रेस कमेटी ने शिवरत्नसिंह का स्मारक भी बनवाने का निश्चय किया है।

श्री विन्ध्येश्वरी सिंह ने मुझे बतलाया कि बाद में शिवरत्न सिंह तथा जगमोहन सिंह के पिता दुर्गाबख्शसिंह अंग्रेजों द्वारा गिरफ्तार हुए थे। महीना-दो-महीना क़ैद में रहे। उनसे पूछा गया कि तुम रानी विक्टोरिया के माफ़ीनामे वाले एलान पर क्यों नहीं हाज़िर हुए? वे बोले कि अगर मैं ऐसा करता तो नवाब के प्रति विश्वासघात होता जो कि वीर के लिये कलंक की बात है।

फिर पूछा गया कि क्या अंग्रेज़ों, स्त्रियों, बच्चों के मारने में आपका हाथ था? वे बोले कि यह उससे भी बढ़कर कलंक की बात होती—वीर के लिये यह सबसे अधिक कायरता का काम है। मैंने अपने लड़कों, सिपाहियों तक को यह आदेश दे रक्खा था कि ऐसा घृणित काम कोई न करे।

गढ़ी बैंहार या बिहार से हम लोग सेमरी आये। लाल साहब के पास राणा बेणीमाधव बख्श का एक पुराना क़लमी चित्र था, जिसे उन्होंने वर्षों पहले अपने एक ऐसे प्रजाजन से प्राप्त किया था जिसका पितामह राणा के साथियों में से था। लाल साहब कहने लगे: "बहुत दिनों से सोचता था कि कोई भला आदमी मिल जाय तो उसे यह तसवीर दे दूँ।"

मैंने कहा: "भले के बजाय यदि आप मुझे इस समय बुरा आदमी कह कर भी यह चित्र देते तो भी आपका आजीवन उपकार मानता।"

लाल साहब सेमरी उन ताल्लुक़ेदारों में से हैं जिन्होंने गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया था। उन्होंने आन्दोलन के ज़माने में अपने राज में जवाहरलाल नेहरू के नाम पर स्कूल भी स्थापित किया जो अब कालेज हो गया है।

राणा का चित्र देखकर मेरा प्रभावित होना अत्यन्त स्वाभाविक था। बीच से दो भागों में बँटी हुई उनकी रोबीली दाढ़ी, निश्चयात्मक दृष्टि, लम्बी नाक उनके व्यक्तित्व की शोभा थी। चित्र देखते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें आँका गया व्यक्ति असाधारण था।

राणा बेणीमाधव जन-संगठन और छापेमार युद्ध की कला में अपने युग के किसी भी प्रभावशाली व्यक्ति से कम नहीं थे। तात्या टोपे, मौलवी अहमदउल्ला शाह, राणा बेणीमाधव बख्श और उनके सम्बन्धी बाबू कुँअरसिंह अपने ढंग के अनोखे नायक थे। जब शंकरपुर घेरा गया तब अंग्रेज़ शायद यह कल्पना भी न कर पाये होंगे कि उनके ज़बर्दस्त घेरे के बीच से चकमा देकर कोई व्यक्ति अपनी पूरी सेना, खज़ाना, तोपखाना और परिवार की स्त्रियों को लेकर साफ़ निकल जायगा। सर विलियम रसल ने सिद्धहस्त उपन्यास लेखक की तरह १६ नवम्बर सन् १८५८ की रात का वर्णन अपनी पुस्तक 'माई डायरी इन इण्डिया' में किया है। चारों तरफ़ पंक्तियाँ बैठाई गई थीं। अंग्रेज़ों के प्रधान सेनापति लार्ड क्लाइड स्वयं दक्षिण-पूर्वी भाग में घेरा डाले पड़े थे। और उत्तर पश्चिम में सर होप ग्राण्ट जैसा कुशल सेनानी डटा हुआ था। चाँदनी रात थी, दो बजे तक राणा चुपचाप बैठे रहे। फिर अन्धेरे में इतना बड़ा लाव-लश्कर लेकर पश्चिम दिशा से, सर होप ग्राण्ट की दाहिनी चौकी के बीच से होकर साफ निकल गये। सबेरे उठकर जब अंग्रेज़ों ने क़िला खाली पाया तो भौंचक रह गये। 'संधर्षकालीन नेताओं की जीवनियां' नामक पुस्तक के पहले भाग में श्री श्रवणकुमार श्रीवास्तव महोदय ने राणा की जीवनी में अंग्रेज़ लेखक केवेना के संस्मरणों से एक अंग्रेज़ी गीत उद्धृत किया है। राणा की राह तकते हुए ऊबकर गोरी सेना के किसी गोरे ने 'तुम कहां हो बेनीमाधो ! बेनीमाधो !!' गाते-गाते एक पूरी तुकबन्दी जोड़ डाली थी। अंग्रेज़ राणा का लोहा मानते थे। राणा बेणीमाधव बख्श निःसन्देह महान् नेता थे।

लाल साहब हमें फिर मानपुर के तिहत्तर वर्षीय वृद्ध ठाकुर रणदमन सिंह से मिलाने ले गये। ठाकुर रणदमन सिंह सचमुच मिलने योग्य व्यक्ति हैं। उनका जोश अब भी किसी से हार मानने को तैयार नहीं। अपने आगे किसी की नहीं सुनते। इधर साल-दो बरस से वे बैसों का इतिहास लिखवा रहे हैं। उनकी पोथी धीरे-धीरे ही आगे बढ़ रही है। ग़रीबी ने उन्हें किसी हद तक तोड़ दिया है। इस वर्ष उनके पोते ने संस्कृत भाषा में विशेषता के साथ प्रथम श्रेणी में इण्टरमीजियेट पास कर जिले में इस वर्ष का अद्वितीय गौरव प्राप्त किया है। ठाकुर रणदमन सिंह इस बात को दुहराते नहीं अघाते हैं। ठाकुर साहब एक धुन में बातें करते ही चले जाते हैं। उन्हें टोक कर अपनी राह पर मोड़ना मुझे बड़ा कठिन जान पड़ा। मेरी कठिनाई को ताड़कर लाल साहब आगे आये और ठाकुर रणदमन सिंह को अपनी ओर हाथ पकड़कर मुख़ातिब करते हुए उन्होंने कहा कि पहले इनकी बातों

का जवाब दे दो। राना बेनीमाधो और गदर का जो कुछ हाल जानते हो बतलाओ।

"हाल सुनावैं म का कउनौ छप्पन टका खर्चु होति हैं ? अरे, हालै हाल सुनाये देइति है।" यह कह कर उन्होंने बतलाया कि जब अंग्रेज़ों ने अवध का राज वाजिद अली शाह से ले लिया तो राणा वेणीमाधव ने बैंसवारे के सब लोगों को माल गुजारी अदा करने से रोक दिया। बस एक तिलोई के राजा ने इनका कहना न माना। राना उन्हें घेर कर पकड़ लाये।

इतना लिखवाते-लिखवाते ठाकुर रणदमन सिंह फिर जल्दी-जल्दी एक के बाद एक इतिहास के लच्छे इतनी तेज़ी से छोड़ते चले गये कि मेरे लिये लिखना कठिन हो गया। उम्दा शार्ट हैण्ड लेखक ही रणदमन सिंह जी की बातों को लिपि-बद्ध कर सकता था।

लाल साहब ने फिर रणदमन जी को अपनी ओर आकृष्ट कर कहा : "राना साहब जब सेमरी माँ आये तौ का भा ?"

"सेमरी माँ तीन हजार आदमी रहा, सोरह सौ पैंदल, पन्द्रह सौ सवार। तब दुपहर माँ नगर माँ गोरे आये।

"राना बेनीमाधो सेमरी माँ आय कै पड़ाव किहिनि। तब तउ महराज के हियां कोऊ मरद मानुस रहा नाहीं, ठकुराइन साहब रहीं। राना आय कै हुकुम लगाइनि कि खाना लाओ। ठकुराइन भला राना बेनीमाधौ का का समझैं। उयि घर की बड़ी बूढ़ी रहैं। राना साहेब उनके आगे बच्चा रहैं। ठकुराइन कहवाइनि कि खाना खाय के होय तौ लरिका की तरह घर मा आय के खाय जाओ औ जो अपने बड़े गुमान मां हो तौ बताये देइति है, हियैं पड़ियारे नाला पर तुमरे सब घोड़न की पूँछै कटाय ल्याब। ई पर राना बेनीमाधौ तुरन्त हाँ आजी हाँ आजी करति आये और चुपचाप पाटा पर बइठि क खाना खाय लिहिनि।"

सामन्तों में यह चलन है कि जब कोई बड़ा सामन्त अपने से छोटे सामन्त के घर भोजन करने जाता है तो बिना नज़र लिये खाना नहीं खाता। राणा वेणीमाधव बक्श सरदारों के सरदार थे, परन्तु कुनबे की बड़ी बूढ़ी के सामने अपनी मर्यादा को बालाये ताक कर चुपचाप भोजन करने चले गये, यह उनकी महानता का परिचायक है।

सेमरी के युद्ध के समय जब जमीपुर के टीले पर गोले गिरे तो महारानीगंज का बरखण्डी बनिया और हर प्रसाद सिंह ठकुराइन साहबा को नदी द्वारा बरहा

मौजा में सुरक्षित पहुँचा आये ।

"शिवरतन सिंह बैहार वाले सिमरी आवति रहैं तउन मैदनवां मां भूँजि डारेगे।" सेमरी में उस समय अरहर कट चुका था, खेतों में उसकी खूँटियां निकली हुईं थीं; सेमरी के कुँओं का पानी खारा है। अँग्रेज़ों ने पहले तो यह इल्ज़ाम लगाया कि विधवा रानी ने खेतों में खूँटियां गड़वाईं और कुओं में जहर घुलवाया है। रानी बाग़ी है। बाद में एक अंग्रेज़ में लिखा कि विधवा रानी और नाबालिग़ ऐसा नहीं कर सकते। सेमरी में 'नकटी' और 'बलदेव बाण' नाम की दो तोपें थीं, उन्हें अंग्रेज़ उठा ले गये।

डौंडिया खेरे के राव रामबख्श से ठाकुर रनदमन सिंह प्रसन्न नहीं देखते थे, उन्होंने कहा कि राम बकस ने राना साहव को फँसा दिया "राम बकस राना साहेब ते कहिनि कि तीनि बरस का रासन गँजा है। खाओ औ लड़ौ। और आप खजाना लइकै चुप्पे ते कासी जी भागिगे। उयि स्यवाला (शिवाला) माँ अँगरेजन क पकड़ि कै जलाय चुके रहैं न, वहे बात क डर रहै।" राव रामबख्श जब पकड़े गये तो कोई उनकी शिनाख्त करने न आया; केवल मौरावाँ के चन्दन लाल खत्री और मुरारमऊ के दुर्विजय सिंह ने शिनाख्त की।

राव रामबख्श के प्रति लाल साहब सेमरी भी भावशून्य आलोचक की भाँति अपने उद्गार प्रकट करते हुए बोले: "राव रामबख्श ने कोई लड़ाई तो लड़ी नहीं। दो काम किये, एक तो शिवाले में आग लगाई, दूसरे अंगरेज़ों की नाव डुबाई। यह उनकी वीरता है।"

लाल साहब ने रावसाहब की एक विशेषता यह बतलाई कि उन्हें डूबते हुए लड़कों को देख कर बड़ा सुख मिलता था। वे घाट पर पूजा के लिये बैठते और उनके सधे हुये डुबकी खोर नहाने वाले बच्चों की टाँग घसीट कर पानी में खींच ले जाते थे। राव साहब की 'सैडिस्ट' प्रवृत्ति की यह बात सुनकर मैं स्तम्भित रह गया।

नाव डुबोने और मन्दिर में आग लगाने की घटना को लेकर मन में अब तक साफ नहीं हूँ। श्री सुरेन्द्रनाथ सेन ने अपनी पुस्तक 'एट्टीन फिफ्टी सेवन' में मौब्रे टॉमसन और डेलाफ़ोज़ की पुस्तकों से वे अंश उद्धृत किये हैं, जिनका संबन्ध नावें डुबाने से है। अंग्रेजों द्वारा मंदिर में शरण लिये जाने का उल्लेख भी है, सेन की पुस्तक में राव रामबख्श के इलाके में नावें फँसने, गोलियां चलाये जाने और सात अंग्रेजों के शिवालय में आश्रय लेने की बात तो है पर मंदिर में आग लगाये जाने की घटना का कोई उल्लेख नहीं है। ये दो अंग्रेज जो कि स्वयं उन घटनाओं में

फँस कर भी सौभाग्यवश बच निकले मंदिर में आग लगाने की घटना पर क्यों मौन हैं ? सेन ने केवल इतना ही लिखा है : "पीछा करने वालों से जब बचना मुश्किल हो गया तो निराश दल ने एक मंदिर में शरण ली। मंदिर में खाने के लिये कुछ नहीं था, लेकिन एक गड्ढे में दुर्गन्धियुक्त पानी भरा था, वही उनकी प्यास बुझाने में सहायक हुआ। उन्हें अपनी यह शरण-स्थली भी छोड़नी पड़ी और नदी की ओर भागे।" सेन महाशय अंग्रेज़ों के प्रति भारतीयों के अत्याचार की कहानियां सुनाने से पुस्तक भर में कहीं नहीं चूके, फिर राव रामबख्श का यह अपराध ही क्यों बख्श दिया ? सेन साहब अंग्रेजों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते-करते इतने आत्मविभोर हुये हैं कि अंग्रेज़ों के शत्रु, स्वदेश वासी क्रांतिकारियों को, आप भी 'शत्रु' ही कहने लगे हैं। ऐसे व्यक्ति का चुप रहना तो यही साबित करता है कि उसे आग लगाने के प्रमाण न मिले हों। पण्डित देवीदत्त शुक्ल ने 'अवध के गदर का इतिहास' में मंदिर जलाये जाने की बात लिखी है।

अंग्रेज़ी नावों पर गोलीबार करने की योजना किसी और की बनाई थी। राव रामबख्श उस योजना में शरीक़ अवश्य हुये थे। मंदिर भी भीड़ ने जलाया, राव रामबख्श वहां मौजूद थे या नहीं; इसका भी कोई उल्लेख अब तक कहीं नहीं पढ़ा।

ऐसी दशा में राव रामबख्श को इन कार्यों के लिये दोषी ठहराना कहां तक उचित है, यह बात विचारणीय है। रही उनके बच्चे डुबाने वाली आदत की बात— इसके सम्बन्ध में फ़िलहाल कुछ नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

बात सत्तावनी नायकों से हट कर अन्य सामन्ती नोकझोंक की ओर बढ़ी। ठाकुर रणदमन सिंह ने कहा कि एक बार गौरा के ठाकुर हमसे बोले कि बैसों में राव दर्जा राणा से ऊँचा है। कविता का प्रमाण दिया—

दस हर (हल) राव आठ हर राना।
चार हरे कर भला किसाना..........।।

इस पर रणदमनसिंह जी ने जोश से तन्नाते हुये उनसे कहा कि आप के द्वारा दिया जाने वाला कविता का प्रमाण अशुद्ध है; शुद्ध इस प्रकार है—

दस हर राव बीस हर राना।
चार हरे कर भला किसाना।।
दुइ हर केरी खेती बारी।
एक हरे ते भली कुदारी।।

बैस ठाकुरों का प्रधान गढ़ दरअस्ल डौंड़िया खेड़ा है। जहाँ के राव रामबख्श थे। शंकरपुर और खजूर गाँव के राणा बैसों में प्रमुख सामन्त थे। राणा वेनीमाधव के व्यक्तित्व से शंकरपुर का माहात्य बहुत बढ़ गया था, दरअस्ल बैस सामन्त तीन शाखाओं में बँट गये थे। मुरार मऊ, डौंडिया खेड़ा और पुरवा के बैस, महान वैंस राजा तिलोकचन्द के ज्येष्ठ पुत्र पिरथीचन्द के वंशज हैं। तिलोक चन्दी बैसों की अन्य दो बड़ी शाखायें, सेम्ब्रसी और नेहस्ता घराने, राज्य तिलोकचन्द के छोटे पुत्र हरिहर देव के वंशजों ने स्थापित कीं। डौड़िया खेड़े वाले अपने को श्रेष्ठतम मानते हैं। यह श्रेष्ठता लघुता के झगड़े बैसों के इन तीन प्रमुख घरानों में अक्सर पारस्परिक ईर्ष्या के कारण बने हैं।

बैसों के इतिहास की भी रोचक कहानी है। वैसे तो बैंस शालिवाहन श्री हर्ष के वंशज माने जाते हैं। बदायूँ, मैनपुरी, इटावा, बैसों के पूर्व स्थान हैं। अवध में इनका इतिहास सन् १२५० ई० से आरम्भ होता है। अभयचन्द, निर्भयचन्द नामक दो भाई बक्सर घाट पर गंगा नहाने आये। उन दिनों अर्गल के गौतम वंशी राजा और सूबेदार में जोरों की तनातनी चल रही थी। वे भारत में मुस्लिम शासन के प्रारम्भिक दिन थे। दिल्ली में गुलाम वंश का शासन चल रहा था। अवध में राजपूत सामन्तों से मुसलमान शासकों की पटरी नहीं बैठी थी। इसलिये मुसलमान सूबेदार ने गंगा नहाने आई हुई गौतम रानी तथा उसकी पुत्री को घेर लिया। रानी ने गुहार लगाई कि अगर कोई क्षत्रिय हो तो विधर्मियों से हमारी रक्षा करे। निर्भयचन्द, अभयचन्द दोनों भाई मुक़ाबले पर आ डटे और सूबेदार की सेना को मारकर खदेड़ दिया। इस युद्ध में निर्भयचन्द ने वीरगति प्राप्त की। अभयचन्द रानी और राजकुमारी को पहुँचाने के लिये अर्गल गये। गौतम राजा ने उनके साथ अपनी राजकुमारी का विवाह कर दहेज में बाइस मुहाल दिये। इन्हीं बाइस मुहालों के ठाकुर होने के कारण ये लोग बैस कहलाते हैं।

ठाकुर रणदमन सिंह ने इस सम्बन्ध में एक कविता दिखाई:—

अवध राज डलमऊ बरेली ले
थुड़ेली, मौरावाँ, सिसेंडी, निघोवां सरवन सिहारे में।
गिरधर कवि सातनपुर, पाटन, बइहार,
गुला देवरख कहिंजर बिराजत जवारे में॥
पाहन, ससान, मगड़ायल, सेदू, घाटमपुर,
कुम्भी डौंड़िया खेर, हड़हा बिराजत जवारे में।

बरवत विशाला शालिवाहन के वंश वारे,
बसत बैस साढ़े बाइस मुहाल बैसवारे में ।।

इस प्रकार बैसों के प्राचीन इतिहास की कान पड़ी भनक के साथ ही साथ यह विचार आया कि आरम्भ में नये शत्रु के सामने बैस अन्य क्षत्रियों के साथ भी संगठित हो सके; फिर अपने ही साढ़े बाईस मुहालों में फूट पड़ गई। घर ही में बड़े छोटे की लतिहाउज चल गई; मुसलमानों से भी चलती ही रही। परन्तु सन् सत्तावन में फिर यह आपसी फूट उड़नछू हो गई।

हिन्दुस्तान में फूट, गुलामी फिर संगठन; फिर फूट, गुलामी और फिर संगठन—यही क्रम कम से कम सिकन्दर के आक्रमण के समय से तो हमें दिखलाई ही पड़ता है। सत्तावनी क्रान्ति का काल देश के पुनः संगठन का श्रीगणेश-काल था। यों फूट-परस्ती का बोल बाला भी रहा, परन्तु यह बात माननी पड़ेगी, कि राव और राणा आपसी छोटाई बड़ाई भूल कर संगठित हुये थे, हिन्दुओं ने वैर भूल कर देश की एकता के प्रतीक 'म्लेच्छ' यवनों के हरे झण्डे को उठाया था, और मुसलमानों के लिये हिन्दुओं के बजाय अंग्रेज काफ़िर हो गये थे। यह इतिहास का एक नया मोड़ था। सन् सत्तावन में जागी ज्योति के प्रकाश में भारत ने अपनी राष्ट्रीयता को पहचाना। भारत के इतिहास में ६ अप्रैल सन् १९१९ का दिन अपूर्व था। उस दिन देश ने अपने पूर्ण संगठित रूप का दर्शन इतिहास में शायद पहली ही बार किया था। यह रौलट बिल के विरोध में आम हड़ताल का दिन था। गांधी की आज्ञा और काँग्रेस के प्रस्ताव पर हड़ताल हुई थी। सन् १९१९ की कांग्रेस रिपोर्ट में कहा गया है : "६ अप्रैल को देश व्यापी प्रदर्शन हुआ। सब लोग बड़े ही उत्तेजित थे। उस समय एक बात मार्के की दिखाई पड़ती थी। और वह था हिन्दू-मुस्लिम भ्रातृभाव। अब दोनों जातियों के नेता बस इसी एकता की रट लगाये हुये थे। हर सभा में यही आवाज़ निकलती थी। इस जोशो-खरोश के जमाने में छोटी जातियों ने भी अपने मतभेद भुला दिये। वह भ्रातृभाव का एक अद्भुत दृश्य था। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के हाथ से खुल्लम-खुल्ला पानी लेते देते थे, ज़ुलूसों के झण्डों और नारों दोनों से हिन्दू मुसलमानों का प्रेम ही प्रकट होता था। एक जगह तो मस्जिद के इमाम पर खड़े हो कर हिन्दू नेताओं को बोलने भी दिया गया था।"

इस महान् ऐतिहासिक दिन की भावना उन दिनों जन्मी थी, जब राणा बेनी माधव और मौलवी अहमद उल्ला शाह आपस में एक दूसरे का हौसला बढ़ाते हुए

पत्र-व्यवहार करते थे, जब राणा ने अंग्रेजों को लिखा था कि वे विश्वासघात नहीं कर सकते, वे बिरजीस क़दर के साथ हैं ।

हरदोई और उन्नाव

खोज-बीन के काम या तो सन्यासी साहित्यिक कर सकता है या फिर किसी बड़े रईस का साहित्यिक बेटा । मैं दोनों में से एक भी नहीं, पर काम करने का शौक़ है । गृहस्थी की झंझटों के कारण कभी-कभी अपने शौक़ से समझौता करना ही पड़ जाता है । कहने का तात्पर्य यह कि हरदोई और उन्नाव जिलों में गदर के फूल चुनने न जा सका । पहले कुछ अड़चनें आ गईं, बाद में वर्षा का ज़ोर बढ़ गया । न जा पाने का मुझे हार्दिक दुःख है ।

हरदोई जिले में मुझे तीन प्रमुख नाम मिले थे । रोइया के राजा नरपत सिंह, संडीला के चौधरी हशमत अली और बेरुवा के ठाकुर गुलाब सिंह ।

चौधरी हशमत अली के संबंध में 'सवान हात-ए-सलातीन-ए-अवध' में पढ़ा था । बेगम का परवाना पाकर आप चार हज़ार की सेना लेकर लखनऊ पहुँचे थे ।

रोइया के नरपत सिंह और बेरुवा के गुलाब सिंह के संबंध में मेरी सूचनायें क्रमशः दैनिक "नवजीवन' और 'स्वतंत्र भारत' में प्रकाशित श्री बुद्धि सागर वर्मा और श्री वचनेश त्रिपाठी के लेखों तक ही सीमित हैं ।

राजा नरपति सिंह

हरदोई ज़िले में बिलग्राम से दस मील दूर सदामऊ (रोइया ग्राम) स्थित है । जहां के नरपति सिंह सत्तावनी कांति में अमर हो गये ।

नरपति सिंह के पूर्वज राणा प्रताप भानु उदयपुर राज्य से किसी कारण वश निष्कासित होकर इधर आये थे । बिलग्राम के सैयदों ने प्रताप भानु से मैत्री संबंध स्थापित किया । अपने इलाक़े का रोइया ग्राम इन्हें दे दिया । प्रताप भानु की चौथी पीढ़ी में नरपति सिंह हुए । इन्होंने अपने चचेरे भाई सुमेर सिंह से गद्दी पाई ।

नरपति सिंह स्वयं वीर और वीरों के प्रशंसक एवं पोषक थे । उनकी सेना में वही भरती हो सकता था जो सेर भर या इससे अधिक भोजन सामग्री को पचा ले । वे अपने सैनिकों की कठिन परीक्षा लेते थे । सदियों पुराने सामंती कायदे के

अनुसार सैनिक अपने-अपने गाँवों में ही रह कर खेती-बारी करते थे और साल में दो बार कवायद करने आया करते थे।

मेरी समझ में फौज़ रखने का यह तरीका ही इस देश को सदा कमज़ोर बनाता रहा। व्यक्तिगत वीरता और बात है, परन्तु इससे युद्ध के समय कभी उस प्रकार का संगठन नहीं हो सकता जैसा कि सेनाओं की नियमित क़वायद से वीरों में आता है। लड़ाई का हाँका पड़ते ही राजा से गुज़ारे के लिये जमीन पाने वाले नमकख्वार वीर ग्रामीण जन बस मरने और मारने का निश्चय कर संग्राम क्षेत्र में पहुँच जाते और अंधाधुंध मार-काट मचाते थे।

अपने संबंधी, शिवराजपुर के चंदेले ठाकुर सतीप्रसाद की प्रेरणा से नरपति सिंह भी अंग्रेज़ों के विरोधी संगठन में सम्मिलित हुये। इसी सिलसिले में आपने संगठन विरोधी अँग्रेज़ परस्त गंज मुरादाबाद के ज़मींदार पर आक्रमण भी किया। लखनऊ की सरकार से आपके नाम परवाना भी भेजा गया था, जिसे स्वीकार कर आपने लिखा कि परिस्थिति को देखते हुए मेरा लखनऊ आना उचित नहीं। मैं यहीं रह कर शत्रुओं की राह रोकूंगा।

अंग्रेज़ों ने नरपति सिंह को अपनी ओर मिलाने के लिये सभी उपाय किये परन्तु नरपति सिंह का निश्चय स्वाभिमानी क्षत्रियों की परम्परा के अनुसार दृढ़ था। यह देख कर्नल एग्रियन होप ने पूर्व की ओर से रोइया गढ़ी पर आक्रमण किया। सूचना मिलते ही नरपति सिंह ने अपने वीरों का आह्वान कर एक सभा की। सबकी यही सलाह हुई कि सम्मुख युद्ध करने के बजाय गढ़ी के फाटक बन्द कर रक्षात्मक युद्ध करना ही उचित होगा।

अंग्रेजों का आतंक भारी था। एक सेर राशन खाने वाले नरपतिसिंह के वीरों में कुछ कायर भी थे। रोसगंज के दो व्यक्ति नरपति सिंह की सेना में नौकर थे। वे दोनों डर कर अपने गाँव की ओर भागे। उनमें से एक ब्राह्मण कुमार सई नदी के तट पर कारणवश कुछ देर के लिये रुक गया। उसका साथी कुरमी पुत्र अपने गाँव पहुँचा। भगोड़े ब्राह्मण के वृद्ध पिता अपने दरवाजे पर बैठे भाँग घोट रहे थे। कुरमी पुत्र को देख कर कहा :" कैरे लल्तुआ ई बेरिया तुई हियाँ कइसे आइगौ रे ?"

ललतू कुर्मी ने कहा : "काका, गढ़ी पर फिरिंगिन को हमला होइ वालो है। राजा साहब की अब खैरि नाईं है। जानि बूझि कै आगी म कउनु कूदै। कइयौ सिपाही अपने-अपने घर भजि गये। सो महूँ चलो आयउँ। तुम्हारो लउँडव पीछे आय रहो है।"

वृद्ध ब्राह्मण का चेहरा तमतमा उठा। रक्त खौलने लगा। वह भीतर से अपनी तोड़ेदार बन्दूक उठा लाया और उसे भरकर गज ठोकते हुए बोला "ससुरे जलम भरि ठाकुर साहब को नमकु खाओ है, लहड़ू भरि-भरि जिनिस लाओ अउर जब उन पर बिपति आई तो भजि आओ। आवै ससुरा दरवाजे पै गोली मारि दिहैं।"

वृद्ध ब्राह्मण का यह कोप देखकर ललतू अपने ब्राह्मण साथी के सहित लौट गया और वे अंत तक लड़े।

होप साहब की सेना ने गढ़ी घेर ली। गढ़ी में गिरने वाले गोलों को तुरंत गीले टाटों से ठंडा कर दिया जाता था, और सिपाही बंदूकों की बाढ़ों पर बाढ़ें दाग़ कर अंग्रेज़ों को सुला रहे थे। दिन भर युद्ध चला।

रक्षात्मक युद्ध आखिर कब तक चल सकेगा ? यदि पराजय हुई तो ?—इसके लिये भी पूर्ण प्रबन्ध था। नीचे कमरे में चार अंगुल मोटी बारूद की पर्त बिछा उस पर क़ालीन बिछाई गई। गढ़ी की स्त्रियां कन्यायें उस पर बैठी थीं। क़मरे के पास ही एक ठीकरे में आग रक्खी हुई थी। अंग्रेजों के जीतने पर स्त्रियों को क्षण भर में स्वर्ग पहुँचाने का प्रबंध था। परन्तु सात वर्ष की लड़की नरपति सिंह से कहती थी ; "बापू, तुम न घबड़ाना, जीत तुम्हारी होगी।"

जीतने की कोई आशा नहीं थी, पर विधि का विधान विचित्र है। होप साहब अपने किसी सहकारी को कुछ आदेश दे रहे थे तभी एक गोली ने उनके प्राण ले लिये। अंग्रेजों में शोक छा गया। सफेद झण्डा फहरा कर युद्ध बंद किया और कूच कर गये। अंग्रेज़ों को बहुत नुकसान सहना पड़ा।

दुबारा घाघरा पल्टन भेजी गई। नरपति सिंह की गढ़ी बांस के जंगलों और खाँईं से घिरी हुई थी। गोरी सेना बड़ी सीढ़ियां लेकर आई। खाँई पार की, गढ़ी की मुंडेर तक सीढ़ियां लगा दी। गढ़ी की दीवाल के दोनों ओर से भयंकर गोला-वार हुआ। अंग्रेज़ों के छक्के छूट गये।

तीन दिन युद्ध हुआ। इसके बाद बुद्धि सागर जी के लेख और सेन महाशय के विवरण में अंतर है। सेन जी के अनुसार नरपत सिंह गोरों को छका कर चुप-चाप किला खाली कर निकल गये और बुद्धिसागर जी के अनुसार नरपति सिंह के वीरों ने घुटकर मरने के बजाय फाटक खोल दिये और अंग्रेज़ों को प्रबल रणदान दिया।

बेरुआ के गुलाब सिंह

गुलाब सिंह भिण्ड भदावर के रहने वाले भदौरिया राजपूत थे। वे सण्डीला के पास बेरुआ रियासत में बस गये और वहीं के दीवान भी हो गये।

क्रांति के दिनों में उक्त रियासत का मालिक एक सात वर्षीय बालक चंद्रिका बख्श सिंह था। गुलाबसिंह ही कर्ताधर्ता थे। ये स्वदेशी दल में शामिल हो गये। इनके छोटे भाई गोपालसिंह ने विरोध किया। जब गुलाबसिंह न माने तो छोटे भाई ने अपने प्राण देने की धमकी दी। दोनों ही भाई अपनी आन के पक्के थे, गुलाबसिंह ने देश का साथ न छोड़ा और छोटे भाई ने सचमुच अपना गला काटकर देह छोड़ दी।

उन्होंने लखनऊ, कानपुर, रहीमाबाद, मलीहाबाद, सण्डीला, जामू, मल्हेरा, बेतवा-तट और बेरुवा गढ़ी आदि स्थानों में अद्‌भुत वीरता दिखा कर अंग्रेजों के छक्के छुड़ाये।

नाना साहब के यह परम भक्त थे। लखनऊ की पराजय के बाद नाना साहब एक बार फ़रारी की हालत में गुलाब सिंह के साथ बेरुआ आये थे। वे नाना साहब के साथ ही रहे और अंत में नेपाल के जंगलों में मलेरिया से पीड़ित होकर प्राण त्याग किये।

राव रामबख्श सिंह, डौंडिया खेड़ा

डौंडिया खेड़ा तिलोक चंदी बैसों का प्रमुख केन्द्र था। राव रामबक्श सिंह वहाँ के अधिपति थे। राव साहब के सम्बन्ध में उन्नाव निवासी, युवराज दत्त कालेज, लखीमपुर के प्राध्यापक श्री प्रतापसिंह चौहान ने पत्र लिखकर सूचित किया है : "राव रामबख्श सिंह अत्यन्त धर्मात्मा और निर्भीक व्यक्ति थे। उनकी नस-नस में स्वतंत्रता का अभिमान संचरित था। यही कारण है कि १८५७ के उन्नाव वाले परिच्छेद में, जिसका नेतृत्व वे स्वयं कर रहे थे, उन्नाव ने सबके बाद में अपनी तलवार म्यान में रक्खी। वे नित्य खड्‌ग पूजा करते थे और किंवदंती है कि उनकी तलवार उठकर उनके पास आ जाती थी।

"हमारे पूर्वज इनके मान्य होकर आये थे। उनके दिये गाँव आज भी हमारे पास है। वे गाँव हैं भइया खेड़ा, पहाड़पुर, कपूरपुर और बिजई खेड़ा।

निस्संदेह उन्होंने उन अंग्रेज़ों को जो उनके मंदिर में शरण लिए हुये थे व नाव से गंगा को पार कर रहे थे जलवा दिया और डुवया दिया। अधिक लोग इसे नृशंस कहेंगे पर युद्ध और प्रेम में सब उचित होता है।"

पहले ही निवेदन कर चुका हूँ, मैं अब तक यह नहीं समझ सका कि मंदिर में डेलाफोज, मौब्रे टामसन आदि घिरे हुये व्यक्तियों को जलाने के उपक्रम में राव रामबख्श का क्या हाथ था। मौब्रे टामसन का जो उद्धरण सेन महाशय की पुस्तक में है उसमें अंग्रेज़ों द्वारा शिवालय में शरण लेने का ज़िक्र तो है, पर शिवालय जलाये जाने का नहीं, यह मैं पहले भी लिख आया हूँ।

रही नाव डुबाने की बात—सो नजफ़गढ़ के पास इनकी नाव रेत में फँसी। वहां गोलियां चलीं—दोनों ओर से चलीं।

तब फिर इन पर नृशंसता का दोष क्यों आता है ?

मेरी एक पुरानी कापी में राव रामबख्श के सम्बन्ध में कुछ बातें लिखी हुई हैं। यह अब याद नहीं पड़ता कि किस व्यक्ति ने वे बातें मुझसे कही थीं। तब इंटरव्यू लेने तो निकला नहीं था। किसी ने प्रसंगवश बतलाया और मैंने आदत-वश लिख लिया। वह सूचना इस प्रकार है :

कानपुर से प्रयाग भागने वाली नाव के १३ अंग्रेज जिनमें मेजर डेलाफोज़ भी था, न जाने क्यों नजफ़गढ़ के पास नाव छोड़कर स्थल मार्ग से बक्सर पहुँचे। अकस्मात् डौंडिया खेरा के बाबू यदुनाथ सिंह ने उन्हें देख लिया और घेर लिया। बाबू किसी गोरे की गोली से स्वर्ग सिधारे और अंग्रेज गंगा के किनारे-किनारे भागे। बाबू के सिपाही अंग्रेज़ों को भूल अपने मालिक की सम्हाल में लगे। इसी बीच यह खबर बैसवारे में फैल गई। बहुत से नवयुवक और भीड़ अंग्रेजों को ढूंढ़ने निकल पड़ी। इस भीड़ का नेतृत्व राव रामबख्श कर रहे थे। भागते-भागते डेलाफ़ोज और अंग्रेज़ों ने एक मंदिर में शरण ली, मूर्तियां बाहर फेंक दीं। यह मंदिर और फुलवाड़ी संयोग से राव साहब ही की थी। जनता ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मंदिर पहुँच गई। कुछ आहट मिली, मूर्तियाँ बाहर देखीं, द्वार बन्द पाये। संदेह पक्का हुआ, अपवित्र हो चुका था, जनता ने मंदिर में आग लगा दी। डेलाफोज़ दो आदमियों के साथ किसी प्रकार लपटों से जूझता निकल भागा। गंगा तट पर गहरौली गाँव उस समय राजा मुरारमऊ के कब्जे में था। वहां उन्हें शरण मिली।

सेमरी के युद्ध में राव रामबख्श की सेना भी लड़ी थी। बैसवारे और अवध के पतन के बाद राव साहब सर्वहारा होकर बनारस भाग गये और छिपे तरीके से

रहने लगे। वहीं उनके नौकर चंदी ने धोखा देकर इन्हें गिरफ्तार करा दिया। अंग्रेजों ने उन्हें क्षमा माँगने पर विवश करना चाहा पर ये न झुके। ८ जून १८६१ में ये बक्सर लाये गये और एक बरगद के पेड़ से इन्हें फाँसी दी गई।

उन्नाव में मगरवारा, बशीरतगंज और बुढ़िया की चौकी में भयंकर युद्ध और क़त्ले आम हुये हैं। यह क्षेत्र छापे मार युद्धों और वीर कारनामों का क्षेत्र रहा है। मुझे दुःख है कि इन स्थानों में न जा सका। पुस्तक के दूसरे संस्करण तक यह कार्य अवश्य ही पूरा कर डालूँगा।

लखनऊ

लेफ्टिनेन्ट मेजर मॅक्लाड ईनिस आर० ई०, वी० सी० ने अपनी पुस्तक 'लखनऊ एण्ड अवध इन द म्यूटिनी' में उस समय के नगर की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है और विशेष रूप से पुलों और मार्गों का उल्लेख किया है। पुराने लखनऊ के बड़े रंगीन और जानदार वर्णनों के रहते हुए भी मैंने ईनिस का रेखा-चित्र ही काम का समझकर चुना है। ईनिस लिखता है :

"लखनऊ नगर लगभग साढ़े पाँच मील लम्बा और ढाई मील चौड़ा है। यह विशेष रूप से गोमती के तट पर बसा है तथा अन्य तीनों दिशाओं में एक बड़ी और गहरी नहर इसे घेरे हुये है। नगर के पश्चिमी भाग में घनी आबादी है, इसी प्रकार पूर्व की बस्ती में दक्षिणी अंश भी घना आबाद है। इसका उत्तरी पूर्वी भाग महलों, बँगलों, कोठियों, उनके साथ लगे हुये बाग़ीचों, मक़बरों और क़ब्रों से भरा है। जहां नगर के पश्चिमी और पूर्वी अर्द्धांश विलग होते हैं, वहां गोमती पर एक पुराना पत्थर का पुल है। उससे एक मील आगे नदी के बहाव की दिशा में अर्थात् पूरब की ओर एक नया पुल लोहे का बना है। इन दोनों पुलों से होकर मड़ियांव छावनी, जो उत्तर में दो मील दूर स्थित है; आ-जा सकते हैं। दक्षिण में कानपुर मार्ग लोहे के पुल से आरम्भ होकर, रेजिडेंसी के किनारे से होता हुआ चारबाग़ में नहर के ऊपर से होकर जाता है। मच्छी भवन और रेज़िडेंसी नदी के दक्षिण तट पर क्रमशः पत्थर के पुल और लोहे के पुल के एकदम निकट स्थित हैं।"

ये सारे मार्ग आज से सौ और निन्यानबे वर्ष पूर्व, क्रांति के दिनों में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे हैं। उन दिनों लखनऊ की शानदार इमारतों पर आमतौर ध्यान नहीं जाता था; ये राहें ही देखी जाती थीं। उस समय की शानदार इमारतें

खण्डहर हो गईं, बहुत-सी नेस्तनाबूद हो गईं, मगर ये राहें अब भी चल रही हैं।

वाजिदअली शाह ने अपना तख्त व ताज गँवाकर कानपुर मार्ग से ही यह कह कर सफ़र किया था :

"दरो दीवार पे हसरत से नज़र करते हैं।
खुश रहो अहलेवतन हम तो सफ़र करते हैं ।।"

लेकिन अंग्रेज़ी अमल में अहलेवतन खुश न रह सके। ११ फ़रवरी, सन् १८५६ को, लखनऊ गज़ेटियर के अनुसार, अवध के कम्पनी राज्य में मिला लिये जाने की घोषणा हुई। नवाबी सरकार के बड़े-बड़े हाकिम अमले नई व्यवस्था में सत्ताहीन हो गये; उनकी छातियों पर सांप लोटना स्वाभाविक था। नवाबी दरबार उजड़ा तो महाजनों-दूकानदारों का धंधा उजड़ गया; इनके पेट में चूहे कूदने लगे। शाही सेनायें तोड़ दी गई थीं, इसलिये शहर में शोहदों का हंगामा भी बढ़ गया था।

प्रजा अंग्रेजों की न्याय-व्यवस्था से बुरी तरह चिढ़ती थी। वाजिदअली शाह के शासन-काल में ही अवध के रेजिडेंट कर्नल स्लीमैन ने अवध के उन भागों में, जो नवाब सआदत अली खां के समय में ही अंग्रेजी अमल में आ गये थे, नई न्याय व्यवस्था के प्रति प्रजा का असंतोष देखा था। वह लिखता है कि "लोग या ज्यादातर लोग हमारे द्वारा शासित ज़िलों में रहने के बजाय अवध राज्य में रहना पसंद करते हैं। हमारे विभिन्न न्यायालयों की कड़ियों से होकर गुज़रना, हमारे गुत्थीदार क़ानून से बँधना, हमारे न्यायालयों के घमंडी और लापरवाह अफ़सरों को, तथा मुक़द्दमा लड़ाने के लिये उभयपक्षों की ओर से नियुक्त होनेवाले नये न्याय पंडितों की रिश्वतखोरी और अन्याय को बर्दाश्त करना, फिर पास हो जाने पर डिगरी करवाना उन्हें बड़ा परेशान करता है। अवध निवासियों के यदि वोट लिये जाँय तो सौ में निन्यानबे लोग हमारी गुत्थियों वाली न्याय-प्रणाली के बजाय अपनी पुरानी प्रणाली के पक्ष में ही वोट देंगे।"

अंग्रेजी अमल आते ही तरह-तरह के टैक्सों की भरमार हो गई। खाने-पीने की चीज़ों के भाव टैक्स के कारण चढ़ गये। नवाबी लखनऊ को अफ़ीम के दाम चढ़ जाना तो बेहद खला। धार्मिक दृष्टि से 'क़दम रसूल' नामक पवित्र स्थल में अंग्रेजों द्वारा बारूद-भण्डार (मेगज़ीन) स्थापित किया जाना भी लोगों के दिलों में आग लगा गया। पुराना राजा कैसा भी हो, अपना था। उसके महलों में नये शासकों को देखदेख कर जनता मन ही मन कुढ़ती थी। छतर मंज़िल में गोरे साहब रहते

थे, खुर्शीद मंजिल में उनकी भोजनशाला थी । चौपड़ अस्तबल में उन्होंने अपनी एक पल्टन रक्खी थी तो उसके आस-पास के अच्छे मकान फ़ौज़ी अफ़सरों के लिये ले लिये गये थे । तारा कोठी जिसमें आजकल स्टेट बैंक की स्थानीय शाखा है, वेधशाला से कचहरी बन गई । । इसके आसपास की तमाम कोठियां बड़े-बड़े गोरे अफ़सरों ने हथिया लीं । आसफ़ी दौलतखाना और शीश महल भी गोरी फ़ौजों के अड्डे बन गये । इससे क़रीब ढाई-तीन मील आगे मूसाबाग़ में भी कंपनी की सेना रहने लगी । अंग्रेज़ों ने अपनी समझ से तो नगर को खूब घेर रक्खा था । उत्तर में शहर से ढाई-तीन मील दूर मंडियांव छावनी थी, उसके आगे मुदकीपुर में थी, शहर में सिकंदर बाग के पास चक्कर वाली कोठी में थी—फ़ौजें कहां नहीं थीं ? नगर की प्रजा को आतंकित किये रखने का पूरा प्रबंध था । अंग्रेजों से लखनऊ निवासी प्रसन्न नहीं थे । ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के समय लखनऊ की यात्रा करने वाले अंग्रेज़ महापादरी आर्कबिशप हेब्बर ने अपने यात्रा वृत्तान्त में लिखा है कि अंग्रेज़ों को शहर में हाथी पर सवार होकर दस-पाँच सिपाहियों के साथ ही शहर में निकलना चाहिये, इक्का-दुक्का घोड़े पर सवार अंग्रेज़ यहां कत्ल कर दिये जाते हैं ।

अंग्रेज़ी अमल होने पर शहर के अंदर लोगों ने अंग्रेजों को किराये पर मकान देने से इंकार कर दिया था । अफ़सरों ने परेशान होकर चीफ़ कमिश्नर हेनरी लारेंस से दरख्वास्त की और रहने की जगह पाने के लिये गोरों को कानून का कोड़ा चलाना पड़ा ।

यह नगर की मनोदशा थी !

फ़रवरी सन् १८५७ ई० तक मौलवी अहमदुल्ला शाह भी लखनऊ में ही थे । वे घसियारी मंडी में रहते थे । लखनऊ के बहुत से बड़े-बूढ़े उन्हें आज भी डंकाशाह मौलवी के नाम से जानते हैं । सैय्यद कमालुद्दीन हैदर ने लिखा है कि 'नक्काराशाह' के नाम से मशहूर थे । हो सकता है कि पढ़े-लिखे शुरफ़ा लोगों ने अपनी प्रांजल भाषा में डंके को नक्कारा पुकारना उचित मान अपने वर्ग में यही नाम प्रचलित कर लिया हो । शैदा बेगम ने जानेआलम वाजिदअली शाह को पत्र लिखते हुए शहर का, मौलवी साहब का हाल यों लिखा है : "पिया जानेआलम, जबसे आप लखनऊ से सिधारे ख्वाब हराम है । रोना-धोना मुदाम है यहाँ शबोरोज़ अहोबुकां में गुज़रती है, मगर दूसरी मेरी हमजिन्सें खुश-खुश इठलाती फिरतीं हैं । आपके बाद से फ़िरंगियों के खिलाफ़ जहर उगला जा रहा है । नई-नई बातें

सुनने में आ रही हैं। दिल को हौल है कि देखिये फ़लक़ क्या-क्या रंग दिखलाता है। घासमण्डी में मौलवियों का जमाव है। सुना है कि एक सूफ़ी अहमदुल्लाशाह आये हुए हैं। नवाब चीनाटीन के साहबजादे कहलाते हैं। आगरे से आये हैं। ये भी सुना है कि उनके हजारहां मुरीद हैं और वो पालकी में निकलते हैं। आगे डंका बजता होता है, पीछे अज़दहाँ बड़ा होता है। वहशतनाक खबरों की गर्म-बाज़ारी है।......"

मौलवी साहब के शिष्यों के संबंध में मैंने यह भी सुना है कि वे लोग भीड़ के सामने अंगारे चबाया करते थे, मौलवी साहब कहते थे कि जो आज अंगारे चबा रहे हैं कल वे ही आग उगलेंगे। उन्हीं को जन्नत मिलेगी। उनके चमत्कार, अमीरुज्जिन्नात के साथ उनका गठबंधन, अल्लाह के साथ उनकी बातें—कहते हैं रात के बारह बजे वे अपनी कोठरी बंद करके अंधेरे में बैठ जाते थे। फिर कोठरी में हजारों गैस बिजलियों को मात करने वाला ख़ुदाई नूर फैल जाता था और बादल की घड़घड़ाहट, और बिजली की कड़क होती थी। ऐसे में मौलवी साहब की अल्ला मियाँ से बातें होती थीं। उनके खास-ख़ास मुरीद दरवाज़े के बाहर कान लगाये खड़े रहते थे और फिर सबको बताते थे।

फ़रवरी में मौलवी साहब फ़ैज़ाबाद गये। श्री सुन्दरलाल की 'भारत में अंगरेज़ी राज' पुस्तक के अनुसार १८ अप्रैल को नाना साहब अपने साथियों सहित लखनऊ आये थे। उनका बड़ा भव्य स्वागत हुआ। हर वर्ग के लोगों ने उनके स्वागत में सहयोग दिया। मैंने सुना है कि चौक के सर्राफ़ों ने सोने के आभूषणों से सजे द्वार बनाये थे।

नाना साहब निस्संदेह यहां के हाल-चाल लेने, सूबेदारों से, पुराने राजवंश के लोगों से मिलने, क्रान्ति की योजना फैलाने ही आये होंगे। नाना यद्यपि यहां आकर अपनी नीति के अनुसार अंग्रेज़ हाकिमों से भी मिठबोला कर गये।

१८ अप्रैल जो नाना साहब के भव्य स्वागत का दिन है, वही साहबे आलीशान चीफ़ कमिश्नर सर हेनरी लारेंस के अपमान का दिन भी है। साहबे आलीशान बग्घी पर सवार शाम की सैर को निकलते थे, किसी शहरी आदमी ने उन पर कीचड़ उछाली।

इससे कुछ दिन पूर्व छावनी में एक बड़ी घटना और हो चुकी थी। अप्रैल के प्रारम्भ में ४८ वीं देशी पलटन के अंग्रेज़ डाक्टर वेल्स अस्पताल का औषधि-भण्डार देखने गये। उनकी तबीयत भी कुछ गड़बड़ थी, एक बोतल उठाकर मुंह

से लगा ली और एक खूराक पीकर फिर डाट लगा कर वहीं रख दी। हिंदुओं में छुआछूत का इतना अधिक विचार था कि यह आंग्ल अविचार खुले विद्रोह का कारण बन गया। सिपाहियों ने कह दिया कि हम इन दवाओं को व्यवहार में नहीं लायेंगे। इसकी खबर कर्नल पामर को पहुँची। उन्होंने सब देशी अफ़सरों को बुलाया। उनके सामने वह बोतल नष्ट की गई। डाक्टर वेल्स को सबके सामने खूब डाँटा। मगर तब भी संतोष नहीं हुआ। दो-तीन दिन बाद एक रात डॉक्टर का बंगला फूंक दिया गया। यह स्पष्ट होने पर भी कि काम ४८वीं पल्टन का ही है, किसी को दंड नहीं दिया गया।

आटे में हड्डियों का चूरा मिला होने की अफ़वाह धीरे-धीरे पीछे से आने लगी थी।

फ़ौज के देशी अफ़सर नवाब सआदत अली खां के पुत्र नवाब रुक्नुद्दौला और वाजिदअली शाह के बड़े भाई मिर्ज़ा मुस्तफ़ा अली खां [पिता द्वारा नालायक़ साबित होकर ताजदार न होने के कारण नंगे सिर रहते और कहते थे कि जब पहनूंगा तो ताज ही पहनूंगा] से शाही वंश के संरक्षण और नेतृत्व करने की बातें चला रहे थे। पुलिस के जासूसों ने अंगरेज़ सरकार को इसकी रिपोर्ट भी दी थी।

अप्रैल का महीना लखनऊ में बड़ी सरगर्मी का रहा।

२ मई, सन् १८५७ ई० को मूसाबाग़ के सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र में ७वीं अवध इर्रेगूलर सेना के सामने वे कारतूस आये जिन्होंने मंगल पाण्डेय को स्वतंत्र सत्तावन का प्रथम स्वर प्रदान किया था।

७वीं इर्रेगुलर के अवधी जवानों ने नये कारतूस लेने से इंकार कर दिया। अफ़सरों ने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया, मगर 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की।' एक भी जवान नई इन्फ़ील्ड राइफ़लें और उनके दाँतों से खोले जाने वाले कारतूस लेने के लिये अपनी जगह से एक क़दम आगे न बढ़ा। तब अनुशासन की सख्त कार्रवाई करने की धमकी दी गई। अब तक तो सैनिक मौन थे पर जब धमकियों की विवशता सीमा लाँघने लगी तो एक जवान दीवाना हो पंक्ति से बाहर निकल कर चिल्ला उठा : "दीन ! फ़िरंगी के दीन से बचाओ।"

इस एक आवाज़ ने सनसनी फैला दी। वह सिपाही फ़ौरन पकड़ लिया गया; और भी पकड़े गये। उन्हें लाइन से अलग कर औरों को 'डिस्पर्स' होने का आदेश दिया गया। एक हज़ार जवानों ने न तो उन्हें ही जाने दिया

और न आप ही पंक्ति से हटे । एक हज़ार भाई इकट्ठा जीना मरना चाहते थे—केवल तीस भाइयों को ही अलग ले जाकर मारा नहीं जा सकता था । उस समय सूबेदार, सिपाही हिन्दू, मुसलमान—भारतीय मात्र एक था ।

अब तो सैनिक अनुशासन की दृष्टि से बहुत ही बड़ी समस्या उपस्थित हो गई थी । कुछ बिचौलिये सामने आये, कहा, हुज़ूर समझाने-बुझाने का मौक़ा दिया जाय । इससे हुज़ूर की लाज भी बच गई । दिन में दोनों ओर कल के लिये तैयारी होने लगी । सिपाही अपनी इस अवज्ञा का परिणाम जानते थे । अपनी तैयारी करते हुए उन्होंने हथियार और गोला-बारूद अपने अधिकार में कर लिये । इतना ही नहीं उन्होंने अपने से ऊँची मड़ियांव की ४८ वीं रेजिमेंट के 'बड़े भाइयों' के नाम एक पत्र भी लिखा । स्वधर्म रक्षा के लिये अरदास की । ४८वीं रेजिमेंट के एक सूबेदार, एक हवल्दार और एक सिपाही ने, जिनके हाथ यह चिट्ठी लगी, सर हेनरी लारेंस के हाथों में उसे रख दिया । कुछ दिन पहले इसी ४८ नंबर ने विद्रोह किया था ।

दूसरे दिन हेनरी लारेंस गोरी पल्टन के १५०० सवार और तोपखाना लेकर पहुँच गये । चारों ओर से घेर कर इमारत पर तोपों की मार शुरू की । सिपाहियों ने समर्पण कर लिया । फ़ौरन परेड की गई । अंग्रेजी तोपखाना उनके सामने लाया गया । गोला-बारूद भर कर ज्योंही एक सार्जेंट ने पलीता लगाया कि ७ वीं अवध इर्रेगुलर सेना के जवान हिल उठे । चारों ओर भग-दड़ पड़ गई । सिपाही हथियार छोड़-छोड़ कर भागे । कल्पना करता हूँ कि मूसाबाग की जगह-जगह से ध्वस्त चहारदीवारी में थर्राये हुए इंसान इधर-उधर बेतहाशा भाग रहे होंगे और अंग्रेज घुड़सवार उन्हें उसी तरह धर-धर कर दबोचते होंगे जैसे जंगल में जानवरों को शिकारी कुत्ते दबोचते हैं । एक हज़ार में १२० मर्द डटे रहे । उनसे हथियार गिरवा कर क़ानूनी खानापूरी की गई, अर्थात वह सेना भंग कर दी गई । उन १२० सिपाहियों में से कुछ छोड़ दिये गये तीस को फांसी की सजा दी और चालीस आदमियों को आजन्म की मशक्क़त क़ैद । फाँसियाँ लक्ष्मणटीले के पास मच्छी भवन के फाटक के सामने खुलेआम दी गईं । इनका फाँसी देने का तरीक़ा भी घोर राक्षसी था । सुबह की फ़ाँसी लगाई लाश दिन भर लटकी रहती, शाम को दूसरा क़ैदी लटकता, पहले की लाश जिसे दिन भर चील गिद्ध नोच-नोच कर खाते भी थे, शाम को वहीं दफ़ना दी जाती ।

शहर की साँस सलाख-सी खड़ी हो गई। लोगों के मुँह से आपस में बात करते भी बोल नहीं फूटते थे। एक बार तो ऐसा आतंक बैठ गया कि अंग्रेज़ों का सर्दार हेनरी लारेंस भी स्वयं अपने रौब को देख कर सकुचा गया। उसने देखा कि चारों ओर अंग्रेज़ों का भय आवश्यकता से बहुत अधिक बढ़ गया है तो उसे ज़रा कम करने के लिये उपाय सोचने लगा। इसी बीच १३ नंबर पल्टन के एक सिपाही ने बड़ी मुस्तैदी से शहर के उन तीन व्यक्तियों को गिरफ्तार करा दिया जो उसे एक षड़यंत्रकारी कार्य में सम्मिलित करना चाहते थे। सर हेनरी लारेंस अपनी इन दो सेनाओं के ऐसे जवानों से बड़ा प्रसन्न हुआ। जनता में विशेष रूप से भारतीय सैनिकों में आश्वासन जगाने के लिये सर हेनरी ने एक दरबार कर स्वामिभक्त सैनिकों को पुरस्कृत करने का विचार मन में धारण कर तदनुसार घोषणा भी करवा दी।

१२ मई को दरबार हुआ। सब मुल्की और जंगी अफ़सर आये। शहर के बड़े-बड़े लोग बुलावा पाकर आये। सेना के भारतीय अफ़सरों को भी बैठने के लिये कुर्सियां दीं। सर हेनरी ने खालिस हिन्दुस्तानी ज़बान और इंगलिस्तानी लहजे में स्पीच दी। अपने भाषण में सर हेनरी ने कहा कि पहले जमाने में आलमगीर ने और फिर हैदरअली ने हजारों की संख्या में हिन्दुओं को मजबूरन मुसलमान बनाया। उनके मन्दिरों को तोड़ा, घरेलू मूर्तियों को नष्ट किया। अपने ही जमाने को लीजिये, इस जलसे में शरीक होने वाले ज्यादातर साहबान यह अच्छी तरह से जानते होंगे कि रंजीत सिंह ने अपनी मुसलमान रियाया को उनके मजहबी हुक़ूक़ नहीं दिये, लाहौर की मस्जिदों की मीनारों से मुअज्ज़िन की अजान कभी नहीं सुनाई पड़ती थी। एक साल पहले तक लखनऊ में कोई हिन्दू शिवाला बनवाने की जुरअत नहीं कर सकता था। कम्पनी बहादुर की सरकार आप लोगों के साथ माई-बाप जैसा बरतावा रखती है। हिन्दू और मुसलमानों के साथ एक सा इंसाफ़ होता है।

इस तरह की स्पीच देकर सर हेनरी ने ४८ वीं और १३ वीं रेजीमेन्टों के सूबेदार सेवक तिवारी, हवलदार हीरालाल दुबे, सिपाही रामनाथ दुबे और सिपाही हुसैनबख्श को स्वामिभक्ति के पुरस्कार-स्वरूप खिलअतें और थैलियां भेंट कीं। दरबार बरखास्त होने पर अंग्रेज़ और देशी अफ़सर छोटी-छोटी मण्डलियों में बातें करने लगे। बहुत से देशी अफ़सरों ने सर हेनरी की स्पीच और हुजूर कम्पनी बहादुर की इंसाफ़ पसन्दी की दाद देते हुए अपनी राजभक्ति का प्रमाण दिया।

मगर आमतौर पर भारतीय सेना का रुख न बदला।

यह आश्चर्य की बात है कि जिस ४८ वीं पल्टन ने अप्रैल में सबसे पहले विद्रोह का स्वर मुखर किया, उसी ने मई में अपने मूसाबाग के भाइयों का पत्र पकड़वा दिया। इस स्वामि-भक्ति के लिये उसे १२ मई को पुरस्कार मिला; १३ वीं पल्टन वाले ने भी इनाम पाया, फिर उन्होंने ही ३० मई को मड़ियाँव छावनी में विद्रोह किया और फाँसी पाई। तो क्या इन रेजीमेंन्टों ने किसी नीतिवश ७ वीं इर्रेगुलर का पत्र और क्रान्तिकारियों के दूतों को पकड़वा दिया था? यह हो सकता है; अगर सेना ने सार्वभौमिक विद्रोह करने के लिये कोई तिथि निश्चित कर रक्खी थी तो उसके पहले अंग्रेजों को आखिरी दम तक धोखे में रखने के लिये नीति-वश भी राजभक्ति का प्रदर्शन किया जा सकता है। मगर यहाँ फिर एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि राज-भक्ति के प्रदर्शन के लिये क्या अपने एक हजार तीन भाइयों का गला फंसा देना उचित था? सूबेदार तिवारी, हवलदार दुबे और हिन्दू-मुसलमान सिपाही यह तो अच्छी तरह जानते होंगे कि अंग्रेज़ हाकिम ७ वीं इर्रेगुलर के सिपाहियों और षड़यंत्रकारी नागरिकों को कड़ी से कड़ी सजा देगें। हो सकता है, उन्होंने इतने भयंकर दण्ड की कल्पना न की हो या उनकी धारणा यह रही हो कि कुछ लोगों को दण्ड मिलने से अधिक लोगों में स्वतः बड़ी उत्तेजना फैल जायगी।

जो हो, ग़दर सम्बन्धी साहित्य पढ़ते हुए जगह-जगह इस बात के प्रमाण मुझे मिले हैं कि विद्रोह के आरम्भ में जगह-जगह भारतीय सिपाहियों ने प्रायः सविनय अवज्ञा ही की थी। उनका व्यवहार आरम्भ में अधिकतर अहिंसात्मक ही रहा था। गोले-गोलियों के सामने अंगद की तरह अडिग खड़े रहने वाले वे एक सौ बीस वीर सत्याग्रही उस सत्याग्रही भारत के पुरखे थे जो वर्षों बाद गांधी के नेतृत्व में सामने आने वाला था। हिंसा का दोष अंग्रेज़ों को ही दिया जायगा। अहिंसा के उत्तर में सर हेनरी लारेन्स ने जो राक्षसी ताण्डव दिखलाया, उसकी प्रतिक्रिया में त्रस्त और उत्तप्त भारतीय हृदयों में प्रतिहिंसा की आग यदि भड़की तो उसके लिये उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता। हाँ, इसी दृष्टि से मैं डा० वेल्स का बँगला जला देने को भी बुरा मानता हूँ—पर हमें ईंट का जवाब पत्थर ही नहीं पहाड़ से दिया गया।

ख़ैर, इसी तरह लखनऊ नगर, उसके आस-पास कस्बों और छावनियों में दिन पर दिन गर्मी और तेजी से बढ़ती ही गई। हर हिन्दुस्तानी के चेहरे पर

षड्यन्त्रकारिता का गुपचुपवाला भाव और कसाव देखने को मिलता था। लोगों की आँखों में क्रान्ति की चिनगारियां चमकती थीं। हालांकि आमतौर पर यह कोई न जानता था कि क्रान्ति कब होगी, कैसे होगी—क्या होगा ? छावनी में बँगलों पर बाणों के साथ जलते पलीते फेंके जाने लगे। शहर में जगह-जगह इश्तिहार चिपकाये जाने लगे कि दीन धर्म के शत्रुओं—फिरंगियों—को मारना हर हिन्दू मुसलमान का मज़हबी फ़र्ज़ है।

अंग्रेजों में सर हेनरी लारेंस बड़ा चतुर और दूरदर्शी कमाण्डर था। मेरठ, दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई नगर और ज़िले स्वतंत्र हो चुके थे; लखनऊ के रंग-ढंग अच्छे नजर नहीं आते थे। भारतीय फौज़ों का रुख भी समझ में नहीं आता था। यह सब देखकर सर हेनरी ने अपनी सैनिक शक्ति को नये सिरे से संगठित किया। मच्छी भवन का किला पाँच दिन में दन-रांत मरम्मत लगाकर युद्ध के अनुकूल बनवाया, रेजीडेन्सी पर मोर्चे बनाये, दोनों जगहों के आस-पास इमारतें तुड़वा दीं। अच्छे-अच्छे पेड़ कटवाकर मैदान साफ़ कर लिये, तोपें चढ़ा दीं और बाजार से बेतहाशा अन्न धान आदि दैनिक आवश्यकता की सामग्री खरीदना शुरू कर दिया। उन दिनों सर हेनरी को बस एक ही धुन चढ़ी हुई थी, जो भी हिन्दुस्तानी रईस अपनी खैरख्वाही जताने के लिये चीफ़ कमिश्नर और कमाण्डर सर हेनरी लारेन्स के पास आता और चलते वक्त अपने लायक़ खिदमत पूछता, उसी से वे घी, गेहूँ, अनाज आदि की फ़रमाइश कर बैठते थे।

२६ मई को मलीहाबाद वालों ने एक उम्दा मज़ाक किया। सर हेनरी के पास खबर पहुँची कि मलीहाबाद सरकश हो रहा है। सर हेनरी ने कप्तान वेस्टन के नेतृत्व में पल्टन भेजी। पल्टन के नजदीक पहुँचते ही मलीहाबाद में चारों ओर अपूर्व शान्ति छा गई। फ़ौजवालों को कहीं इस बात का अनुभव ही न हो पाया कि यहां कहीं अशान्ति के लक्षण प्रगट हो रहे हैं—किस पर गोली चलाते ? किसकी पकड़ा-धकड़ी करते ? झख मार कर लौट आये।

मई के अन्तिम दिनों में ही सर हेनरी लारेन्स ने शहर के अनेक अमीर और उमरा और महाजनों को बुलवाया। अर्थ कमिश्नर मार्टिन गबिन्स के पास भी कई पैसेवाले लोग पहुँचे। नवाब अहमद अली खाँ, मुनौवरुद्दौला, वाजिदअली शाह के चचिया ससुर नवाब मिर्ज़ा हुसैन खाँ, इकरामुद्दौला, भूतपूर्व मंत्री मुहम्मद इब्राहीम शरफ़ुद्दौला, बहू-बेगम के पोते मिर्जा हैदर, ग़ुलाम रज़ा, नवाब मुहसिनुद्दौला, भूतपूर्व दीवान बालकृष्ण, नवाब मुमताज़ुद्दौला आदि जितने औले-दौले थे, वे सब

अंग्रेज सरकार माई-बाप के पास पहुँचे। नगर के कई एक महाजन भी अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करवाने की दरख्वास्त लेकर गये। अंग्रेज़ों ने इन लोगों की सुरक्षा के लिये सिपाही रखने की सलाह दी।

२४ मई, ईद का दिन था, अंग्रेज उस दिन यहां गड़बड़ी होने की आशंका कर रहे थे, परन्तु कुछ न हुआ। फिर भी हवा में सनसनी रोज़-बरोज़ बढ़ रही थी। मड़ियांव छावनी के गोरे, विशेष रूप से सर हेनरी लारेन्स से सर्तक थे।

भारतीय सिपाही भी पूरी तैयारी पर थे। उनका संकेत बँध चुका था। ३० मई को रात के ९ बजे तोप के दगते ही रात की हाज़िरी के लिये परेड में उपस्थित सिपाहियों ने गोलियां दागनी शुरू कर दीं। गबिन्स लिखता है: "रात की तोप दगते ही ७१वीं देशी पल्टन की लाइट कम्पनी के सिपाहियों ने गोलियां दाग़नी शुरू कर दीं, और लगभग चालीस आदमियों की एक टोली रेजीमेन्ट के भोजनालय की ओर बढ़ी ज्योंही उन्होंने छावनी के फाटक में प्रवेश किया, ७वीं लाइट घुड़सवारों की एक टुकड़ी ने दूसरे फाटक को भी घेर लिया। इस प्रकार यह दिखला दिया कि अफ़सरों का नाश करने की योजना सोच समझकर बनाई गई थी। परन्तु अफ़सर वर्ग सावधान था, पहली गोली की आवाज पर ही वह भोजनालय छोड़कर जा चुका था। नम्बर ७१ का भोजनालय नष्ट कर डाला गया।

सर हेनरी लारेन्स बहुत होशियार और दूरदर्शी व्यक्ति थे। बहुत पहले से ही उन्होंने तोपखाना देशी लोगों से ले लिया था। जब विद्रोह मूर्तिमान हुआ तो कई अंग्रेज़ अफ़सर अपने मातहत सिपाहियों को समझाने-बुझाने के लिये बाहर निकल आये परन्तु उस समय किसी का वश नहीं चल पाता था। सर हेनरी ने तोपों की मार शुरू की। साधारण हथियारों वाले सैनिक भला इस मार के आगे कैसे ठहरते? वे भागे; परन्तु उनका भागना कोरा घबराहट का भागना नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि अधिकतर लोग मुदकीपुर की ओर भागे थे। मुदकीपुर में भी एक छावनी थी। वहां भी रात भर जोश गरमाता रहा। दूसरे दिन सुबह सात नम्बर का रिसाला मुदकीपुर भेजा गया। रिसाले को दूर आते देख एक विद्रोही सूबेदार ने अपनी तलवार ऊँची उठाई। यह देख आती हुई फौज के कुछ आदमी भी निकल कर देश-भक्तों की पंक्ति में खड़े हो गये। कुल मिलाकर एक हज़ार स्वदेशी दल के लोग वहां मौजूद थे। वे भले ही बहुत बहादुरी से लड़े, परन्तु सर हेनरी की भारी तोपों की मार से उनका मुकाबला अधिक देर तक होना असम्भव ही था। स्वदेशी दल को मोर्चा छोड़ कर भागना पड़ा। हेनरी लारेन्स ने उनका पीछा

किया । उन्होंने घोषणा की कि जो व्यक्ति विद्रोहियों को गिरफ्तार या क़त्ल करेगा उसे आदमी पीछे सौ रुपया इनाम दिया जायगा । कुछ देश-भक्त वीर पकड़े गये, अनेक मारे भी गये ।

सेना के इस आन्दोलन का प्रभाव नगर के लोगों पर भी स्वाभाविक रूप से पड़ा । सैयद कमालुद्दीन हैदर, जो पहले अवध की शाही सरकार के नौकर और बाद में अंग्रेज सरकार के पेन्शनर रहे, अपने इतिहास ग्रंथ 'सवानहात-ए-सलातीन -ए-अवध' में लिखते हैं: "इस अरसे में मफ़दीन ने शहर में तरफ हंगामा बरपा किया, और शरीक सिपाह बागी हुए । मुहल्ला मन्सूर नगर, सआदतगंज, मशकगंज से निशान मुहम्मदी उठाकर ऐशबाग़ में जमा होना शुरू किया । सैकड़ों ने छावनी की राह ली कि हम फ़ौज में जाकर शरीक़ होंगे । जब खबर सबके भागने की सुनी, हर तरफ अपनी राह ली····आग़ा मिर्ज़ा एक शख्स मशहूर कम्बलपोश···· उस दिन सुबह से हर तरफ़ लोगों को ग़ैरत दिला कर भड़का रहा था । हरचन्द पेश्तर एक खुदा तरस ने उसे समझाया था कि तुम कभी ऐसी हरकत न करना, मगर वह कब सुनता था ।····वजह इसकी यह थी कि एक कुत्ता आग़ा मिर्ज़ा का साहब ने मार डाला था । साहब ने भी जवाब सख्त दिया, गोली खाली गई । आग़ा मिर्ज़ा और उसके साथियों ने घर में घुसकर उसे मार डाला, घर असबाव लूट लिया; यह पहल हुई । छोटे खां एक रंगपोश साकिन दोगावां व एवज़अली वग़ैरह बदमाश और ऐसे ही बा शोरिश शामिल किये गये ।"

ऐशबाग़ से एक बहुत बड़ी भीड़ छावनी की ओर चली । बड़ी बेतरतीब भीड़ थी । लड़ने का साज़ो सामान भी पास न था । भाले, तलवारें, कटारें, लाठियां टोपीदार बंदूकें—जो जिसके पास था वही लेकर चल दिया । इस भीड़ में व्यवस्थित सैनिक केवल दो सौ थे । सैयद कमालुद्दीन हैदर साहब नें इन्हें बदमाशों की भीड़ लिखा है । प्रमाणों के अभाव में यह कैसे कहूँ कि ये बदमाश नहीं थे; परन्तु सन् १९४२ ई० की जन-क्रान्ति जगाने वालों को भी तत्कालीन सरकारी विज्ञापनों में गुण्डों और लुटेरों के लक़ब से संबोधित किया गया था । कमालुद्दीन के इतिहास-ग्रन्थ का कमाल यह है कि वे अवध के बादशाहों के नाम पर दरअसल 'साहब ने आलीशान' अर्थात् अंग्रेजों की प्रशस्तियों का पोथा है । सत्तावनी क्रान्ति का स्वदेशी रूप कमालुद्दीन को सख्त नापसन्द था । 'बेगमाते अवध के खूतूत' से भी यह जाहिर होता है कि बहुत-सी बेगमों को इस हौलनाक हंगामे से चिढ़ थी । लखनऊ के पुराने नवाब वंश के वर्तमान् बुजुर्गों से मिला हूँ, अधिकतर

बुजुर्ग 'सत्तावनी बलवे' से चिढ़े नज़र आयें। इसलिये मैं सैयद कमालुद्दीन साहब पर यह दोष तो नहीं लगाता कि अंग्रेज़ों की पेन्शन खाने के कारण ही उन्होंने स्वातंत्र्य संग्राम में सम्मिलित होने वाली भीड़ को बदमाशों की भीड़ कहा; पर यह अवश्य मानता हूँ कि किसी भी क्रांति में आगे बढ़कर हिस्सा लेने वालों में सबसे आगे वह सर्वहारा वर्ग ही होता है, जिसे हम सफ़ेदपोश असभ्य, गुण्डा, आवारा, बदमाश आदि नामों से पुकारते हैं। इसे क्रांति की मजबूरी समझिये या विशेषता, कि वह उच्च माने जाने वाले उदारचेता मनुष्यों के मस्तिष्क से उदय होती है और असभ्य माने जाने वाले निम्न वर्ग के सहयोग से ही कार्यान्वित होती है। उसकी सफलता-असफलता की बात न्यारी है।

ख़ैर, ये मुजाहिदीन नारे लगाते इमामबाड़े की दीवार के नीचे से गुज़रते हुए गऊघाट पहुँचे। वहां से गोमती पार कर मड़ियांव गये। मड़ियाव में धरा ही क्या था ? लौटे तो हुसैनाबाद में अटके। पहले तो सब्ज़ी वालों को लूटा, कच्चे शाकों से भूख मिटाई; फिर पहरेदार बरक़ंदाज़ों से उलझे, उनके हथियार छीने; फिर हुसैनाबाद के दौलतखाना आसफ़ी के देशी तिलंगों को ललकारा और फिर जोशे जेहाद में आखिर भिड़ ही गये। नतीजा जो चाहिये था वही हुआ, यानी भीड़ बुरी तरह मारी गई। बहुत से लोग इमामबाड़े में घुस गये। वहां गोरों ने घुस कर क़त्ले आम मचाया।

दो दिनों तक शहर में ये मुजाहिदीन अंग्रेजी राज के विरुद्ध विद्रोह करते रहे।

२ जून को कारनेगी साहब फौज लेकर मंसूरनगर गया, दूसरे मुहल्लों में भी पकड़ा-धकड़ी ज़ोर से शुरूहुई। मैं अपनी स्मृति से एक पुरानी सुनी हुई बात यहां नोट कर रहा हूँ—मैंने सुना था कि गोरे हर किसी को पकड़ कर फाँसियां देते थे। अब यह तो नहीं कह सकता कि यह घटना लखनऊ की पराजय होने के बाद क़त्ले आम के समय की है अथवा पहले की; परन्तु जहां तक मेरा अनुमान है, सार्वजनिक फाँसियों के इसी दौर में अंग्रेज़ों के द्वारा यह अन्याय हुआ होगा। जो हो, फाँसियों का वही राक्षसी कृत्य फिर से दुहराया गया। लक्ष्मण टीले, अकबरी दरवाजे और भी दो-चार जगहों पर फाँसी लगाने का कार्यक्रम उसी घृणित तरीक़े से चलने लगा।

११ और १२ जून को क्रमशः मिलिटरी पुलिस के सवारों और पैदलों ने विद्रोह किया। गोरों के बंगले लूटे-फूंके और चल दिये। इनका पीछा किया गया। मुँह मेल लड़ाई हुई। उसके बाद ये सिपाही नाना राव की सेवा में चले गये।

अंग्रेज़ों द्वारा इतनी बर्बरता प्रदर्शन होने पर भी अंग्रेज़ों के विरुद्ध भारतीय सेनाओं को भड़काने का काम जारी था। काकोरी के मुंशी रसूल बख्श और उनके बेटे हाफ़िज़ जी स्वदेशी दल में छिपे तौर पर मिल जाने वाले सैनिकों की मार्फ़त अंग्रेज़ पक्ष की भारतीय सेनाओं में विद्रोह की आग भड़का रहे थे। एक दिन हुसैनाबाद के तालाब के पास एक शहतूत के पेड़ के नीचे, मुंशी जी के भेजे हुए दो व्यक्ति नादरी पल्टन के सूबेदार करम खां को समझा-बुझा रहे थे। सूबेदार ने देखा कि कोई व्यक्ति सुन रहा है। उसने डर कर साहब से रिपोर्ट कर दी। दूसरे दिन जब वे दोनों व्यक्ति सूबेदार के पास आये तो सूबेदार उनके नेता से बात करने के बहाने उनका घर देखने चला। जासूस भी पीछे-पीछे था। दोनों व्यक्ति सूबेदार को राजा टिकैतराय के बाज़ार में राजा हुलासराय के यहां ले गये। मुंशी जी, उनके बेटे और दो एक लोग वहां बैठे थे। एक वृद्ध सज्जन मीर खलील अहमद भी यों ही आकर बैठ गये थे। मकान के पड़ोस में ही काशी के किन्हीं संकठा प्रसाद खत्री की बारात भी टिकी हुई थी। जासूस द्वारा स्थान देख लिये जाने पर मेजर कारनेगी और महमूद खां कोतवाल ने ससैन्य आकर पूरा इलाक़ा घेर लिया। बराती भी पकड़े गये। बाद में लक्ष्मण टीले के सामने मुंशी रसूल बख्श, उनके पुत्र, मीर अब्बास थानेदार और इनके साथ बेचारा बेगुनाह वृद्ध मीर खलील अहमद भी फाँसी पर लटका दिया गया। काशी के बराती बाद में छोड़ दिये गये। मुंशी जी की फाँसी का बदला मलीहाबाद वालों ने लिया।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि भारतीय फौजी अफ़सर लखनऊ के शाही वंश से अंग्रेज़ सरकार विरोधी सैनिकों के संरक्षण की बात चला रहे थे। पुलिस को इसकी सूचना भी मिल चुकी थी। अंग्रेज़ सरकार ने शाही मंसूरिया वंश के वयोवृद्ध, नवाब सआदत अली खां के पुत्र नवाब मुहम्मद हसन खां रुक्नुद्दौला तथा वाजिदअली शाह के बड़े भाई मिर्ज़ा मुस्तफ़ाअली खां को बंदी बना लिया। दिल्ली के शाही घराने के मिर्ज़ा हैदर शिकोह और मिर्ज़ा हुमायूँ शिकोह को, जो काफ़ी अरसे से लखनऊ में ही रहते थे, दूसरे दिन क़ैद कर लिया गया। इन सबको मच्छी भवन में रक्खा गया। तुलसीपुर का जवान राजा कुछ अरसे से बेलीगारद में नज़रबंद था, उसे भी वहीं पहुँचा दिया गया। मच्छी भवन रेज़िडेंसी की अपेक्षा अधिक सुरक्षित था। इसी लिये अंग्रेज़ों ने अपना खज़ाना बारूद भण्डार, महत्वपूर्ण क़ैदी आदि वहीं रक्खे। जिस भूमि पर आज मेडिकल कॉलेज, अस्पताल और होस्टल इत्यादि बने हैं; वहां सौ वर्ष पहले सदियों पुरानी गढ़ी लखना उर्फ़ मच्छी भवन की इमारत विद्यमान थी।

इस प्रकार शहर में अंग्रेज़ों ने फिर से अपना आतंक जमा दिया, परन्तु इस बार सख्तियों के बावजूद आग बुझ न सकी।

३० मई से जो लखनऊ में सैनिक विद्रोह आरम्भ हुआ तो अवध में जगह-जगह आग भड़क उठी। सीतापुर, मुहम्मदी, औरंगाबाद, सेकरौरा, गोंडा, बहराइच, मल्लापुर, फ़ैजाबाद, सुल्तानपुर, सलोन, बेगमगंज, दरियाबाद—सभी जगह अंग्रेज़ स्त्रियों, बच्चों और पुरुषों को बड़े-बड़े संकटों का सामना करना पड़ा। अवध का कोना-कोना अंग्रेज़ों की प्रभु-सत्ता से मुक्त हो गया था, केवल उसकी राजधानी-लखनऊ पर उनका क़ब्जा या परन्तु यह कब्जा एक तरह से बेमानी था। अंग्रेज़ अपने बचाव की चिंता में ही इतने डूबे हुए थे कि उन्हें शहर के शासन प्रवन्ध की ओर कदाचित आंख उठाकर देखने का अवकाश भी न था। विद्रोही सेना के बेकार तिलंगे ऊधम मचा रहे थे। उनकी लूट-पाट से नागरिक दुखी थे।

२५ जून को लखनऊ के अंग्रेज़ों ने भी लम्बा हाथ मारा। शाही जमाने में अलीरज़ा खां शहर लखनऊ का कोतवाल था। वाजिद अलीशाह के विश्वास-पात्र व्यक्तियों में उसकी गिनती होती थी। अंग्रेज़ी अमल होते ही उनका खैरख्वाह बनने में उसे उतनी देर भी न लगी जितने में गिरगिट अपना रंग बदलता है। अंग्रेज़ी राज में अलीरज़ा खां डिप्टी कलक्टर बना दिया गया था। उसने फ़ाइनेंस कमिश्नर मार्टिन गबिन्स को कैसरबाग के गुप्त शाही खज़ाने का पता दे दिया। फ़ौरन ही मेजर बैंक्स ने फौज के साथ जाकर वह जगह घेर ली। तेईस बहुमूल्य शाही ताज, वेनिस और स्पेन के बने क़ीमती आभूषण, नायाब हीरे-जवाहरात के बाईस संदूक, रत्नजटित सिंहासन आदि करोड़ों का धन अंग्रेज़ लूट कर ले गये।

इस बीच अवध ही नहीं सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में क्रान्ति की ज्वाला भड़क चुकी थी—कहीं अत्यधिक, कहीं कम, कहीं और कम। आज़मगढ़, गोरखपुर, शाहजहांपुर और कानपुर जो अवध के आस-पास थे अपने पूरे जोश पर थे। अवध की सेनायें यत्रतत्र से आकर नवाबगंज बाराबंकी में एकत्र हुईं। २८ जून को नवाबगंज स्वातंत्र्य सेनाओं का पवित्र संगम क्षेत्र बन गया था। २८ जून को ही उन्नाव जिले के डौंडिया खेड़ा में अंग्रेज़ों की नाव रेत में फँस गई। राव रामबख्श के सिपाहियों ने उनको घेरा और कइयों को मार डाला।

लखनऊ के अंग्रेज़ों को चारों ओर से बुरी-बुरी ख़बरें ही मिल रहीं थीं। इनकी डाक व्यवस्था तो १० जून के बाद ही समाप्त हो गई थी परन्तु इनके जासूस अच्छा काम कर रहे थे।

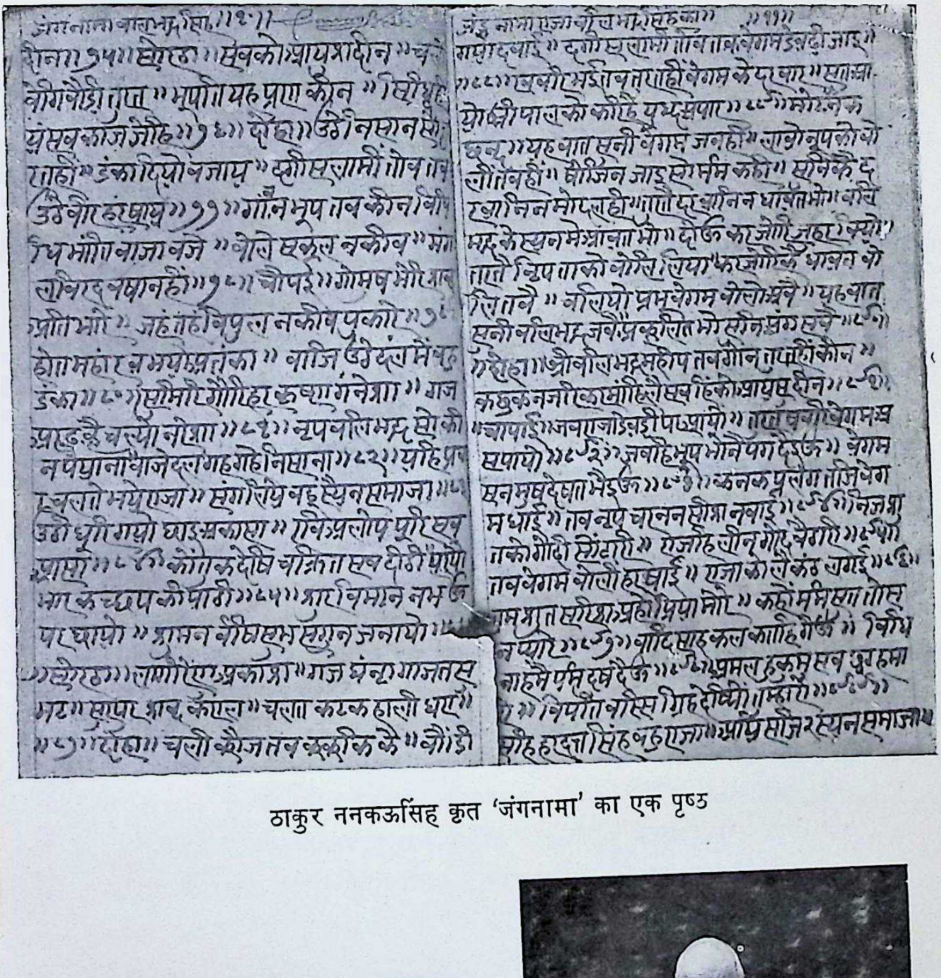

ठाकुर ननकऊसिंह कृत 'जंगनामा' का एक पृष्ठ

बेगम हजरतमहल की मुहर

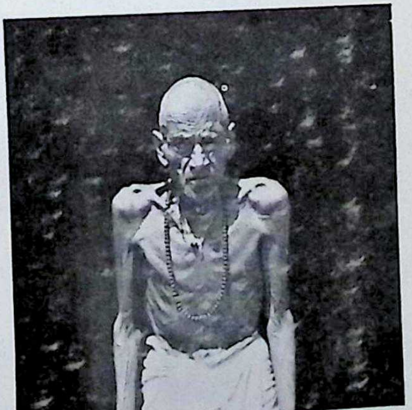

नवाबगंज, बाराबंकी का युद्ध देखने वाले
११५ वर्षीय श्री साहबदीन

२९ जून को स्वदेशी सेनायें लखनऊ से लगभग छः सात मील की दूरी पर चिनहट में आकर जम गईं। मलीहाबाद के अफ्रीदी भी आकर मिल गये। यह खबर मिलते ही। सर हेनरी ने तुरंत अपनी सेनाओं को कूच का आदेश दिया स्वदेशी दल की सेनाओं के नगर में प्रवेश करने से पूर्व सर हेनरी उन्हें युद्ध देकर नगर के भाग्य का निर्णय कर लेना चाहते थे।

स्वदेशी दल की सेनाओं के कमांडर बरकत अहमद थे। चिनहट की ऐतिहासिक जीत का सेहरा इन्हीं के सिर बँधा। सूबेदार शहाबुद्दीन और सूबेदार घमंडी सिंह की सेनायें भी बड़ी बहादुरी से लड़ी। इस युद्ध में अंग्रेज और अंग्रेज-परस्त सेनायें ऐसी घिरीं कि उन्हें छटी का दूध याद आ गया। शत्रु रण क्षेत्र छोड़कर भागे, उनकी चार तोपें और बहुत-सा गोला बारूद स्वदेशी दल के हाथ लगा।

चिनहट की जीत का समाचार पाते ही दौलत खाना की इर्रेगुलर पल्टनों तथा इमाम बाड़े की मिलटरी पुलिस ने विद्रोह कर अपने गोरे अफ़सरों का मालमता लूट लिया।

विजयी स्वदेशी सेनाओं ने अंग्रेजों को खदेड़ना शुरू किया। लोहे के पुल तक अंग्रेज़ सैनिक बेतहाशा भागते ही चले गये। वहाँ रेज़ीडेन्सी की तोपों ने विकट मार मारी। पत्थर वाले पुल के पास स्वदेशी सैनिकों को मच्छी भवन की तोपों का सामना करना पड़ा। स्वदेशी सेनाओं ने भी अपनी तोपों के मोर्चे साधे। देखते-देखते ही स्वदेशी सेनायें सारे नगर पर छा गईं। कोठी फ़रहत बख्श, छतर-मंजिल, बादशाह बाग, शाद मंजिल, खुर्शीद मंजिल, मुबारक मंज़िल, कोठी रसद-खाना, हजरत गंज, दिल कुशा, मुहम्मद बाग़, आसफ़ी इमामबाड़ा—जिधर देखिये उधर ही विजयोल्लास मग्न भारतीय सैनिक दिखलाई पड़ रहे थे। जब कोठी फ़रहत बख्श और छतर मंजिल में पड़ाव डाला तो बेगमों में खलबली पड़ी, बड़ी हाय-तोबा मची। सिपाहियों ने कहा कि आप लोग न घबरायें, हम सुबह होते ही यहाँ से चले जायेंगे।

रेज़िडेंसी घिर चुकी थी। उसके आस-पास के घरों में घुस, दीवारों में बंदूकों के लिये छेद बना कर रात होने के पहले ही सिपाही रेजिडेंसी में गोलियां बरसाने लगे। रेजिडेंसी में तो चिनहट की हार के समाचार आते ही बेतहाशा भगदड़ और कोहराम मच गया था। अंग्रेज़ जन-समूह प्राणों के भय से बावला हो गया था, जो ऐसी दशा में किसी के लिये भी स्वाभाविक है।

दूसरी ओर जीत की खुशी में जनता का मनमाना हो जाना भी स्वाभाविक है। दूसरे दिन सुबह अर्थात् १ जुलाई सन् १८५७ के दिन सवेरे ही लोगों को खबर लगी कि कोतवाली इमामबाड़ा और मुसाफ़िर खाना वग़ैरह सरकारी जगहों के रखवाले सिपाही इत्यादि भाग गये हैं, सरकारी माल-असबाब, हरबे-हथियार सब कुछ खुला पड़ा है। खबर मिलने की देर थी, फैलते देर न लगी और थोड़ी देर में जनता शिवजी की सेना सी इन जगहों पर चढ़ दौड़ी। सरकारी सामान की लूट-पाट, फेंक-फाँक, तोड़-फोड़ शुरू की। यह देख : "इन शोहदों में से रूमी दरवाज़े के एक शोहदे ने अपने खास की गाली देकर ललकारा, तुम लूट न मचाओ, यह तोपें खींच कर मच्छी भवन पर लगाओ, इसमें हम तुम सबका बड़ा नाम होगा। सभों ने क़बूल किया।" ('सवानहात-ए-सलातीन अवध' से)

तोप लगाई गई। कुछ सिपाही चिनहट की लूट में कुछ गोले पा गये थे। वे भी इस भीड़ के स्वतंत्रता-संग्राम में शामिल हो गये। दो तोपें नक्क़ारख़ाने के कोठे पर लगाई गईं। दूकानदारों के तखत उठा कर उनकी झाँकियां बनाई और बाढ़ें दगने लगी। मच्छी भवन से तोपें पड़ती थीं, खाली जाती थीं। यह देख जनता के हौसले बढ़ गये। लोगों ने रुई की बहुत सी गाँठें इकट्ठा कीं और उनमें आग लगा कर आधी रात में मच्छी भवन के फाटक को जलाने का आयोजन किया।

परन्तु आधी रात को मच्छी भवन के संबंध में अंग्रेज कमांडर सर हेनरी लारेंस भी एक योजना बना चुके थे। सर हेनरी ने देखा कि दो-दो जगहों पर घिरकर अंग्रेज तबाही के सिवा और कुछ भी हासिल न करेंगे, इसलिये कर्नल पामर को वह मच्छी भवन स्थित सेना, खज़ाना, स्त्री-बच्चे, क़ैदी आदि लेकर आधी रात में रेजिडेंसी चले आने का आदेश भेजना चाहते थे। परन्तु कोई साधन न था एक आदमी को एक हज़ार रुपये इनाम देकर भेजा भी, पर वह शायद मारा गया। सेमाफ़ोर द्वारा बार-बार संकेतादेश भेजे गये। बार-बार संकेतों द्वारा यह आदेश दुहराया जाता था कि आधी रात के समय अनावश्यक सामान छोड़कर तथा बारूद-भण्डार में आग लगा कर चले आओ। सर हेनरी को विश्वास नहीं था कि उनका आदेश कर्नल पामर को मिल गया होगा, परन्तु अंग्रेज़ों के भाग्य से पामर ने सूचना प्राप्त कर ली और आधी रात को अक्षरशः सर हेनरी का आदेश पालन कर बाहर निकल आये।

हमारी ओर के लोगों ने अंग्रेज़ों की इस चाल को स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। "अचानक आसमान को छूता हुआ लपटों का फ़ौवारा फूट पड़ा, धरती

पत्ते की तरह डोलने लगी, काले धुंयें के बादल छा गये।" जब तक कि लोग इस धमाके के बाद होश में आयें-आयें, अंग्रेज़ी फ़ौज निकल गई। सैयद कमालुद्दीन ने लिखा है : "हसनबाग़ की तरफ़ से……बइंतज़ाम हलका फौज में तोपें आगे-पीछे रक्खे निकले।……शाहज़ादे के मकान के दरवाज़े से दाखिल बेलीगारद हो गये। दफ़ातन एक तोप चली तो मुलजिम गोलंदाज़ राह में अपनी जाने लेकर भागे। उसमें दो-चार साहब या गोरे भी शहर की गलियों में फँस गये, मारे गये, उनके नाम नामालूम हैं। फ़ौज बागी जाबजा मोर्चों पर थी, मुँह देखती रह गईं।"

इसके बाद मुख्य घटना के रूप में हमारे इतिहास का कलंक प्रकट होता है। चिनहट की जीत से अंग्रेजों के घिर जाने से हमारे सिपाहियों का हौसला बहुत बढ़ गया। मच्छी भवन के नाश होने पर भी इन्होंने यही समझा कि अंग्रेज हमारे डर से मोर्चा छोड़ कर भाग गये। यह हौसला यदि उचित नेतृत्व पा जाता तो बात कुछ की कुछ हो जाती। रेज़िडेंसी पर मौलवी अहमदुल्ला शाह की कमान में पहली जुलाई को धावा हुआ था। मौलवी साहब बड़ी बहादुरी से बेलीगारद के फाटक तक पहुँच गये लेकिन औरों ने पैर पीछे कर लिये। दूसरी जुलाई को फिर ज़बर्दस्त धावा हुआ। सर हेनरी लारेंस जिस कमरे में बैठे थे उस पर ही गोला गिरा और सर हेनरी को बुरी तरह ज़ख्मी किया। ४ जुलाई को उनका स्वर्गवास हुआ।

सर हेनरी लारेंस उस काल को दृष्टि में रखते हुये हमारे शत्रु भले ही रहे हों लेकिन वे अपने चरित्रबल का अनुपम आदर्श उपस्थित कर गये हैं। बुरी तरह ज़ख्मी होकर, अपना दुखदर्द भूल कर वे भविष्य के लिये अनेक आयोजनायें प्रस्तुत करते रहे। बीच में अपने डॉक्टर से पूछा कि मेरी मृत्यु होने में कितनी देर है? डॉक्टर ने अपना अनुमान बतलाया। उस समय को ध्यान में रख सर हेनरी तेजी से अपना काम करवाने लगे। अपने अंतिम क्षण तक वे स्वदेश बंधुओं की सेवा करते रहे। यह गुण त्रिकाल में श्रद्धेय है।

इधर हमारे तिलंगे सिपाही नेतृत्व के अभाव में उच्छृंखल और उद्दण्ड होने लगे। वे अब तक किसी के नौकर नहीं हुये थे, उनके सामने भविष्य का कोई नक्शा नहीं था, इसलिये शहर लूटने पर तुल गये। जिस तिस रईस के यहां हुल्लड़ मचाते पहुँच जाते, कहते, तुम्हारे यहां दुश्मन छिपे हैं। तिलंगों ने मुहसिनुद्दौला का सामान लूटा, शरफ़ुद्दौला अमीनुद्दौला, हकीम मीर अली—कइयों के

घर लुटे। मुहल्ला बाग़ टोला, चौक की सोने वाली कोठी पर भी बाग़ियों का हमला हुआ था। मेरे पितामह के मित्र बाबू जयनारायण जी टण्डन—उक्त सोने वाली कोठी के एक स्वामी—ने अपनी कोठी का फाटक दिखलाया था जिसका एक किवाड़ काफ़ी हद तक टूटा और फिर से तख्ते ठोक कर दुरुस्त किया हुआ है। वह तिलंगों की ही स्मृति है। जब ऊपर से अशर्फ़ियों के तोड़े फेंके गये तब वे आगे बढ़े। नेतृत्व हीन जन-जोश यों ही भस्मासुर होकर आत्मसंहार करता है।

जब जनता बहुत त्रस्त्र हुई तो मौलवी अहमदउल्ला शाह ने जगह-जगह दूसरी पलटनों के पहरे बिठला दिये। और सेनाओं के अफसर पुराने शाही वंश के किसी व्यक्ति को गद्दी पर बिठलाने का आयोजन करने लगे।

बेगम हज़रत महल

यहां लखनऊ और अवध के सत्तावनी क्रान्ति सम्बन्धी इतिहास में एक नया चरित्र आकर जुड़ा, और फिर क्रान्ति के अन्त तक उस पर ऐसा छाया रहा कि अवध में क्रांति का इतिहास ही उसका इतिहास हो गया। बेगम हज़रत महल का व्यक्तित्व भारत के नारी समाज, या कहें कि उस समय के प्रायः आधे जगत् के सामन्ती मान्यताओं से बँधे नारी-समाज का प्रतिनिधित्व करता है। महारानी लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व को भी यदि इसके साथ-ही-साथ ध्यान में रखकर सतर्क दृष्टि से देखा जाय तो हमारे नारी-जीवन का संपूर्ण चित्र सामने आ जाता है।

लक्ष्मीबाई का बचपन संयोगवश पिता के निर्धन होते हुए भी अभाव रहित रहा। बाजीराव पेशवा के परिवार में वह मातृहीना कन्या लाड़ से पली, संस्कार बड़े शुद्ध पाये। मातृहीना, चपल, कुशाग्र बुद्धि और तेजस्वनी बालिका को पेशवा के सैनिकों और नाना धोडूं पन्त, बाला जी आदि के शस्त्र-शास्त्र गुरु का अपार स्नेह भी मिला। मणिकर्णिका बाई उर्फ़ मनु उर्फ़ छबीली की शिक्षा-दीक्षा समुचित रूप से हुई। उसके पिता मोरोपन्त ताम्बे बिठूर में श्रीमन्त पेशवा की होमशाला के एक भिक्षुक ब्राह्मण थे, किन्तु सौभाग्य ने मनु को रानी बनाया। रानी होते ही—पत्नी होते ही—मनु के मुक्त, पुरुषोचित जीवन को उन समस्त बंधनों का अनुभव हुआ जिसे हमारा स्त्री-समाज आज तक भोगता है। झांसी के माण्डलिक राजा बाबा गंगाधर राव बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। उन्होंने अपनी बाल पत्नी

को कठोर अनुशासन में रक्खा । लक्ष्मीबाई ने उतने ही बन्धन को बहुत माना लक्ष्मीबाई पति की अकेली पत्नी थी ; सौभाग्यवश उन्हें सौतों के कुचक्रपूर्ण वातावरण में नहीं घुटना पड़ा। पति की मृत्यु के बाद वे पूर्णरूप से स्वतंत्र हो गईं और उस स्वतंत्रता का उपयोग उन्होंने अपने वैधव्य को कठिन अनुशासन से सँवारने में किया । कसरत, घुड़सवारी आदि से अपने शरीर को कमाने के नशे के कारण वे भोग-विलास से सहज ही में बची रह सकीं । लक्ष्मीबाई यदि बाईस वर्ष की आयु में इस प्रकार काल कवलित न होकर पूरी आयु पातीं, तब भी मेरा जहां तक विचार है, वे चरित्र से अन्त तक निष्कलंक ही रहतीं । यह बात और है कि वे शायद कुछ झक्की और कठोर हो जातीं । लक्ष्मी बाई के आश्रय में रहने वाले तथा उनके द्वारा मान्य एक वेदशास्त्र सम्पन्न ब्राह्मण विष्णुभट्ट गोडशे ने अपनी पुस्तक 'माझा प्रवास' में महारानी लक्ष्मीबाई की जो दिनचर्या दी है, उससे ही मेरी इस धारणा को पुष्टि मिली है । लक्ष्मीबाई सतीत्व के तेज से संयुक्त थीं । वे देवी सीता की परम्परा की थीं जिन्होंने समाज द्वारा स्त्री-जाति पर लादे गये अनुशासन को आस्थापूर्वक धर्म समझ कर धारण किया, परन्तु साथ ही साथ समाज के एकांगी न्याय का विरोध भी किया । लक्ष्मीबाई बाबा गंगाधर राव के कठोर अनुशासन से बँधकर भी उनसे दबी नहीं थीं । यह सद् विद्रोह उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता बन जाती है—ठीक उसी प्रकार जैसे सीता का चरित्र राम की राजसूय सभा में स्वाभिमान रक्षा के हित अपनी जीवनाहुति देकर अपना पूर्ण विकास पाता है ।

बेगम हज़रत महल का चरित्र नारी के सहज स्वाभिमान और तेज का दूसरा पहलू पेश करता है । हज़रत महल को बचपन में ही समाज की उस परम्परा से बँधकर अपने जीवन का विकास मिला जिस परम्परा में स्त्री पुरुष की भोगांगना बनने के लिये ही तैयार की जाती है । हज़रत महल के बचपन का कोई इतिहास नहीं मिलता । वाजिदअली शाह ने अपनी प्रेम-पात्रियों का विवरण लिखते हुए इन्हें 'ज़नेख़ानगी' लिखा है । यह मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि उस समय की मशहूर कुटनियों, अम्मन और अमामन के द्वारा यह बालिका वाजिद अली के परीखाने के वास्ते बेची गई थी । इसे बचपन में नाच-गाने की शिक्षा मिली, पुरुष को रिझाने योग्य कलाओं में यह दीक्षित की गई । शाहे अवध अमजद अली शाह के दूसरे कुँवर वाजिद अली ने अपनी नई परी का नाम महकपरी रक्खा । बेगम हज़रत महल के प्रपौत्र श्री सज्जाद अली मिर्ज़ा कौकब क़दर ने मुझे बतलाया था कि उनके घर में बेगम हरज़त महल के बचपन से संबंधित कोई

रवायत प्रचलित नहीं, उन्होंने भी अपनी पड़दादी के सम्बन्ध में दो बातें पढ़ी थीं। एक तो नजमुलग़नी का यह वक्तव्य कि बेगम हज़रत महल का असली नाम 'उमराव जान अदा' था, जो ग़लत है। उर्दू साहित्य में प्रसिद्ध उमराव जान अदा और बेगम हज़रत महल का कोई साम्य नहीं। बेगम छोटी उम्र में ही महकपरी के रूप में वाजिदअली शाह के हरम में दाखिल हुई थीं। शीघ्र ही वे माता भी हो गईं। मिर्ज़ा रमज़ान अली खां अल-मुलक्कब मिर्ज़ा बिरजीसक़दर हज़रत महल के गर्भ से मिर्ज़ा वाजिदअली की चौथी सन्तान थे।

मिर्ज़ा कौकबक़दर ने दूसरी बात यह सुनी थी कि ये फ़ैजाबाद के किसी निर्धन परिवार की कन्या थीं। बहुत सुन्दरी होने के कारण धन के लोभवश इनके माता-पिता ने शाही भोग के वास्ते इन्हें अम्मन और अमामन के द्वारा महलों में दाखिल करा दिया।

जो हो, ये अम्मन और अमामन के हाथों अपने धन के लोभी माता-पिता के द्वारा बेची गई हों या उन हरामज़ादियों के द्वारा कहीं से उड़ा कर महलों में पहुँचाई गई हों, हर हालत में यह एक ऐसी परिस्थति है जिसे स्वाभिमानिनी बालिका ने अपनी अनिच्छा से स्वीकार किया होगा। स्त्री के अन्तर का यह सुप्त विद्रोह ही मातृत्व की शक्ति लेकर अपने बेटे का राज्य बचाने के लिये इस प्रकार विकसित हुआ कि राष्ट्रीयता का भाव सिद्ध कर सदा के लिये अनुकरणीय आदर्श बन गया। सर विलियम रसल बेगम की प्रशंसा करते हुए लिखता है: "बेगम में बड़ी योग्यता और तेजस्विता दिखलाई देती है।......बेगम ने हमारे साथ अनवरत युद्ध की घोषणा कर दी है। इन रानियों और बेगमों के स्फूर्तिवन्त शक्तिशाली चरित्रों को देखकर लगता है कि ज़नानख़ानों और हरमों में रह कर भी वे अपने अन्दर तीव्र क्रियात्मक मानसिक शक्ति पैदा कर लेती हैं।" ईनिस, बाल, मेलिसन, के, होपग्रांट, गबिन्स—जिसने भी अवध के सम्बन्ध में कुछ लिखा है उसने, कम से कम, बेगम की चतुराई, बुद्धिमत्ता और संगठन शक्ति की प्रशंसा किसी न किसी रूप में अवश्य की है।

जब भूतपूर्व बादशाह के किसी पुत्र को राजगद्दी पर बिठलाने की बात आई तो पहले किसी का ध्यान बिरजीसक़दर की ओर न गया। यदि और किसी शाहज़ादे अथवा उसकी उच्च कुल की मां ने वाजिदअली शाह की गद्दी से राजनैतिक सम्बन्ध जोड़ना स्वीकार कर लिया होता तो इतिहास के सम्मुख बेगम हज़रत महल का चरित्र शायद कभी न आया होता।

चिनहट की विजय के बाद स्वदेशी दल के सेना-सूबेदारों ने अपनी एक पंचायत बनाई और यह तय किया कि राज-काज चलाने के लिये किसी शाही वंश के व्यक्ति को राजतिलक करना चाहिये।

अवध का राजवंश थके हुए, निकम्मे, विलास-रत व्यक्तियों से भरा था। उसमें विद्रोह करने की ताक़त नहीं थी। पण्डित देवीदत्त शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'अवध के ग़दर का इतिहास' में एक महत्वपूर्ण बात नोट की है। वे लिखते हैं: "...परन्तु उसके साथ यह भी सच है कि उस समय लखनऊ में वैसे हौसले के आदमी न थे, जो फिर से नवाबी शासन प्रचलित करने का साहस रखते हों। विद्रोह तो वहां इसलिये हुआ कि वह अन्य स्थानों में हुआ था। अवध को विद्रोह करना या लड़ना होता तो, वह उसी समय करता, जब उसके बादशाह वाजिदअली शाह पद-च्युत किये गये थे। उस समय विरोध करने की बात तो अलग रही, उलटा अंग्रेज़ी अमलदारी का स्वागत सा किया गया था। जो ताल्लुक़ेदार राज़ी-राज़ी मालगुज़ारी नहीं देते थे, वे अंग्रेज़ी होने पर ठीक समय पर मालगुज़ारी ही नहीं देने लगे, बल्कि अधिकारियों के आज्ञानुसार उन्होंने वे ज़ायदादें भी उनके असली स्वामियों को चुपचाप लौटा दीं, जिन्हें नवाबी अमलदारी में बलपूर्वक छीन लिया गया था। अवध में अंग्रेज़ीसत्ता गत १५ महीने से ही स्थापित थी। पुलिस के व्यवहार और प्रबंध से प्रजा संतुष्ट थी। ख़ैराबाद और बहराइच की कमिश्नरियों का 'मुल्की बन्दोबस्त' हो गया था, और उनका राजस्व सरकारी अधिकारियों ने ठीक-ठीक निश्चित कर दिया था। शेष दो कमिश्नरियों का जो बन्दोबस्त हुआ था उसमें राजस्व बहुत अधिक नियत हो गया था, अतएव फिर से विचार कर वह कम कर दिया गया और इस बात की पहली अप्रैल को घोषणा भी हो गई थी। यह सब हुआ, परन्तु सिपाहियों के विद्रोह करते ही इन सबका सारा प्रभाव जाता रहा और प्राय: बड़े-बड़े लोग विद्रोहियों की दाब में आ गये।" अस्तु।

लखनऊ में प्राचीन राजवंश को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने के लिये सेनानायकों की पंचायत ने राजा जयलाल सिंह नुसरत जंग को बुलवाया; उनकी बड़ी ख़ातिर कीं। राजा जयलाल उर्फ़ राजा जियालाल ने शिकायत की कि तिलंगों की लूट से शहर परेशान है। उनसे कहा गया कि इसलिये आपकी मदद की ज़रूरत है। राजा और सेनानायकों की सलाह से अलीरज़ा कोतवाल और मीर नादिर हुसैन बुलवाये गये; इन्हें शहर का प्रबंध सौंपा गया। चूंकि ये दोनों अंग्रेज़ों के मातहत भी रह चुके थे इसलिये इनके ऊपर निगरानी रखने के वास्ते मुहम्मद कासिम ख़ां

क़ो मुक़र्रर कर दिया गया। जब तक राज सिंहासन पर किसी राजपुत्र को प्रतिष्ठित करने का आयोजन सफल हो तब तक के लिये सैनिक पंचायत ने शासन प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। इस पंचायत में जनरल बरकत अहमद, उमराव सिंह, जयपाल सिंह, रघुनाथ सिंह, शहाबुद्दीन और घमंडी सिंह प्रमुख व्यक्ति थे। सैनिक पंचायत ने मौलवी अहमदउल्ला शाह से अपने चौकी पहरे हटा लेने को कहा। इस पर शायद कुछ झंझट भी हुई।

पहले मिर्ज़ा दार-उस सितवत को राजगद्दी के लिये चुना गया। उन्होंने अंग्रेज़ों के डर से इंकार कर दिया। फिर वाजिद अली शाह के बेटे युवराज के छोटे भाई मिर्ज़ा नौशेरवां क़दर के लिये बात चलाई गई। वहां भी सफलता न मिली। अंत में नवाब महमूदखां और शेख़ अहमदहुसैन ने राजा को सलाह दी कि मिर्ज़ा बिरजीस क़दर को गद्दी नशीन कर दो। राजा को वाजिदअली शाह का कोई पुत्र प्रतीक रूप में सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने के लिये चाहिये था, उन्होंने कहा कि अगर बेगमों को मंज़ूर हो तो सैनिक पंचायत भी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी।

यहां प्रसंगवश एक पुरानी घटना का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। नाइटन ने अपनी पुस्तक 'प्राइवेट लाइफ़ ऑफ एन ओरियण्टल क्वीन' में वाजिद अली शाह की माता बेगम आलिया की एक भूतपूर्व बाँदी द्वारा सुनाई गई एक घटना का विवरण दिया है। वाजिदअली शाह अपनी माता की एक परिचारिका पर मुग्ध हो गये थे। राजमाता दोनों के मिलन में बाधक थीं। एक दिन बादशाह बाँदी के विरह में इतना तड़पे कि सीधे अपनी माता की सेवा में जाकर अपनी नाराज़गी का इज़हार करने लगे। राजमाता ने नीति से काम लिया, कहा कि इस बाँदी को मैं जानबूझ कर तुम्हारी ख़िदमत में नहीं भेजती, क्योंकि इसकी पीठ पर साँपिन का निशान है, जिसके साथ रहेगी उस मर्द पर अपनी बदक़िस्मती का साया डालेगी। वाजिदअली शाह डर गये। उनका स्वास्थ्य उन दिनों गिरा हुआ था, दिल की बीमारी थी। जाने आलम ने सोचा, इतनी बेगमात में न जाने किस-किस के यह मनहूस निशान हो और उसकी वजह से उन पर यह मुसीबत आई हो। बस, विचार मन में आते ही उन्होंने ख्वाजासरा बशीरुद्दौला को आदेश दिया कि राजमाता और खास महल को छोड़ कर अन्य सब बेगमों की तलाशी ली जाय। बेगमों पर क़हर टूट पड़ा। मनहूस साबित होकर पिया जाने आलम की नज़रों से कोई भी बेगम गिरना नहीं चाहती थी। बशीरुद्दौला उनसे रिश्वतें पाकर

मालामाल हो गया। फिर भी आठ हतभागिनी बेगमों की देहों पर ख्वाजासरा बशीरुद्दौला ने साँपिन का निशान ढूंढ़ ही निकाला। उन बेगमात के नाम इस प्रकार हैं: निशात महल, सुलेमान महल, खुर्शीद महल, हज़रत महल, शैदा बेगम, हज़रत बेगम, बड़ी बेगम और छोटी बेगम।

यों तो पिया जानेआलम अपनी किसी भी प्यारी बेगम को न निकालते, मगर उन्हें अपनी जान सबसे अधिक प्यारी थी। उन आठों बेगमों को तलाक देकर शाही महल से बाहर रहने की आज्ञा दी गई। बाद में इन बेगमात की ओर से भी पैरवी करने वाले निकल आये। बादशाह को समझाया कि हिन्दू पण्डित अपने मंत्र तंत्र बल से हर दोष को दूर कर सकते हैं। पंडित आये, पुरश्चरण द्वारा उन आठों बेगमों को दोष-मुक्त किया गया। तलाक़ की आज्ञा वापस ली गई। बड़ी और छोटी बेगम तो महलों में लौट आईं परन्तु बाक़ी छह पत्नियों ने महल के बाहर ही रहना पसन्द किया। उनके समस्त अधिकार पूर्ववत ही बने रहे।

इन आठ हतभागिनियों में एक हज़रत महल भी थीं। यदि यह घटना सच है तो हज़रत महल जैसी तीव्र बुद्धिवाली कुशल और भावुक स्त्री को इस घटना से कैसा करारा आघात लगा होगा! वे और उनकी अन्य हतभागिनी सपत्नियाँ, दोषमुक्त होने के बाद भी लौट कर महलों में रहने न गईं—इस बात से उनका विद्रोह, शंका और भय का भाव प्रकट होता है।

महलों में रहने वाली राजा-सम्राट् की पत्नियां और भोगांगनायें हरदम बारूद के ढेर पर ही कीमती कालीन बिछाये बैठी रहती थीं। प्रथम पत्नी यानी पटरानी वैधानिक रूप से तो अवश्य सुरक्षित रहेगी; परन्तु उसका मान-सम्मान, पति-संग सुख आदि भी सुरक्षित रहेगा यह कभी नहीं कहा जा सकता था। फिर औरों की तो बात ही न्यारी थी। राजा सम्राट को अपनी नित-नूतन विलास-क्रीड़ाओं के लिये सुन्दरी तरुणियां चाहिये। यह भी निश्चित बात है कि वह एक सीमा के बाद सबकी प्राकृतिक भूख—दैहिक प्यास शांत नहीं कर पाता होगा, केवल अपनी पिपासा को तृप्त करने की चिंता ही उसे रहती होगी। ऐसी दशा में महल की तरुणियां बेचारी क्या करें? छोटी-बड़ी रानियों, बेगमों, रखैलों में ऐसी बहुत सी होती थीं जो महीनों, बरसों अपने पति—राजा-सम्राट—का मुख भी नहीं देख पाती थीं। उन्हें तो दासियां अपने से भी हीन मान कर उनकी बात तक नहीं पूछती थीं। जो बेगम, रानी या रखैल जितने दिनों तक अपने राजा जी के मन चढ़ी रहती, उसके आस-पास उतने दिनों तक छोटी मोटियों का दरबार लगा रहता,

बाहर-भीतर सब जगह उसकी आवभगत होती। उसके विरुद्ध सम्राट की भूतपूर्व चहेतियों और भविष्य की महत्वाकांक्षिणियों के षड्यंत्र चलते रहते। ख्वाजासरा अपने अत्याचार का चक्र चलाता था। ऐसी दशा में जो सीधे चलन वाली भावुक स्त्रियां होती होंगी, क्या वे अपने पति से घृणा नहीं करती होंगी ? उनमें विद्रोह की बड़ी तीव्र भावना उत्पन्न होती होगी। महलों की समस्या देश काल की सीमाओं से परे, बड़ी ही कठिन रही है। इसके लिये किसी एक देश काल अथवा धर्म के राजा को उँगली उठा कर कोसना मेरी नीयत नहीं, फिर भी, चूँकि इधर अवध पर ही पढ़ा है तो दृष्टान्त के लिये मैं अवध के नवाबी हरम की कुछ बातें सामने रखता हूँ। आसफुद्दौला के सम्बन्ध में उसका एक प्रतिष्ठित दरबारी अबू-तालिब लिख गया है कि वह गर्भवती स्त्रियों को अपने हरम में रखता था, उनसे उत्पन्न संतानों को अपनी संतान क़रार देता था। वज़ीरअली को उसने पुत्र और राजगद्दी का उत्तराधिकारी घोषित किया और साथ ही यह भी कह गया कि इस खानसामा की औलाद को बड़े-बड़े सलाम करेंगे। आसफुद्दौला से लेकर वाजिद अली शाह तक अवध के नवाबों में एक मात्र शेर मर्द—वज़ीर अली—को आसफुद्दौला के इस पाप के कारण राजसिंहासन छोड़ना पड़ा। मामूली से मामूली घरों की इज्जत उनकी स्त्रियों से होती है—यह सार्वभौमिक मान्यता है। कल्पना कीजिये, उन शाही हरम की स्त्रियों की जिनकी संतानों को लेकर जायज़-नाजायज़ का चर्चा सरे आम होता होगा। आसफ़ुद्दौला ने अपनी माता बहू बेगम के साथ जो व्यवहार बरता अपने कर्मचारियों, सिपाहियों द्वारा उन पर जो अत्याचार करवाया उसका वर्णन कर अपनी लेखनी और पाठकों के मन को दूषित नहीं करना चाहता। गाज़ीउद्दीन हैदर के समय में लखनऊ की यात्रा करने वाला पादरी हेब्बर लिख गया है कि आसफ़ुद्दौला, वज़ीर अली और सआदत अली खां की विधवा बेगमों और रक्षिताओं को सरकारी अमलों की लापरवाही से अरसे से खर्चा ही नहीं मिला था। जब वे भूखी मरने लगीं तो एक दिन अपनी बांदियों को साथ ले बाहर निकल पड़ीं और हुसैनाबाद का बाज़ार लूट लिया, दूकानदारों से कहा कि जाकर बादशाह से अपना पैसा वसूल करो। बादशाह बेगम और शाह गाज़ीउद्दीन हैदर में ऐसी बजी कि दोनों ने एक दूसरे को नाकों चने चबवा दिये। पति पत्नी के वैमनस्य में उनका पोता, नसीरुद्दीन हैदर का बेटा मुन्ना जान वैध से अवैध करार दे दिया गया। मुन्ना जान के सम्बन्ध में स्लीमैन तक लिख गया है कि वह चेहरे मोहरे और आदतों से हूबहू अपने बाप का बेटा ही लगता था।

नसीरुद्दीन हैदर अपने बेटे की धाय पर इतना रीझा कि उससे विवाह कर, सब सीमाओं का उल्लंघन कर उसे पटरानी—मलिका ज़मानियां बना दिया । यही नहीं, उसके आग्रह से उसके पूर्व पति के पुत्र को कैंवांजाह का खिताब दे, अपना पुत्र घोषित कर, अंग्रेजों से उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करने की बारबार इच्छा प्रकट की । जब मालिका ज़मानियां का ज़माना लदा तो गवर्नर जनरल को लिख दिया कि कैंवांजाह मेरा पुत्र नहीं । नसीरुद्दीन की एक चहेती कुद्सिया बेगम तो इतनी भावुक थी कि जब नसीरुद्दीन हैदर के मन से उतरी, नसीरुद्दीन ने उसे दुश्चरित्रता का दोष लगाया तो पति के देखते ही देखते आवेश में आकर ज़हर खा लिया । वाजिद अली शाह के द्वारा इन आठ बेगमों को तलाक़ देने की कथा तो सामने है ही, उसके और भी कई दृष्टान्त दिये जा सकते हैं ।

ऐसी दशा में, महल नामक सामंती नरक में रहने वाली रानियों बेगमों ने भी यदि सन् ५७ की महाक्रांति में भाग लिया तो कोई अचरज की बात नहीं । सत्तावनी क्रांति की दो महान् नायिकायें, लक्ष्मीबाई और हज़रतमहल, यद्यपि सर्वथा विभिन्न परिस्थितियों से गुज़र कर राजमहलों में आईं, फिर भी उनमें एक बड़ा ज़बर्दस्त साम्य है—दोनों ही जन-साधारण के कुलों की कन्यायें थीं । इसलिये हम कोरी भावुकता से प्रेरित किसी तर्क का आधार लिये बिना भी यह कह सकते हैं कि लक्ष्मीबाई और हज़रतमहल तत्कालीन भारतीय नारी-समाज का प्रतिनिधित्व कर रही थीं । पत्नी और उपपत्नी दोनों ही रूपों में नारी-जीवन त्रस्त और कुण्ठित था, ऐतिहासिक परिस्थितियों का सुयोग पाकर उसकी चेतना, उसका स्वाभिमान विद्रोह कर उठा ।

काइयों के पर्त जमे, बरसों के बंद तालाब में पत्थर फेंकने से जिस प्रकार काई फटती है और जल का अंतर तक आलोड़ित हो उठता है, ठीक उसी प्रकार सदियों की अगति से जड़ भारत देश अंग्रेज़ों से आघात पाकर आन्दोलित हो उठा । अंग्रेज़ बहाना बन गये, उनके बहाने इस देश के हर वर्ग के स्त्री-पुरुष ने अपनी अनेकानेक कुण्ठाओं को तोड़कर विद्रोह प्रकट किया था ।

खैर, हम फिर से अपनी ऐतिहासिक कथा के सूत्र साध लें । राजा नुसरतजंग, महमूद खां आदि के प्रयत्न से खास मकान में सब बेगमात इकट्ठा हुईं, शक शुब्हे पेश हुए—अगर यहां किसी को गद्दी पर बिठला कर अंग्रेज़ों से लड़ाई ठानी और कलकत्ते में अंग्रेज़ों ने वाजिदअली शाह को मार डाला, तो क्या होगा ?

हज़रतमहल के जीवन का एकमात्र संतोष फलनेवाला था, वह राजमाता

होने वाली थीं, परन्तु अन्य बेगमों के उपरोक्त तर्क ने उन्हें फिर निराश कर दिया। 'राजा रुखसत होकर चला गया; मगर महमूद खां के तिल-तलवों को लगी हुई थी। उसने हज़रतमहल से फौज के सरदारों को खत भिजवा दिये।'

७ जुलाई को चाँदी वाली बारादरी में बिरजीसक़दर की ताजपोशी हुई। स्वदेशी सेना के जनरल बरकत अहमद ने बिरजीसक़दर को राजमुकुट पहना दिया। अफ़सरों ने तलवारों की नज़र दिखाई, २१ तोपों की सलामी सर की गई, शहर में पुनः शाही स्थापित होने की खुशी में उत्सव मनाया गया। सैनिक पंचायत और बिरजीसक़दर सरकार के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार बिरजीसक़दर अवध के स्वतंत्र बादशाह स्वयं नहीं बन सकते थे। यह दिल्ली के शाहंशाह की मर्ज़ी पर छोड़ा गया कि वह उन्हें अवध का स्वतंत्र बादशाह घोषित करें अथवा सआदत खां से लेकर सआदतअली खां तक की परम्परा के अनुसार उन्हें नवाब वज़ीर की पदवी से विभूषित करें।

दूसरी शर्त यह रक्खी कि सैनिकों का वेतन दूना कर दिया जाय और वेतन की जो रकम अंग्रेजी सरकार में डूब गई है वह भी सरकार बिरजीसी अदा करे।

तीसरी शर्त यह रक्खी कि नई पल्टन भरती किये जाने पर उसके अफ़सर की नियुक्ति सैनिक पंचायत की सलाह से हो।

चौथी शर्त के अनुसार राज-काज में सैनिक पार्लियामेन्ट की सलाह बराबर ली जायगी तथा नायब दीवान की नियुक्ति भी उसी की सलाह से होगी।

बेगम हज़रतमहल अपने अल्प-वयस्क पुत्र की संरक्षिका नियुक्त हुईं तथा राज-काज में उनके निर्णय के महत्व को भी स्वीकार किया गया। शरफ़ुद्दौला, राजा बालकृष्ण, राजा जयलाल सिंह, मम्मू खां, हिसामुद्दौला आदि नई सरकार के प्रमुख पदाधिकारी बने।

१३ नई पल्टनें भरती करने का निर्णय हुआ। एक दूसरे हुक्मनामे के अनुसार अवध के प्रमुख ताल्लुक़ेदार, ज़मींदारों को अपनी सेनायें लेकर राजधानी में आने का आदेश दिया गया।

सैयद कमालुद्दीन ने अपने इतिहास-ग्रन्थ में सेना सहित लखनऊ आने वाले दस ताल्लुकेदारों के नाम दिये हैं। गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह ३००० सैनिक लेकर आये; गोसाईंगंज के ज़मींदार और ताल्लुकदार, अनन्दी और ख़ुशहाल ४००० सैनिक लेकर आये; सेमरौता—चन्दापुर के राजा शिवदर्शन सिंह (लोकगीत प्रसिद्ध 'सुदर्सन काना') १०,००० सैनिकों के साथ और वहां के जमींदार रामबख्श

३ तोपें और २००० फ़ौज लेकर आये; अमेठी के राजा लालमाधौ सिंह ४ तोपें २०० घुड़सवार और ५००० पैदल सेना सहित आये; बैसवारा के ताल्लुकेदार राणा वेणीमाधवबख्श सिंह ५ तोपों और ५००० सैनिकों सहित आये; राजा नानपारा के कारिन्दा कल्लू खां १०,००० सैनिकों के साथ, खजूर गाँव के राणा रघुनाथ सिंह ४ तोपों और २००० सैनिकों के साथ, सँडीला के चौधरी हश्मतअली ४००० सैनिकों के साथ, तथा रसूलाबाद के चौधरी मीर मन्सब अली १००० सैनिकों के साथ आये।

ये सामन्तगण शाही हुक्मनामा पाते ही सहसा आ गये हों सो बात नहीं। अवध के विभिन्न जिलों की यात्रा से मुझे इन सामन्तों के जगह-जगह एकत्र होकर कान्फ्रेन्सें करने और अहदनामों पर हस्ताक्षर करने की बात मालूम हुई है। इन ताल्लुक़ेदारों का संगठन करने के लिये बेगम हज़रत महल स्वयं जगह-जगह जाकर भाषण करतीं और लोगों को संगठित करने के लिये प्रयत्न करती थीं, यह सूचना किंवदन्तियों द्वारा मुझे प्राप्त हुई है। बहुत बाद में जब पूर्णतया पराजित होकर लखनऊ से भागीं तो भरावन के ज़मींदार राजा मर्दनसिंह ने इन्हें शरण न देकर एक चुभती हुई बात कही थी। वह अपमानजनक वाक्य बेगम की जगह-जगह की दौड़-धूप के प्रति स्पष्ट संकेत करता है। उन्होंने कहा : "मैं तुम्हें शरण नहीं दे सकता क्योंकि तुम मेंढक की तरह इधर से उधर उछलती फिरोगी।" हारे हुए प्रभु की जिन कारगुजारियों को राजा मर्दनसिंह ने मेंढक का फुदकना बताया वही बात यदि स्वदेशी दल की जीत हो जाती तो गदर संगठन के लिये 'जनाब आलिया बेगम हज़रत महल के तूफ़ानी दौरे' के नाम से मर्दनसिंह जैसे मुसाहबों की ज़बान पर होती। बेगम ने सचमुच ही तूफ़ानी दौरे किये होंगे। एकबार जब कि असंभव सम्भव हो गया, ख़ास महल आदि ऊँची बेगमात की औलादें रहते हुए भी हज़रत महल की कोख के जाये को ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण बाप की राजगद्दी मिल गई, तो हज़रत महल उन ऐतिहासिक परिस्थितियों के प्रति दिल से वफ़ादार भी हो गईं। मैंने आमतौर पर पुराने लोगों से बेगम के प्रति आदरसूचक शब्द सुने हैं। सीधी-सी बात है कि राणा बेणीमाधव बख्श जैसा ऊँचे दर्जे का पुरुष यदि बेगम का मान करता है तो उस महिला के प्रति हमारे मन में भी आदर जागता है। अंतिम युद्ध में राणा, राजा देवीबख्श, मुहम्मद हुसैन नाज़िम जैसे दिव्य पुरुष उनका साथ दे रहे थे। नाना साहब का दल, तुलसीपुर की रानी भी उनके साथ ही थीं। ऐसे लोग अनायास ही किसी ऐरे-ग़ैरे व्यक्तित्व से बँध नहीं सकते।

यात्रा में मुझे बेलीगारद की लड़ाई में चर्दा, चहलारी आदि नरेशों के लड़ने के सम्बन्ध में सूचनायें मिली थीं। अमहट वालों के पास सरकार-ए-बिरजीसी के गदर सम्बन्धी परवाने मौजूद हैं। सैयद कमालुद्दीन हैदर ने अपने इतिहास-ग्रन्थ में अनेक सामन्तों को परवाने भेजे जाने की बात लिखी है। रोइया (हरदोई) के नरपतिसिंह, कटियारी के हरदेवबख्श सिंह, राजपुर के दुनियासिंह ने परवाने स्वीकार किये और सिपाही की खातिर की।

बाँगरमऊ के माखनसिंह, उस्मानपुर के मीर ग़ुलाम ज़ाफ़र, साँडी-बाबन के मीर आलमअली, सलोन के भीखम खाँ ने परवाने लेकर भी हुक्म की तामील नहीं की।

कालाकांकर के राजा हनुमन्तसिंह, तरौल के बाबू गुलाबसिंह परवाने पाकर सेनाओं सहित लखनऊ आये और अंग्रेजों से खूब लड़े। सेनाओं का खर्च कुछ राजा लोग अपने पास से देते थे और कुछ को सरकार बिरजीसी से मिलता था।

पंडित देवीदत्त शुक्ल लिखित 'अवध के गदर का इतिहास' के अनुसार अवध के राजे-सामन्तों और चकलेदारों की जो सेनायें अवध की राजधानी लखनऊ में एकत्र हुईं थीं, संख्या में एक लाख, पचास हज़ार पाँच सौ थीं।

इतनी जन सेना लेकर भी हम रेज़ीडेन्सी के मुट्ठी भर गोरों और गोरा-परस्तों से जीत न पाये, इसका कारण सहसा समझ में नहीं आता। आमतौर पर सिपाहियों में वीर पुरुष थे। जहां तक व्यक्तिगत वीरता का प्रश्न है हमारे पुरखे एक से एक, वेमिसाल बहादुर हुए हैं। केवल १८५७ में ही नहीं बल्कि जाने माने इतिहास के आरम्भ से देखें, सिकन्दर के आक्रमण के समय महायोद्धा पुरु और उनके साथ लड़ने वाले असंख्य भारतीय जन अपनी वीरता के लिये तत्कालीन यूनानियों द्वारा खूब सराहे गये हैं। फिर चन्द्रगुप्त मौर्य, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, हर्षवर्द्धन, पृथ्वीराज चौहान, राणा साँगा, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह से लेकर लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, मौलवी अहमदउल्ला शाह, नानाराव पेशवा, जनरल बख्त खाँ रुहेला, राणा वेणीमाधव बख्श, बाबू कुँअरसिंह, बलभद्रसिंह चहलारी वाले,—अनेकानेक और प्रायः प्रत्येक युग में अवतरित हुए। महावीर योद्धा उत्पन्न होते गये और देश बराबर विदेशियों द्वारा हारता रहा। यह सोचकर हार्दिक कष्ट होता है। जब पहली बार इस बात पर ध्यान बैठा तो मन में उपमा के तौर पर एक चित्र भी उभरा। ऐसा दिखाई पड़ा मानो दस हज़ार हाथियों के बराबर बलशाली भीम गहरे दलदल में फँस गया है

उबरने के लिये वह अपनी जितनी अधिक शक्ति का उपयोग और प्रदर्शन करता है उतना ही वह गहरा धँसता चला जाता है। सोचकर सिहर उठा; दम सा घुटने लगा।

उम्दा घड़ी के बेशक़ीमती पुर्ज़े मौजूद हैं पर वे सुनियोजित रूप से एकत्र और सुसंगठित नहीं है...हमारे देश की यही तस्वीर है। महाराज पुरु के समय से लेकर सन् १८५७ ई० तक यही बात दिखलाई देती है।

रेज़िडेन्सी पर बराबर हमले होते रहे। हमारे पासी जाति के पुरखे सुरंगें उड़ाने में बड़े पटु थे, अक्सर बेलीगारद वालों को उनसे नुकसान पहुँचता रहा।

अगस्त में कानपुर से हेवलाक की सेनाओं के इधर आने की ख़बर गर्म थी। बेगम, मम्मू खां, जनरल बरकत अहमद ने तय किया कि गोरों की नई सेना आने से पहले बेलीगारद पर कब्ज़ा कर लेना चाहिये। फ़ौज के दूसरे अफ़सर भी सहमत हो गये।

१०, अगस्त को सब पल्टनें और रिसाले अपनी-अपनी जगह धावे के लिये तैयार होने लगे। जनरल बरकत अहमद फ़ौज लेकर बेलीगारद की ओर बढ़े। तिलंगों ने 'ब्रम महादेव' का नारा लगाते हुए, रेज़िडेंसी को घेर लिया। इतने में मौलवी साहब पधारे, उन्होंने कहा कि यह धावा नाहक हो रहा है, जब तक मैं न कहूँ, कुछ न हो। मौलवी साहब का सिपाहियों पर प्रभाव था ही, उनकी बात की लक्ष्मण लीक के आगे तोपखाने के रिसाले ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। तिलंगे अवश्य बेलीगारद की दीवाल तक पहुँच गये। एक सुरंग में बत्ती दी गई, पर वह किसी कारणवश न उड़ी। तिलंगे दीवार खोदने लगे; कुछ गिरजाघर और कुछ खजाने की ओर से बढ़े।

बेगम और मम्मू ख़ाँ के पास दम-दम पर हरकारे पहुँचने लगे कि यों हमारी जीत हो रही है और यों रेज़िडेंसी पर अधिकार हो रहा है। बेगम का प्रसन्न होना स्वाभाविक था। दूसरे दिन और ही खबर आई, लड़ाई में मारे गये और घायल हुए लोगों की सूची आई—२२० मारे गये और १०५ घायल हुए। लाशें रण-क्षेत्र में ही छूट गईं। बेगम को बड़ा आघात लगा।

फूट का बाजार शुरू से ही गर्म हो चला था। शंका और पारस्परिक भय फैला हुआ था। बात यह थी हमारी ओर सेना का संगठन और संचालन करने वाला कोई भी योग्य कमांडर न था। जनरल बरकत अहमद, जिनकी जंगी सूझ-बूझ से चिनहट में विजय मिली, एक तरह सर्वमान्य हो कर भी, दूसरे नेताओं की अहमन्यता

के शिकार थे। मम्मू खाँ चूँकि बेगम की कमज़ोरी थे, इसलिये शहज़ोर थे; जनरल बरकत अहमद का मान था; मगर मौलवी अहमदुल्ला शाह भी महामानी थे। सैनिक पंचायत के अन्य अफ़सर भी अपना महत्व जतलाये बिना कैसे रहते? इस प्रकार नेताओं में खींच-तान थी।

यह सब देख कर लगता है कि उस समय हमारा राष्ट्रीय मानस दूसरी परिस्थिति में था; यानी कि संगठन भी था और आपसी फूट तथा शंका भी थी। स्वाभिमान और सिद्धान्त के लिये मर-मिटने का ज़ोम भी भरपूर था, पर आपसी कलह में भी कसर न थी। हमारे सत्तावनी पुरखे अपनी ऐतिहासिक परिस्थिति के प्रति जहां अत्यधिक गम्भीर थे वहां ही दूसरी ओर संगठन की व्यापकता के प्रति लापरवाह भी थे। यानी कि हम बढ़ रहे थे, बड़ी धूम थी, बड़ा जोश था, मगर साथ ही साथ हमारे पैरों में उलझनों की कांटेदार बेड़ियाँ पड़ी थीं; हम एक जगह पूर्णतया जड़ भी थे।

महलों में भी आपसी जलन और तू-तू, मैं-मैं का बाज़ार गर्म था। एक दिन कई बेगमात मिल कर हज़रत महल के पास आईं, कहा कि बेलीगारद के अंग्रेज़ को मारने का बदला कहीं वाजिद अली शाह और कलकत्ते में रहने वाली शाही टोली को मार कर न लिया जाय, इसलिये तुम इस सल्तनत को चूल्हे में डालो। हज़रत-महल बोलीं, मालूम हुआ तुम सब लोग जलती हो।—बड़ी कहासुनी हो गई। फ़ौज के अफसरों तक बातें पहुँची। उन्होंने कहा कि बेगमात अंग्रेज़ों से मिल गई हैं, उन्हें महलों से बाहर निकाला जाय।

इस तरह की बातें कुछ न कुछ नित्य-प्रति उठती ही रहती थीं। इन आपसी फूट की बातें अफ़वाहों की सूरत में सिपाहियों तक पहुँचती और उन अफ़वाहों का असर बुरा पड़ता था।

सरकारी खजाने में रुपया नहीं था। उसकी चिंता थी। जुलाई में बिरजीस क़दर के गद्दीनशीन होने के बाद से ही बेगम को रुपयों की चिंता थी। तिलंगे शहर में लूटपाट मचा रहे थे। इससे नगर की जनता में स्वाभाविक रूप से बड़ा ही असंतोष था। एक दिन बिरजीस क़दर को घोड़े पर सवार करा बेगम ने तिलंगों की सेना को समझाने के लिये बाहर भेजा। ३३ तोपों की सलामी सर की गई; उधर भी तिलंगों ने बड़े अदब से अपने शासक की बातें सुनी और वचन दिया कि भविष्य में शहर नहीं लुटेगा, लेकिन हमारे पेट की सुध ली जाय।

बेगम साहबा के पास कुल चौबीस हजार रुपया था। जो खर्च हो चुका था।

मुफ्ताहुद्दौला से खजाना माँगा गया, उन्होंने कहा कि सोने-चांदी के असबाब के सिवा खजाने में और कुछ नहीं। उनसे चाभियां लेकर वे सोने-चाँदी की चीज़ें गलाकर सिक्के ढालने का आयोजन हुआ। अफ़सरों ने नवाब माशूक महल का घर लूटा। नवाब के खजाने का भेद सात फ़ीसदी कमीशन पाने की लालच में भेदियों ने मम्मू खां क़ो बतला दिया। रात में मम्मू खाँ, राजा जयलाल, युसुफ़ खाँ, हैदर खाँ आदि नवाब के घर गये। एक सहनची खोदी गई, पांच लाख रुपया निकला। इसमें से कुछ सरकार में पहुँचा, कुछ मम्मू खाँ के घर पहुँच गया।

सैयद कमालुद्दीन ने मम्मूखाँ पर लूट का इल्ज़ाम लगाया है। कमालुद्दीन के अनुसार मम्मू खां ने तिलंगों की लूट को इस रीति से बढ़ावा दिया कि वे लूट का धन सरकार में जमा करते रहें। एक दिन तिलंगे नवाब मुमताजुद्दौला के यहां से से पचास हज़ार का माल लूट लाये और सरकार में जमा कर दिया। नवाब अफ़सर बहू का मालमता लुटा, शहर के रईस लूटे गये, शाही बेगमात ने तिलंगों द्वारा सताये जाने की शिकायत मम्मू खाँ से की, मगर उन्होंने ध्यान न दिया।

इस प्रकार नगर के एक वर्ग में असंतोष बढ़ रहा था।

मम्मू खाँ सन् १८५७-५८ का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति है। अंग्रेज़ों ने उसके और बेगम के संबंध में बहुत कुछ लिखा है। शेख तसद्दुक़ हुसैन साहब लखनऊ और अवध के मुस्लिम इतिहास के अधिकारी विद्वान माने जाते हैं, उन्होंने भी कुछ ऐसा ही संकेत किया है। परन्तु लखनऊ के कुछ पुराने परिवारों के वंशज इस बात को बहुत ग़लत मानते हैं। उनका कहना है कि बेगम साहबा का चरित्र बेदाग़ था। उस ज़माने में उन्हें तरह-तरह से बदनाम किया जा रहा था। लखनऊ में आलमबाग़ की लड़ाई के सुप्रसिद्ध वीर शहीद, भटवामऊ के राजा नबी बख्श के वंशज राजा रज़ा हुसैन खाँ तो इस बात से किंचित उत्तेजित हो उठे थे। कहने लगे: "साहब, क़ौम की बदक़िस्मती से उस जमाने के सही हालात पर रौशनी डालने लायक रिकॉर्ड अब नहीं रहे। कोई कुछ भी कह सकता है। हमारे खानदान का उन दिनों की तवारीख से चूँकि बड़ा ताल्लुक़ रहा है, मेरे दादा नबी बख्श खां और उनके दोनों भाई तजम्मुल हुसैन खाँ, क़ाज़िम हुसेन खाँ—तीनों ही गदर में शरीक हुए थे, इसलिये हमारे खानदान में उस ज़माने की रवायतें चली आ रही हैं। मेरे चचा ने तो उस ज़माने का हाल भी लिखा है, मैंने अपने बचपन में यह तो ज़रूर सुना था, कि मम्मू खाँ बेगम साहबा के बड़े मुँहचढ़े थे, और इसी वजह से दुश्मनों ने ग़लत खबरें उड़ा रक्खी थीं।"

यह होते हुए भी मम्मू ख़ां के संबंध में मेरी धारणा अबतक भी कुछ अच्छी नहीं बँध पाई। मम्मू ख़ां अब तक बेग़म के प्रति वफ़ादार रहे, ज़ाहिरा तौर पर यह बात साफ़ है पर उस वफ़ादारी के साथ-साथ वे अनुचित रूप से अपने को भी महत्व दे रहे थे। उन्होंने अपनी अहंता बेगम के अर्थात् स्वदेश के हितों पर भी अनुचित रूप से लादी है। वे पढ़े-लिखे दूरंदेश हरगिज़ नहीं मालूम पड़ते। बेग़म के मुँहचढ़े होने के दो कारण समझ में आते हैं, एक तो वे फ़ौज़ी पार्लिया-मेण्ट और सरकार-ए-बिरजीसी के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी थे, दूसरे सरकार को लड़ाई चलाने के लिये येनकेन प्रकारेण रुपया लाकर दे देते थे। दरबार के अमीरों पर उनसे अधिक सम्भवतः राजा जयलाल सिंह का प्रभाव था। ग़दर के बाद अंग्रेजी हुकूमत ने मम्मू ख़ां और राजा जयलाल सिंह पर मुकदमे चलाये। मम्मू ख़ां का बयान लिया गया था। वह सरकारी फाइलों में सुरक्षित है। मम्मू ख़ां का बयान उनकी ढुलमुल यक़ीनी का परिचय देता है। राजनैतिक व्यक्ति के लिये उचित सूझबूझ और गहरे विचारमंथन का उनमें अभाव नज़र आता है।

रुपये पैसे का अभाव योग्य और विश्वस्त सलाहकारों में पारस्परिक फूट, फ़ौजी संगठन में खींचतान, शिया-सुन्नी समस्या, शहरी शासन में ढीलढाल और प्रजा में भयजनित अस्थिरता, इस सबके साथ रेज़िडेंसी की लड़ाई चल रही है और जिसे चलाते रहना ही आन की बात है। ऐसी विषम और निराशाजनक परिस्थिति में भी नित्य नये प्राण फूंकनेवाली शक्ति के मुझे दर्शन न होते यदि मैंने अवध में जगह-जगह बेगम के आने, विशेषरूप से महादेवा की सामन्त सभा में सबको अपने भाषण से उत्तेजित कर देने की बातें न सुनी होतीं। बेगम हज़रत महल ने केवल मम्मू ख़ां, मौलवी साहब, जनरल साहबान, सूबेदार साहबान के भरोसे बैठे रहना अक्लमन्दी न समझा। उन्होंने विभिन्न इलाक़ों के नाज़िमों, चकलेदारों को संगठित किया, प्रमुखतम हिन्दू सामन्तों का सहयोग प्राप्त किया। इनकी सेनाओं का बराबर लड़ने के वास्ते आते रहना फ़ौज़ी संगठन को भी एक बने रहने की प्रेरणा अवश्य देता था। मौलवी अहमदुल्ला शाह भी आपसी दिलशिकनी भूल कर अपने जौहर दिखलाने के महा आवेश में आ जाते थे। यह सच है कि यदि कोरा 'जेहाद'.. होता तो एक बार प्रबलतम होकर भी उसे तुरंत ही मिटना पड़ता। मौलवी अहमदउल्ला शाह के चरित्र का राष्ट्रीय विकास ही तबसे आरम्भ होता है जबसे वे स्वदेश रक्षक हिन्दू सामंतों, विशेष रूप से राणा वेणीमाधव बख्श के सम्पर्क में आते हैं। बैसवारों के प्रमुख राणा वेणीमाधव बख्श, रैकवारों के प्रमुख हरदत्तसिंह

गोंडा के राजा देवी बख्श सिंह विसेन, जनवार, अहिबन, गौड़ कनपुरिया आदि अवध के समस्त क्षत्रिय सामन्त मण्डल का सहयोग प्राप्त कर लेना आसान बात न थी ; ख़ास तौर पर जब कि हाल ही में अयोध्या में जेहाद हो चुका था। इन सामन्तों में जो बाद में अंग्रेज़ों से मिल गये, छुटभैये क़िस्म के लोग थे ; जो बड़े-बड़े सर्दार थे वे नेपाल के जंगलों तक बेगम के साथ गये। केवल इस बात से ही बेगम हज़रत महल के व्यक्तित्व पर पूर्ण प्रकाश पड़ जाता है।

अपनी डायरी में सर विलियम रसल ने एक वाक्य लिखा है : "अपने बेटे के हितों की रक्षा के लिये उन्होंने सारे अवध को उत्तेजित कर दिया है, और मुखिया लोगों ने उसके (बेटे के) प्रति वफ़ादार रहने की क़स्में खाई हैं।"

मैं सौ वर्ष पुराने और आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर को अच्छी तरह मानते हुए भी यह मानने को तैयार नहीं कि केवल बिरजीसक़दर का राज सिंहासन बचाने के निष्काम भाव से ही सारे सामन्त और नाज़िम चकलेदार 'शरणम् गच्छामि' बोलते हुए चले आये होंगे। एक स्त्री, भले ही वह कितनी भी चतुर क्यों न हो, केवल अपने बेटे या नज़रबन्द पति के नाम पर वफ़ादारी की भावना नहीं जगा सकती। जबतक सामूहिक स्वार्थ की समस्या न हो, समूह के स्वाभिमान का समान प्रश्न न हो तब तक ऐसा संगठन नहीं हो सकता जैसा अवध में बेगम हजरत महल के द्वारा किया गया था। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि भय और पारस्परिक शंकाओं के उस प्रलयकाल में एक स्त्री द्वारा इतनों का अटूट विश्वास प्राप्त कर लेना साधारण बात नहीं है।

ज़ने ख़ानगी का टीका लगाये ही सही, मगर बेगम हज़रत महल किशोरावस्था से मिर्ज़ा वाजिद अली की हुईं ; पर्दे के अदब क़ायदे से वे भी उसी तरह बँधी थीं जैसे दूसरी बेगमें, हर मुसलमान स्त्री बँधी थी। उनका पर्दे से बाहर आना ख़तरे से ख़ाली नहीं था। बेचारी के पास कुलीनता का सार्टीफिकेट भी नहीं था। यों ही बदनामी में कसर न रही, अगर एक भी क़दम सचमुच डगमगा जाता तो कहीं की न रहतीं। किन्तु बेगम के सामने एक स्पष्ट उद्देश्य था, उसके पीछे खरे विद्रोह का तप था, उचित सूझबूझ थी। वाजिदअली शाह की बेगम हज़रत महल हर्गिज़ पर्दा-प्रथा तोड़कर बाहर नहीं निकल सकती थी, किन्तु बेगम आलिया—राजमाता हज़रत महल पर्दे की झूठी क़ैद से बाहर निकलने लायक आत्मविश्वास से कवच-मंडित, पूर्ण सुरक्षित थीं। गदर के दिनों में बेगम की आयु अधिक से अधिक छब्बीस-सत्ताईस की रही होगी। भरे यौवन में राजमाता का गौरव पद सम्हालने

वाली देवी प्रणम्य है। बलभद्र सिंह के 'जंगनामे' में बेगम के संबंध में प्रकट हुई कवि की श्रद्धा वास्तव में तत्कालीन जन-मन की श्रद्धा है।

रसल लिखता है : "वह अपने बादशाह पति से अच्छी 'मर्द' थी।" श्री सुन्दर लाल ने जॉर्ज विकर्स की सन् १८५८ ई० की छपी पुस्तक के आधार पर 'भारत में अंग्रेज़ी राज' में लिखा है, "अवध निवासियों की इस आज़ादी की लड़ाई में बेगम हज़रत महल के अधीन अवध की अनेक स्त्रियां तक मरदाना वेष पहन कर, हथियार बांधकर अपने अलग दल बना कर लड़ रहीं थीं।" श्री सुरेन्द्रनाथ सेन ने लिखा है कि "कम प्रतिष्ठित पंक्तियों की स्त्रियों ने नगर की रक्षा के निमित्त अपने प्राण अर्पित कर दिये।" उन्हीं की पुस्तक में गॉर्डन एलेक्ज़ेंडर का एक उद्धरण दिया गया है कि सिकंदर बाग़ की लड़ाई में अनेक हब्शिनें भी लड़ रही थीं। वह लिखता है : "वह जंगली बिल्लियों की तरह लड़ रही थीं और उनकी मृत्यु हो जाने से पहले यह पता ही न चल सका कि वे औरतें थीं।" सिकंदर बाग़ में पीपल के वृक्ष से एक स्त्री ने अनेक गोरों को मार गिराया और अंत में स्वयं भी गोली से ही मरी। लखनऊ के पतन के बाद एक जुलजुल बुढ़िया लोहे के पुल के पास चीथड़े बटोरते नज़र आया करती थी। कुछ दिनों बाद वह मरी पाई गई। जांच होने पर पता लगा कि वह बारूद से कोई सुरंग उड़ाने आई थी, पलीता अधजला हाथ में ही रह गया और वह किसी कारणवश स्वयं ही मृत्यलोक से उठ गई।

बेगम आलिया ने भी रानी लक्ष्मी बाई के समान स्त्रियों का सैनिक संगठन बनाया था। महलों की बांदियाँ उनकी निगरानी में क़वायद इत्यादि करती थीं और उनकी शागिर्द कहलाती थीं। स्त्री जासूसों का अच्छा संगठन भी उनके द्वारा किया गया था। इस प्रकार आपसी फूट की निराशाजनक स्थिति में भी जन-जन की क्रांति-भावना को अवध में पौने दो वर्ष तक जगाये रखना बेगम का ही काम था।

सत्तासी दिन के घेरे के बावजूद हिन्दुस्तानी लोग हर तरह से टूटे हुये मुट्ठी भर गोरों को हरा न सके। काश कि बेगम ने सैनिक शिक्षा भी पाई होती तो वह तमाम मर्द सेनापतियों से कई गुना अच्छी कमांडर साबित हुई होतीं।

बेगम नाना और तात्या से भी क्रान्ति के सिलसिले में बराबर मिलती-जुलती रही हैं। कोई आश्चर्य नहीं जो उन्होंने नाना से उनकी मुंहबोली बहन छबीली की स्फूर्ति-दायनी बातें सुनी हों। आड़े समय में क्रान्तिकारी एक दूसरे के व्यक्तित्व से प्रेरणा लेकर ही अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं।

जुलाई, अगस्त और आधे सितम्बर तक तूफ़ानी समुद्र में सल्तनत की झंझरी नाव लेकर भी बेगम बड़े साहसपूर्वक आगे बढ़ती रहीं। मीर फ़िदाहुसैन कप्तान उनके भाई मुहम्मद हुसैन नाज़िम, अब्दुल हादी खां, कुमेदान मुहम्मद मिर्ज़ा, शरफ़ुद्दौला, हिसामुद्दौला—सभी बेगम से ही नया बल प्राप्त कर आपसी शिकायतों को नज़र-अंदाज़ कर स्वतंत्रता संग्राम में आगे बढ़े। राजा जयलाल सिंह ने बड़ा साथ दिया। जब हैवलाक की सेनायें उन्नाव जिले में विजय सिद्ध करने लगीं और सूचना पाकर तिलंगे लखनऊ शहर की नाकेबन्दी छोड़ कर भागने लगे तब राजा जयलाल ने यह देख अपना पहरा मुक़र्रर किया। इस बीच रेज़िडेंसी पर ज़ोरदार हल्ले होते ही रहे।

२१ सितंबर को हैवलाक और औटरम की सेनायें लखनऊ के लिये चलीं। मगरवारा और बशीरत गंज में विजय-लाभ करते हुए अंग्रेज सई नदी के किनारे बनी में पहुंच गये और २३ तारीख़ को लखनऊ की ओर बढ़े। शहर में घबराहट फैल गई। उनमें कायरता के बजाय कर्म प्रेरणा भरने के लिये शहर में मुनादी की गई कि अंग्रेज़ जीतेंगे तो रिआया को ईसाई बनायेंगे। पोस्टर जगह-जगह चिपकाये गये कि यदि अंग्रेज जीते तो स्त्री-पुरुष-बच्चे किसी को भी जीता नही छोड़ेंगे; दिल्ली, मेरठ, कानपुर सब जगह इन्होंने प्रजा की भली दुर्दशा की है।

तिलंगों को सम्भवत: वेतन नहीं मिला था अथवा किसी और कारण से उन्हें सरकारी व्यक्तियों से बड़ी शिकायत थी। वे लड़ने तो जा रहे थे पर सरकार-ए-बिरज़ीसी के प्रति असंतोष लेकर। पानी ज़ोरों का बरस रहा था। सेनाओं में पूरा जोश नहीं था। मम्मू खां और जनरल हिसामुद्दौला बेगम के आग्रह से तिलंगों का हौसला बढ़ाने के लिये एक गाड़ी पर सवार हो कर गये। मीर वाजिद अली से भी साथ चलने को कहा, वे बोले कि हम तिलंगों की गालियाँ सुनने नहीं जायेंगे, अगर लड़ने के लिये जाते हो तो साथ देने को तैयार हैं।

सैयद कमालुद्दीन के अनुसार गाड़ी पर जाते हुए मम्मू खां और जनरल हिसामुद्दौला ने तिलंगों की इतनी गालियाँ सुनीं कि भाग कर एक मस्जिद में बैठ रहे।

राजा रज़ा हुसैन खां, भटवामऊ ने मुझे बतलाया था कि उनके तीनों दादा तजम्मुल हुसैन खां, नबी बख्श ख़ाँ और काजिम हुसैन ख़ाँ भोजन करने बैठे थे कि बेगम साहबा ने आकर कहा: "इम्तहाने सर फ़रोशी का वक्त आ पहुँचा है और तुम लोग घर में बैठे हो। क्या जब गोरे मेरे झोंटे नोचेंगे तब जाओगे?" तीनों

भाई दस्तरख्वान से उठ खड़े हुए। नवाब बिरजीस क़दर नबीबख्श खाँ को दस हजार रुपये देने लगे जिसे उन्होंने लेने से इनकार कर दिया।

अयोध्या के राजा मानसिंह भी अपने नौ हजार सिपाहियों के साथ बड़ी बहादुरी से लड़े।

आलम बाग़ में बड़ी भीड़ थी। जनता सिपाही सभी अपने नगर की सुरक्षा के लिये लड़ने उमड़ आये थे। पानी भी बड़े ज़ोर से बरस रहा था। दोनों ओर से तोपों की करारी मार चल रही थी, मुँह-मेल लड़ाई हो रही थी। बेगम हज़रत महल को चैन नहीं था। शहर में चारों ओर जा-जाकर सर्दारों के उत्साह जगा रही थी। सरफराज बेगम लखनवी ने कलकत्ते की अख्तर महल को पत्र में लिखा हैं: "मैं नहीं समझती थी कि हज़रत महल ऐसी आफ़त की परकाला है। खुद हाथी पर बैठ कर तिलंगों के आगे-आगे फ़िरंगियों से मुक़ाबला करती है।" धन्य है उसकी स्त्री के जीवट को! हज़रत महल से सचमुच राजमाता के पद गौरव की प्रतिष्ठा बढ़ी है। उनकी प्रेरणा और भयानक शत्रु का सामना सैनिकों में अद्‌भुत उत्साह भर सका; वे भूख, प्यास, आपसी शिकायतें आदि सब कुछ भूल कर अपनी एक-एक इंच भूमि के लिये लड़ रहे थे।

अंग्रेज जीत गये। रेज़िडेंसी में पहुँच गये। इसके बाद तो नगर में स्थित स्वदेशी सेनाओं को हताश हो जाना चाहिये था, पर लाख गड़बड़ियां चलने के बावजूद ऐसा न हो सका। एक बार अंग्रेजों को रेज़िडेंसी छोड़ कर निकल जाने में ही अपना कल्याण दिखाई दिया। बेगम के तूफ़ानी दौरों और अवध भूमि के भारतीय वीरों की राष्ट्रीय भावना ने चारों ओर से सिमट कर अपनी राजधानी को शक्ति-पुंज बना दिया। अनेक राजा सरकार-ए-बिरजीसी से अपनी सेना का खर्च तक नहीं माँगते थे।

ग़दर में मैं अपनी कमज़ोरियों को तो यथामति सतर्क हो पहचानता और आज तक अनुभव भी करता चल रहा हूँ; परन्तु उस काल में मुझे अपनी ऐसी विशेषतायें भी कम नज़र नहीं आतीं जिन्हें पाकर किसी भी काल में हर राष्ट्र गौरव का अनुभव करेगा। अवध को तो मैंने देगची के एक चावल की तरह टटोला है, जो यहां है वह भारत देश में है। भारत की सांस्कृतिक एकता इस प्रकार की है कि अपनी विशेषताओं को लेकर उसका कोई भी भाग पूर्णरूप से स्वच्छन्द नहीं। यह राष्ट्रीयता ही अब तक इस महाद्वीप-से विशाल देश को बचाये हुये है। ऐसी असम्भव-सम्भव सुन्दर पृष्ठभूमि के साथ भी यहां राजनैतिक एकता बार-बार

भंग हुई, यह और बात है । यदि मेरे पास शक्ति और साधन होते और थोड़े से स्थानों तक ही पहुँच पाने के बजाय गदर के पूरे क्षेत्र में दौरा कर सकता तो मेरा विश्वास है, हर जगह मुझे ऐसी ही स्फूर्ति मिलती । स्वाभिमान और स्वतंत्रता के लिये होने वाले युद्ध में हिंदू मुसलमान दोनों ही अपने अन्दर से अनेक उदात्त वीर नायक-नायिकाओं को, राष्ट्रीयता के उगते हुए नये रूप और स्वतंत्रता की रक्षा के लिये, राष्ट्र को प्रदान कर रहे थे ।

ग़ुलामहुसैन की मस्जिद के नीचे अंग्रेज़ों से जम कर लड़ाई हो रही थी । नबी बख्श खां के दोनों भाई सख्त घायल हुये । लोगों ने उनसे कहा तो बोले : "ये क्या खबर सुनाने आये हैं ? लड़ाई में मरने-मारने और घायल होने के सिवा और होता ही क्या है ?" नबीबख्श खां और ठाकुर अमरसिंह दोनों साथ-साथ शहीद हुए । नबी बख्श खां की माता जीवित थीं । जिस समय उनके तीन बेटे लड़ाई के मैदान से उनके सामने लाये गये तो तीनों ही मुर्दा लगते थे । नबीबख्श ख़ाँ का शव लाया गया था और तजम्मुल हुसैन खां तथा काज़िम हुसैन खां बेहोशी की हालत में आये थे । तीनों बेटों को देखकर वीर माता बोली : "ख़ुदावन्दा, शुक्र है तेरा कि ये लोग लड़भिड़ कर मरे और नाम रख लिया । मैं अपना दूध बख्शती हूं ।"

मार्च, सन् १९५८ तक घरेलू कमजोरियों के बावजूद संघर्ष चलता रहा । १८ मार्च को बेगम हज़रतमहल तथा २१ मार्च को मौलवी अहमदुल्ला शाह अंग्रेज़ों से हार गये, एक - एक इंच भूमि के लिये जम कर युद्ध हुआ; अंग्रेजों द्वारा लिखी गई पुस्तकों तक में भारतीय वीरता के चित्र उभर कर सामने आते हैं ।

सुकवि बंधुवर चंद्रप्रकाश सिंह जी के परनाना अंतिम युद्ध में सम्मिलित हुये थे । कुछ वर्ष पहले ही उनका देहान्त हुआ । वे बतलाया करते थे कि "अंग्रेज़ों की लाशों पर फिसल-फिसल कर हम लोग आगे बढ़ते जाते थे । सम्मुख रण में अंग्रेज कभी हमारे मुकाबले में ठहर नहीं पाते थे । हाँ, उनकी तोप-बंदूकें बढ़िया और जबर थीं, उनसे हमारा बस नहीं चलता था । बेगम को नेपाल तक जाके छोड़ा । बिदा करते हुए बेगम रोने लगीं, कहा, अब हमारा अपना ही ठिकाना नहीं रहा, तुम लोग जाओ ।" चंद्रप्रकाशसिंह जी के परनाना और उनके चचेरे भाई माधव सिंह जी और कालिकासिंह जी नवाब बिरजीसक़दर के अंग रक्षक थे । उन्हें जो वर्दी मिली थी उसे अन्त तक बड़े-बड़े अवसरों पर शान से पहनते थे ।

बेगम हज़रत महल लखनऊ से निकल कर अपने पुत्र सहित गुरुबख्श सिंह रैकवार के भिठौली गढ़ में रहीं और फिर रैकवारों के मुखिया हरदत्तसिंह के

बौंडी गढ़ में क्रान्ति का केन्द्र स्थापित कर दिसम्बर ५८ तक वहीं से सारे सूत्रों का संचालन करती रहीं। यहीं से राजमाता हज़रत महल ने राज राजेश्वरी विक्टोरिया की घोषणा के उत्तर में जो चेतावनी अपने स्वदेश वासियों को दी थी, वह भारतीय गदर के इतिहास के साथ-साथ चिरकाल तक जीवित रहेगी। सुन्दरलाल कृत इतिहास ग्रन्थ में बेगम के उक्त एलान का बहुत सा अंश उद्धृत किया गया है। पहले समझता था कि जैसे शासकों के लेखक उनके नाम से मज़मून बना देते हैं, वैसे ही बेगम हज़रत महल के इस एलान को भी किसी और ने उनके नाम से लिखा होगा। परन्तु अब प्रेरणा मूर्ति बेगम के सम्बन्ध में इतना जान कर बेझिझक तस्लीम कर लूंगा कि उसके एक-एक शब्द बेगम हज़रत महल के बोले हुए हैं। बेगम ने ऐसी ही बातों से पतन-शील सामन्तों को उठाया था। अवध में जन - जन के अंदर जैसे सब कुछ पलट गया था—भारतवासी अपना उद्धार करने के लिये खरे आवेश में आ गया था। यही कारण है कि विक्टोरिया के एलान के छः महीने बाद तक अवध में विद्रोह की ज्वाला धधकती ही रही। चार्ल्स बाल लिखता है: "मलका बिक्टोरिया के एलान के बाद भी अवध के अन्दर आश्चर्य जनक युद्ध जारी रहा। विप्लवकारियों के इन सब गिरोहों के साथ उनके देशवासियों की सहानुभूति थी और इस सहानुभूति से उन्हें इतना अधिक बल और इतनी अधिक उत्तेजना प्राप्त हुई कि जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। ये विप्लवकारी बिना कमसरियट के जहां चाहें जा सकते थे, क्योंकि लोग सब जगह उन्हें भोजन पहुँचा देते थे। वे बिना पहरे के अपना असबाब जहां चाहे छोड़ सकते थे, क्योंकि लोग उनके असबाब पर हमला न करते थे। उन्हें सदा अपनी और अंग्रेज़ों की स्थिति का ठीक-ठीक पता रहता था, क्योंकि लोग उन्हें घण्टे-घण्टे भर के अन्दर आकर सूचना देते रहते थे। हम उनसे अपनी कोई योजना छिपाकर न रख सकते थे, क्योंकि हमारी प्रत्येक खेमे की मेज के इर्द-गिर्द और अंग्रेजी सेना के क़रीब हर खेमे में उनसे गुप्त सहानुभूति रखने वाले लोग खड़े रहते थे। हमारे लिये उन पर अचानक हमला कर सकना एक अलौकिक सी बात थी, क्योंकि हमारे चलने की अफ़वाह, एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को हमारे सवारों से अधिक तेज़ी के साथ उन तक पहुँच जाती थी।"

बहराइच में काज़िम हुसैन खां, भटवामऊ जमींदार तजम्मुल हुसैन खां, गोंडा के राजा देवीबख्श, बरुवा के ठाकुरगुलाब सिंह, महोना के दिग्विजय सिंह, रोइया के राजा नरपत सिंह, राणा वेणीमाधव बख्श बहादुर, चरदा के राजा जोत सिंह,

चौधरी मुसाहबअली, अनंदी कुरमी—सब अपनी-अपनी जगह पर लड़ते रहे, और जब उखड़े तो बौंडी में आ सिमटे। यह देख लार्ड क्लाइड ने सर होप ग्रान्ट को चन्द्रपुर बुलाया। लार्ड क्लाइड ने नेपाल की सीमा पर चौकस पहरे का प्रबन्ध और इन हारे हुए वीरों को नेपाल की सेना में खदेड़ना आरंभ किया। लार्ड क्लाइड बहराइच से लड़ते भिड़ते बौंडी के निकट पहुँच गया। बेगम, नाना, राणा, आदि क्रान्ति के अमर सेनानियों ने डट कर अंगरेजों को युद्ध दान दिया। और जब यहां से पैर उखड़े तो दुःख के साथी तितर-बितर होकर नेपाल की सेना में निकल गये।

बेगम और उनके साथी अकेले नहीं भागे थे, उनके साथ कई हज़ार सेना भी थी। सर होप ग्राण्ट ने अपनी पुस्तक में सैनिकों की संख्या दी है। स्वदेशी दल के वीरों का नेपाल से होकर कलकत्ते पर आक्रमण करने का पूरा विचार था जो बाद में कारणवश सम्भव न हो सका। इन सिपाहियों की सूची में इन्फ़ील्ड राइफ़लधारी सैनिकों का भी उल्लेख है। इन्हीं नई राइफ़लों के कारतूसों पर सत्तावनी क्रान्ति की ज़िम्मेदारी रक्खी गई है। आपद्काल में भारतीयों ने चर्बी के कारतूस मुँह से खोलकर अंग्रेजों को मारा था।

इस सम्बन्ध में आगरा कालेज के इतिहास राजनीति विभाग के प्राध्यापक डॉक्टर सत्यनारायण दुवे ने मुझे बतलाया था: "मेरे मामा श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, जो उधन्नपुर, तहसील बाह, ज़िला आगरा के निवासी हैं, का कहना है कि आपद्धर्म में चौका-चूल्हा ख़त्म हो जाता है। ग़दर में हमारे घर के लोग झोले में रोटी डालकर ले जाते थे और मुँह से चर्बीवाला कारतूस काटकर अंग्रेज़ों को मारते थे।"

नेपाल भागने वाली सेना में इन्फ़ील्ड राइफ़लसधारी सैनिक तथा डाक्टर दुबे की यह बात सिद्ध करती है कि शत्रु नाश की भावना थोथे धर्म की भावना से सैनिकों की निगाह में बड़ी थी। अस्तु।

बेगम हज़रत महल दो-तीन दिन तुलसीपुर की अचवागढ़ी में रहीं, वहां से सोनार पर्वत होकर नये कोट चली गईं। नये कोट में आसफ़ुद्दौला की बारादरी थी, वहीं टिकीं। लेकिन वहां पहुँचने से पूर्व २७ फरवरी सन् १८५९ को कप्तान निरंजन मांझी नेपाल के राणा जंगबहादुर की चिट्ठी लेकर आये जिसमें यह लिखा था कि हमसे किसी प्रकार की आशा न रखिये और अंगरेज़ों से मेल कर लीजिये। मम्मू खां ने लिखा: "न हमें आपकी मदद चाहिये और न हम अंगरेज़ों से मेल

करेंगे।" इस पर राणा का उत्तर आया कि तब उधर से अंगरेज मारेंगे इधर से हम, और इसके बाद राणा ने इन लोगों का रसद पानी रुकवा दिया। परिस्थिति देखकर बेगम हज़रत महल ने समझदारी से काम लिया, वे पीनस में सवार होकर पहले अकेले नये कोट गईं। उनके पास जो अत्यन्त बहुमूल्य रत्नालंकार थे वे सुना जाता है कि नेपाल के राणा जंगबहादुर को भेंट में दिये। यह भी लिखकर दिया कि सिपाहियों ने मेरे बेटे को ज़बरदस्ती गद्दीनशीन कर दिया। मेरा और मेरे बेटे का अंग्रेजों से बैर नहीं।

परन्तु उन्होंने अंग्रेजों के बार-बार आग्रह कर उन्हें तथा नवाब बिरजीसक़दर को बुलाने और पूर्ववत् मान सम्मान और पेंशन देने के प्रस्ताव को ठुकरा कर नेपाल में शरणागत होकर रहने में अपना गौरव समझा। नेपाल राज की ओर से उन्होंने पाँच सौ रुपये महीना पेंशन भी लेना स्वीकार किया।

हज़रत महल ने काठमाण्डू में ही एक मकान ले लिया और साधारण जीवन बिताने लगीं।

सन् १८६९ ई० में वहीं उन्होंने अपने पुत्र नवाब बिरजीसक़दर का विवाह किया। दिल्ली के एक क्रांतिदलीय शाहज़ादे मिर्ज़ा दाऊद बेग़ भी नेपाल के शरणार्थी थे। उन्हीं की पुत्री मुख्तारुन्निसां बेगम हज़रतमहल की पुत्रवधू बनीं। हज़रतमहल ने उनका ससुराल का नाम महताब आरा बेगम रक्खा। बिरजीसक़दर के पौत्र मिर्ज़ा कौक़बक़दर ने मुझे बतलाया था कि विवाह के बाद बेगम साहबा ने अपनी पुत्रवधू को खुफ़िया तौर पर अपने श्वसुर नवाब वाजिदअली शाह का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये कलकत्ता भेजा था।

सन् १८७४ ई० में भारतीय क्रांति की यह अमर कान्तिमयी तारिका अपने बेटे बहू और पोते-पोतियों के परिवार को छोड़ नश्वर जगत से विदा हो गई। बेगम को दैव से ऐसा जीवन प्राप्त हुआ जो आरम्भ से अंत तक कटु अनुभवों की कहानी था; परन्तु उस कटुता के अन्दर से उन्होंने अपना जो व्यक्तित्व सौंदर्य निखारा वह सदा प्रशंसनीय माना जायगा। विद्रोही वही होता है जो अपनी कुण्ठाओं से जड़ीभूत नहीं हो जाता। विद्रोह जब सूझ-बूझ से संयुक्त होता है तो क्रांतिकारी विचार उदय होते हैं जो व्यक्ति को निरंतर अंधेरे में उजाला देते हैं। ऐसे व्यक्ति व्यक्तिगत जीवन में दुख भोगने वाले अभागे होकर भी सचमुच सौभाग्यशाली होते हैं—उनके द्वारा इतिहास पलटे जाते हैं।

काठमाण्डू की एक मस्जिद के क़ब्रिस्तान में हज़रतमहल के अस्थि-अवशेष विद्यमान हैं। उनकी अमर कीर्ति चारों दिशाओं में महक रही है।

बिरजीसक़दर के आठ संतानें हुईं—आग़ाजानी, हशमत आरा, शितवत आरा, बद्रक़दर, जमाल आरा, ख़ुरशीद कदर, हुस्नआरा और मेहर क़दर।

सन् १८८७ ई० में नवाब वाजिदअली शाह का कलकत्ते में देहान्त हो गया। नवाब वाजिदअली इतिहास से अधिक किंवदंतियों के नायक हैं। वे भले और भोले व्यक्ति थे। इसमें संदेह नहीं कि वाजिदअली और उनके बड़े भाई मुस्तफ़ाअली अंग्रेज़ों से आरम्भ से ही नाराज़ थे। मुस्तफ़ाअली शीघ्र उत्तेजित हो जाने वाले मुंहफट व्यक्ति थे, इसलिये अंग्रेज़ उन्हें गद्दी पर नहीं बिठलाना चाहते थे। वे असंतुलित मस्तिष्क के, राजमुकुट पहनने के अयोग्य ठहराये गये। वाजिदअली अपने भाई की अपेक्षा अधिक गंभीर थे। साहित्यिक और कलात्मक अभिरुचि के भी थे। नये-नये नृत्य के भावों पर रक्षिता नर्तकियों से प्रयोग करवाना, संगीत नाट्य खेलना उनका शौक़ था। आरंभ में, गद्दी मिलने पर उन्होंने अंग्रेज़ों से उलझने के बजाय अपने घर को सुव्यवस्थित करना उचित मान उसमें मन लगाया। फ़ौज की क़वायद आदि भी स्वयं करवाते थे। उर्दू के वयोवृद्ध लेखक श्री मुमताज़ हुसैन जौनपुरी ने हुसैनाबाद के पीछे गोमती किनारे का वह मैदान दिखलाया जहां वाजिदअली शाह क़वायद कराते थे। वे रसमग्न होने वाले व्यक्ति थे, अगर अंग्रेजों ने उनके राजकाज में हस्तक्षेप न किया होता तो वे शायद बड़े योग्य शासक सिद्ध होते। परन्तु जब उन्होंने यह देखा कि अंग्रेज भारतीय शासकों को कुछ भी नहीं करने देंगे और भारतीय शासक, वे स्वयं, अपने आसपास के वातावरण से विवश हैं तो फिर अपने दूसरे शौक़ को ही जीवन का ध्येय बना लिया और उसी में पूरी तरह डूब गये। वाजिदअली शाह लड़ाई झगड़े से दूर भागते थे, उनका मन कपट शून्य था। इसलिये जब तक वे जीवित रहे बिरजीसक़दर उनसे छिप कर मिलने भी न आ सके।

सन् १८९३ ई० में नेपाल में दरिद्रता और परायेपन से ऊब कर उन्होंने मक्का जाने का निश्चय किया और भारत सरकार से अपने राज्य से होकर गुज़र जाने क़ी अनुमति माँगी। वे दरअस्ल चाहते तो यह थे कि उन्हें भारत में रहने की आज्ञा मिल जाय, पेंशन भी वे स्वीकार कर लेना चाहते थे? परन्तु यदि यह सम्भव न हो तो बाहर चले जाना चाहते थे।

उनकी पत्नी नवाब महताबआरा बेगम पहले कलकत्ता आईं, अंग्रेज बहादुर

का रुख समझा तब बिरजीसक़दर सपरिवार कलकत्ता पहुँचे। उस समय उनके तीन बच्चे जीवित थे। पुत्री जमालआरा बेगम १८ वर्ष की थी, पुत्र खुरशीद क़दर १४ वर्ष के थे और पुत्री हुस्नआरा बेगम की आयु १२ वर्ष थी इनके अतिरिक्त नवाब महताबआरा बेगम उन दिनों गर्भवती भी थीं।

नवाब बिरजीसक़दर और उनके परिवार को अंग्रेज़ सरकार ने अपने सदर स्ट्रीट वाले मेहमानखाने में रक्खा। उसके बाद अपने चचेरे भाई सर मिर्ज़ा जहांक़दर की दावत पर अताबाग़ में रहने गये जो मटिया बुर्ज में है। बिरजीसक़दर सरकार से अपने उत्तराधिकार के संबन्ध में लिखा-पढ़ी चला रहे थे कि परिवार में इनके विरुद्ध षड्यंत्र हुआ। भोजन के लिये बुलाकर ज़हर दे दिया। १३ अगस्त, १८९३ ई० को नवाब बिरजीस क़दर, उनके बेटे खुरशीद क़दर, बड़ी बेटी जमालआरा बेगम एक साथ दुनियां से उठ गये। पत्नी महताब आरा बेगम और छोटी बेटी हुस्नआरा बेगम दावत में शरीक़ नहीं हुई थीं। घर में खाना भेजा गया था पर गर्भवती ने चिकनाई आदि खाना पसन्द न किया और बेटी भी टाल गई। उन्हें बचना था।

२७ दिसम्बर '९३ को पिता की मृत्यु के तीन-साढ़े तीन महीने बाद महताब-आरा बेगम की कोख से जाहिदअली मिर्ज़ा मेहरक़दर ने जन्म पाया, जिनके द्वारा बेगम हजरत महल का वंश आज चल रहा है। मेहर क़दर की बहन हुस्नआरा बेगम सन् १९४९ ई० में मरीं। मेहरक़दर विद्यमान हैं परन्तु लकवे से पीड़त हैं। उनके तीन पुत्र हैं : अंजुमक़दर रौशनअली मिर्जा, कौकब क़दर सज्जादअली मिर्जा तथा नैयरक़दर वासिफ़ अली मिर्ज़ा।

बेगम हजरतमहल की अन्य शेष स्मृतियों में उनके घर में अब केवल कुरान शरीफ़ की एक प्रति है जिसका वे अंतकाल में बहुत पारायण करती थीं तथा उनकी मोहर आदि कुछ अन्य सामग्री है।

क़त्ले आम

श्री रेजिनल्ड रेनॉल्ड्स ने अपनी पुस्तक "व्हाइट साहेब्ज इन इंडिया' ने १८५७ में प्रकाशित होने वाले जॉर्ज बरो के अंग्रेज़ी उपन्यास 'रमणी राय' के एक पात्र द्वारा कहलाई गई एक बात उद्धृत की है। उक्त उपन्यास के गोरे नायक से, सेना में भरती होकर हिन्दुस्तान जाने की प्रेरणा देते हुए कम्पनी बहादुर का रिक्रूटिंग

अफ़सर कहता है : "दुनिया का सबसे उम्दा देश है···उसमें ध्यान न देने लायक़ दुष्टों का निवास है···एकदम जंगली गिड़बिड़ ज़बान है उनकी······कम्पनी अपनी सेना के जवानों से बस यही सेवा चाहती है कि इन दुष्टों को ठोकरें मारो और काट डालो और उनसे उनके 'रुपये' छीन लो—यानी कि उनके चाँदी के सिक्के।"

यह सम्वाद अवध में जगह-जगह, लखनऊ नगर में हर स्वतंत्रता प्रेमी गाँव, जिले, नगर, क़स्बे में—अंग्रेज़ों द्वारा किये गये क़त्ले-आम के बर्बरतापूर्ण दृश्यों का रहस्य प्रकट कर देते हैं।

लखनऊ में अंग्रेज़ों के जीतने की ख़बर गली-गली फैलते देर न लगी। लोग यथासम्भव अपना-अपना माल-मता बाल-बच्चे लेकर घबराहट में जिधर सींग समाया भाग चले। चोरों-लुटेरों की बड़ी बन आई। जो शहर में रह गये उनकी दुर्दशा के दृश्य देख कर शायद भगवान् ने भी उस दिन आँखें मीच लीं। केवल सआदतगंज नाल दरवाज़ा, जहां महाजन रहते थे और चौक के महाजन जिनको छूट के परवाने मिले हुए थे, ही बचे, जितनी प्रजा उनके यहां शरण ले सकी वह बची—बाकी कोई गली, मुहल्ला, घर नहीं बचा जिसे गोरों, सिक्खों और नेपाल की सेनाओं ने न लूटा हो। पंडित देवीदत्त शुक्ल की पुस्तक के आधार पर यह विवरण लिखते हुए स्वयं मैं भी इस विवरण के सम्बन्ध में यह कह सकता हूँ कि बात सच है। मैंने बचपन में ग़दर की बातें अक्सर सुनी थीं। मेरी दादी इलाहाबाद की थीं, वे वहां की बातें सुनाती थीं; हमारे पड़ोस में एक वृद्धा रहा करती थीं, उनके मुँह से भी सुना कि सोंधी टोले और हट्टी राम की चढ़ाई पर और जाने कहाँ-कहाँ गोरे घोड़े पर सवार बंदूकें दागते आये थे। चौक में तीन जगह परवाने थे; सोंधी टोले में चतुरामल सेठ की हवेली, छोटी काली जी के मंदिर के सामने राय बिशम्भर नाथ काकाजी की हवेली और वृन्दावन के अपने मंदिर के कारण भारत प्रसिद्ध मिर्जामण्डी के शाह जी की कोठी पर। मेरे पितामह के मित्र स्व० राय गौरीनाथ काकाजी आनरेरी मैजिस्ट्रेट ने छोटी काली जी के मंदिर के पास रहने वाले एक वृद्ध सज्जन का बड़ा कारुणिक इतिहास सुनाया था : गोरों ने उनके दरवाजे तोड़ घर में घुसकर उन्हें और उनके पुत्र को दालान के खम्भों से बाँध दिया। स्त्री और एक लड़की कुँए में कूद पड़ी, पुत्रवधू अपने पति की गोली झेल कर सौभाग्यवती हो गई, पुत्र भी मारा गया; परन्तु पिता को भोग-भोगने थे, उनके शारीरिक घाव अच्छे हो गये किन्तु मन के घाव लेकर वे ग़दर के मेरे पूरे होश तक जीवित थे। वे गली के लोगों के विनोद की जिंस बन गये थे।

बाद उन्होंने चौक बाज़ार की सूरत नहीं देखी थी। उन्हें रोज़ सबेरे मिट्टी की बासी गुड़गुड़ी पर एक चिलम पीकर एक पैसे की नई गुड़गुड़ी ख़रीदने के लिये सात बजे घर से निकलना पड़ता था, एक फ़र्लांग जाने और आने में उन्हें ढाई तीन घण्टे लग जाते थे। वे घर से निकले और लोगों ने छेड़ा। कोई-कोई शुरू से ही लाला का मूड न बिगाड़ कर लाला से जैराम जी की करते। उत्तर मिलता। और दो-चार ठंडी-मीठी बातें करते, लाला भले-भले रहते; फिर पूछने वाला कहता: "बहुत दिनों से लाला चौक में नहीं देखा आपको ?" इतना कहते ही कहने वाला तुरंत बीस क़दम दूर भाग जाता था क्योंकि लाला फिर लाठियां पटकते, गालियां बकते थे। 'लाला चौक चलोगे' उनकी चिढ़ थी, कहने वालों को अंग्रेजों को क़दम-क़दम पर गालियां सुनाते उनकी साँस फूल-फूल उठती थी। लाला ने अपने खण्डहर घर की हर कोठरी, दालान और छतें अपनी नित्य की गुड़गुड़ियों से पाट रक्खी थीं।

बड़ी मनमानी हुई। हज़रत अब्बास की दरगाह में कई सौ पर्दानशीन औरतें जा छिपी थीं। गोरों ने इनके साथ बड़ा अत्याचार किया। बाद को कोनिया साहब ने सबको एक-एक रुपया दे, डोलियों पर बिठला कर भेज दिया। कई सौ धोबी वहां जमा थे, वे लुटे, दरगाह का सारा सामान लुटा। सोने के अलम महाजनों ने गोरों से रुपये तोले के हिसाब से ख़रीदे। दरगाह का ख़ास अलम तेरह सेर सोने का था। लखनऊ की लूट से अंग्रेज़ों ने विलायत में अपने पैतृक ऋण चुकाये, जायदादें ख़रीदी।

और यहां के प्रमुख व्यक्तियों में शरफ़द्दौला इब्राहीम खां बेचारे छब्बे बनने चले और दुबे भी न रहे। बेगम की हार के बाद उनके साथ न गये, उनके घर ठहरीं तो कहा सब जानते हैं कि मैं अंग्रेज़-परस्त हो गया हूँ। उधर अंग्रेज़ों की चिट्ठियां आईं तो जवाब नदारद। वे जाने क्या सोच रहे थे। अंत में तिलंगों के हाथ बुरी मौत मरे।

मम्मू खां धोखा देकर नेपाल से पकड़वा मँगाये गये। उन पर मुक़द्दमा चला। अपने बचाव में उन्होंने अंग्रेज़ों की चिट्ठियां पेश कीं और कहा कि क़ैसरबाग़ में जो अंग्रेज़ बंदी बच गये वे मेरे ही हुक्म से बचे। कई महीने मुक़द्दमा चला फिर फाँसी का आदेश हुआ। अपील करने पर काला पानी जाने की रिआयत हुई। अंडमन में मम्मूखां ने अपने निर्वाह के लिये दूकान कर ली। वहीं उनकी मृत्यु हुई।

राजा जयलाल सिंह नुसरतजंग जो लखनऊ में अधिकतर राजा जियालाल के नाम से प्रसिद्ध हैं कायस्थ थे। वे राजा दर्शन सिंह ग़ालिबजंग के पुत्र थे। वे

अपने समय के बड़े योग्य शासक माने जाते थे। उन्हें शाही में कलक्टरी का पद मिला था। सरकार बिरजीसी में भी उनका बड़ा मान था, फ़ौजी पंचायत भी उनका आदर करती थी। २४ सितंबर १८५७ के अंग्रेज़-वध के अपराध में उन्हें १ अक्टूबर १८५८ को उसी जगह फाँसी दी गयी जहां ओर साहब का वध किया गया था। राजा जयलाल सिंह नुसरतजंग ने अपने हाथ से फाँसी का फंदा अपने गले में डाला और वतन के नाम पर हंसते-हंसते शहीद हुए।

अवध के अन्य ज्ञात-अज्ञात शहीदों तथा अवसरवादियों का इतिहास यहां छोड़ रहा हूँ। उनके प्रति किसी प्रकार की अवज्ञा का भाव मुझमें नहीं, जिस धारा को देख रहा था उसे अब अपने अन्तर में पा गया हूँ। केवल एक बात को लेकर प्रकट में विचार करने की इच्छा होती है; नेपाल में बेगम ने बयान देकर ग़दर का सारा भार सिपाहियों पर डाल अपने को तथा अपने बेटे को बेलाग कर लिया। उस बयान से बात की शक्ल ये हो गई कि बिरजीसक़दर और बेगम ने सिपाहियों के भय से ग़दर में भाग लिया था। यदि बिरजीसक़दर की संरक्षिका होकर बेगम चुपचाप बैठी रहतीं तो यह अवश्य कहा जा सकता था कि राजमाता और उनका बेटा सिपाहियों की बंदूकों से घिरकर उसकी मर्जी के अनुसार काम कर रहे थे। वस्तुतः ऐसी बात नजर नहीं आती। सिपाहियों का आतंक अवश्य था फिर भी बेगम उनके बीच में कभी व्यक्तित्वहीना कंगाल होकर नहीं रहीं। बेगम का नेपाल वाला बयान उनके क्रांति से संबंधित पूर्व इतिहास को छिपा नहीं सकता। मल्का विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के उत्तर में उनका ऐलान इतिहास की एक बेमिसाल शानदार घटना है। उससे बेगम का चरित्र बहुत ऊँचा उठता है; परन्तु उसके बाद यह बयान उन्हें उसी प्रकार गिराता भी है. बेगम का ये रुख़ यह देख कर और भी बुरा लगता है कि नानाराव पेशवा ने नेपाल से ही सर होप ग्रान्ट को बड़ा शानदार पत्र लिखा था। उन्होंने लिखा कि "आपको हिन्दुस्तान पर अधिकार करने का तथा मुझे दण्डनीय घोषित करने का हक़ ही क्या है? हिन्दुस्तान पर राज करने का अधिकार आपको किसने दिया? क्या आप फ़िरंगी लोग बादशाह हैं और हम अपने ही देश के अंदर चोर हैं?" नाना के इस उत्तर से भी क्या बेगम को प्रेरणा नहीं मिली होगी? मेरी समझ में बेगम हज़रत महल या तो एकलौते बेटे के मोहवश अथवा छिपे तौर पर वाजिदअली शाह का कोई संदेश पाकर इस प्रकार पीछे हट गईं। उनका अकेले नये कोट जाकर नेपाल के कप्तान निरंजन माझी से बातें करना और तत्पश्चात् इस प्रकार का पत्र लिखकर देना

अपने पीछे की किसी छिपी कहानी का संकेत देता है। ये लोग नेपाल से कलकत्ते पर हमला करने वाले थे ; नेपाल की घरेलू राजनीति भी उस समय मज़बूत आधार पर नहीं थी, राणा जंगबहादुर को स्वयं अपनी ही सेना में विद्रोह नजर आ रहा था। ऐसे समय में बेगम को तोड़ने के लिये सम्भवतः वह धमकी दी गई हो कि कलकत्ते पर हमला करते ही वाजिदअली शाह और बिरजीसक़दर मार डाले जायेंगे—और यह धमकी काम कर गई हो। आखिरकार बेगम स्त्री थी और दुखियारी माँ थी। फिर भी यह दाग़ लगने के बावजूद बेगम हज़रत महल का स्थान इतिहास में सदा गौरव के साथ सुरक्षित रहेगा।

गदर में दूसरी मार्के की बात यह दिखलाई देती है कि उसके प्रमुख नेताओं में एक ओर जहां अस्सी वर्ष के कुँवर सिंह, साठ-पैंसठ के राणा बेणीमाधव, मौलवी साहब, बहादुरशाह 'ज़फ़र,' तात्या आदि बड़े बूढ़े थे वहां ही अठारह वर्ष के बलभद्र सिंह, बाईस वर्ष की लक्ष्मीबाई, छब्बीस-सत्ताइस वर्ष की हज़रत महल और तेंतीस वर्ष के नाना साहब आदि ताज़े खून वाले नौजवान भी थे।

गदर में इस प्रकार हम देखते हैं कि वे तमाम खूबियां जो किसी भी राष्ट्र को ऊँचा उठा सकती हैं, हमें भी बहुत बल दे रही थीं। अस्सी वर्ष का वृद्ध हो अथवा अठारह वर्ष का नवयुवक, दोनों एक ही महाभाव से बंधे, एक ही उद्देश्य के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर रहे थे।

हमने भारतीय इतिहास की एक यह विशेषता भी पहचानी कि बाहरी शत्रु का दबाव पड़ने पर देश संगठित हो उठने का प्रयत्न बराबर करता है, परन्तु वह संगठन कभी पूरी तौर पर स्थायी नहीं हो पाता। यह अजीब बात है कि सांस्कृतिक रूप से भारत सदा से सुसंगठित है। व्यापार की दृष्टि से भी देश की एक-सूत्रता स्वयंसिद्ध है, और यह काफ़ी पुराने ज़माने से चली आ रही है। अपेक्षाकृत काफ़ी नये ज़माने यानी शेरशाह सूरी के समय में 'ग्राण्ड ट्रंक रोड' का बनना इसी एक-सूत्रता का परिचय देता है। परन्तु सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से जुड़े रहने के बावजूद राजनैतिक दृष्टि से हम आपस में कटे-कटे रहे। जब-जब ऐतिहासिक परिस्थितिवश भारत में विशाल साम्राज्य स्थापित हुए तब-तब किसी बाहरी शत्रु की हमला करने की हिम्मत न हुई। और इसीलिये मैं सोचता हूँ कि भारत की फूट का कारण मुख्य रूप से उसके राजे, सामन्त ही रहे हैं। इनके राजसी जोम ने ही देश को एक राजनैतिक राष्ट्र के रूप में कभी पनपने न दिया और परस्पर में फूटे हुए राजे सामन्त किसी बड़े उद्देश्य के अभाव में केवल व्यक्तिगत सुख और

वैभव लाभ करने की चिन्ता में ही रह गये। इससे देश की आम जनता और व्यापारी वर्ग पर बराबर अत्याचार भी होते रहे। यह राजसी जोम ही जाति-पाँति की छोटाई-बड़ाई की समस्या और तरह-तरह के षड्यन्त्र, अत्याचार, उत्पात बढ़ाता रहा। हमारा देश किसी एक नीति पर नहीं चल पाया, जहां राजा सामन्त भला और प्रजापालक रहा वहां तो ठीक-ठीक चला लेकिन जिस क्षेत्र को ऐसा सौभाग्य न मिला वह तबाह होता रहा। अंग्रेज़ों के आने से पहले अन्तिम साम्राज्य मुग़ल सम्राट अकबर द्वारा स्थापित हुआ और औरंगज़ेब के जीवनकाल में ही वह छिन्न-भिन्न भी होने लगा। १८५७ ई० में इसी छिन्न-भिन्नता, अराजकता और अशांति से उत्पन्न हुई कुण्ठा संगठन के लाख प्रयत्नों के बावजूद देश को जड़ीभूत करती रही थी।

यह भी मार्के की बात है कि अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़ने के लिये सबसे पहले सिपाही उठे। सामन्तगण सिपाहियों के कारण ही संघबद्ध हुए थे। यह सिपाही संगठन ही देश में नये युग के आने का परिचय देता है। सिपाही आखिरकार हमारी आम जनता के ही प्रतिनिधि तो थे। और इसीलिये जब हमारे राजे-सामन्त हार गये तब भी जनसाधारण एकाएक चुप होकर न बैठ सका। लखनऊ, उसके आस-पास और अवध में सन् १८५९ ई० तक अंग्रेज़ों के खिलाफ हो-हल्ले उठते ही रहे।

एक बात यह भी विचारणीय है कि क्या ग़दर होने का प्रमुखतम कारण धर्म—मज़हब ही था? मैं तो समझता हूँ कि अंग्रेज़ों के खिलाफ़ हमारी शिकायतों का यह एक बहाना मात्र था। जिन चरबी के कारतूसों के कारण ग़दर होना बतलाया जाता है वे कारतूस ही भारतीयों के द्वारा अंग्रेज़ों के खिलाफ इस्तेमाल किये गये। ब्राह्मण सिपाहियों तक ने आपद्धर्म कहकर चर्बीहे कारतूस मुंह से काटे और शत्रु अंग्रेज़ों को मारा। मेरी दृष्टि में यह बड़ी बात है—बड़ा धर्म है।

अपनी कमजोरियों पर सतर्क दृष्टि रखते हुए भी मैं सत्तावनी क्रान्ति में अपने पुरखों की खूबियों पर मुग्ध हूँ। सन् ५७-५८ में एक नये सिरे से बनते हुए राष्ट्र की परम्परागत रूढ़ कमज़ोरियां हारीं—हमारी परम्परागत प्रगतिशील निष्ठा और शक्ति तो उस अग्नि-परीक्षा से विजयिनी सिद्ध होकर ही निकलीं और गदर के बाद के भारत को नया रूप देने में समर्थ सिद्ध हुईं।

जो हो, युद्ध में स्वपक्ष के गौरव से भरकर भी युद्ध के दृश्यों से घृणा होती है। इन्सान के पिछले अनुभव यदि भविष्य में युद्धों की सम्भावना को समाप्त कर

दें, तो मानव सभ्यता में निस्सन्देह एक अभूतपूर्व क्रान्ति आ जायगी। परन्तु जब तक दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं होता तब तक देश पर संकट पड़ने पर कायर बनकर कुत्ते-बिल्ली की मौत मरने के बजाय हमें मृत्यु के उस रूप को ही सराहना है जिसे हमारे वीर पुरुषाओं ने आत्म-बलिदानों से परम तेजस्वी बनाया है। देश पर मर मिटनेवाले वीरों के संस्मरणों से प्रेरणा लेकर आगे बढ़नेवाले भारत देश को अपना सिर कदापि न झुकाना पड़ेगा, वीरों की गाथा और पिछले अनुभव हमारे लिये रक्षा कवच बनेंगे। एवमस्तु।

बन्दौं भरत भूमि अति पावन।

परिशिष्ट

(श्री इंतज़ाम उल्ला शहाबी द्वारा संकलित पुस्तक से साभार)

बेगमात-ए-अवध के ख़ुतूत

वाजिदअली शाह तथा उनकी बेगमों के वे पत्र और पत्रांश जिनसे संघर्ष-कालीन लखनऊ के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

बेगमों के पास खबरें नौकरों-बाँदियों की प्रेस-ट्रस्ट से आती थीं लिहाज़ा उनके खतों में लखनऊ की सत्तावनी सूचनायें कुछ उलट-पलट कर भी आई हैं, कहीं ग़लत समाचार भी मिलता है। यह सब होते हुए भी ये पत्र उस समय की तसवीर पेश करने में बड़ी मदद देते हैं। सौतों की आपसी जलन के चित्र, वाजिद-अली शाह की मनोभावनाएं, रोमानियत का बहाव—इन ऐतिहासिक पत्रों की विशेषता बन गई है।

[शैंदा बेगम को भेजा गया खास महल का पत्र, २९ रमज़ान, १२७१ हिजरी।]

तूतिये शीरीं, तक़रीरे चमन, मूदते बुलबुल, खुशनबीद गुलशन, उल्फ़ते ग़ुंचा, मक़सद तुम्हारा हमेशा शगुफ्ता रहे।

इस गर्दिशे इफ़राक़ से फूले न फले हम।
ज्यों सब्ज़ा रौंदे उगते ही पाँवों के तले हम।

बहन शैंदा बेगम, मेराजी की २९ तारीख सन् १२७१ हिजरी पँजशंबे का दिन उम्र भर न भूलेगा जबकि सुल्ताने आलम को जनरल औटरम साहब ने बाप-दादा की सल्तनत छोड़ने और हुकूमत से दस्तबरदार होने का हुक्म दिया और लखनऊ से हम लोग जुदा हुए, जैसे बुलबुल गुलशन से छुटी, यूसुफ़ मिस्र से निकले, ब्रू ये गुल चमन से जुदा हुई। पिया जाने आलम का सुकूत और तमाम अमले का हसरत भरी निगाह से देखकर बेकसी के आँसू बहाना, कमाले अदब से रूमाल में ग़म के मोतियों को समोना, अइज्ज़ा को हिचकियाँ लगी हुई थीं। हम आखिरश महरात में मातम बपा क़रते हुए सुल्ताने आलम के हमराह रवाना हुए। उस वक्त

जाने आलम का यह कहना, "तुम पर दस बरस तक मैंने सल्तनत की, इस अरसे में जो कुछ सदमा और रंज मेरी जान से तुम को पहुँचा हो उसको बखुशी माफ़ कर दो। इस वक्त मै माजूर हूं और तुम से छुटता हूं, ख़ुदा जाने ज़िन्दगी में फिर मिलूँ या न मिलूँ।" बहन इस जुमले से, तुम्हें याद है, मजमे को मजलिसे मातम बना दिया। हज़रत मुनव्वरुद्दौला अहमद अली खां ने कहा "सरकार ऐसे वक्त में ग़ुलाम को कदमों से जुदा तो न करो।" सुल्ताने आलम खामोश हो गये। हुजूर मल्का किश्वर आरा बेगम साहब और भैया सिकंदर हश्मत सरमहू और लख्ते जिगर नूरे-नजर वलीअहद बहादुर सरमहू और चार सरकार की खादिमा हम-राह थीं। रजब की पाँचवीं को लखनऊ से चले थे। कानपुर पहुँचे तब रोते हुये बुरा हाल हुआ। पलवन साहब के बंगले में हम लोग मुक़ीम हुए। रजब भर महीना वहीं बीता। शाबान की पहली को रुखसत हुये। आठ दिन वहाँ ठहरे फिर बनारस आए। राजा पुराना नमकख्वार था। अपनी-सी उसने अच्छी खिदमत की। रानियाँ हुजूर मल्का की बहुत तवाजह करती थीं। हर वक्त हाथ बांधे चाकरी में खड़ी रहती थीं। मुझ मग़मूम की पूछ भी बहुत थी। मैं हर वक्त सुल्ताने आलम की दिलजोई में लगी रहती। इनका बातों में दिल बहलाती मगर वे ग़म से निढाल थे। मैं वारी जाऊं, ये हाल देख मेरा जी कुढ़ता था। बनारस से दहक़ानी जहाज पर सवार हुए। रमज़ान की २७ को कलकत्ते हमारा क़ाफिला पहुँचा। सब पर थकान का असर था। इस वक्त तुमको रास्ते की मुख्तसिर कैफियत लिख रही हूं, तुम भी लिखना हमारे पीछे क्या बीती।

* * *

[जानेजां बेगम का खत बनाम सरफ़राज़ बेगम साहब १६ शव्वाल १२७२ हिजरी। इस पत्र द्वारा वाजिदअली शाह की माता के लंदन प्रयाण का विवरण तथा मल्का विक्टोरिया के लिये भेजे गये उपहारों की सूची मिलती है।]

शहर से दिल उचाट है,
उन्स नहीं उजाड़ से।
फोड़ें सर को ऐ जुनू,
कौन से अब पहाड़ से।,

तकदीर में शबे हिज्र से ज्यादा रोजे सियह दिखाये, फ़राकत के फन्दे से कभी छुटने न पाये। जिगर में खंजरे मिज़गाँ की काविश है, आँखों में खूने नाब की हरदम तराविश है। कुछ हाल यहाँ का लिखती हूँ। जनाबे आलिया

के साथ विलायत जाने के लिये ११० आदमी सब जकूरोकुनास तजवीज हुए। मौलवी मुहम्मद मसीहउद्दीन खां सफ़े शाही उनकी पेशी में मीर मुहम्मद रफ़ी मुकर्रर हुये। हाजी अल हरमैन, शेख मुहम्मद अली वायज व जाकर रफ़ीके खास जनरल साहब वजरिसुलद्दौला मुसाहब मिर्ज़ा वली अहद बहादुर को दस हजार रुपया इखराजात के लिये दिये गये। जनाब मल्का मुअज्ज़मा दाम इक़बालहू के वास्ते एक हार अलमास का जिसका वजन तीन सेर, दूसरा हार याकूत का, जमुर्रुद की कंघी, परचये अलमास बहुत से, मारये मलवाईद और अँगूठियाँ और पेशवाज बहुत तकल्लुफ की ३२ हजार रुपये की तैयार की हुई एक नामा शाही मुतजम्मिने हार खुद जनाब मल्कये दौरां और मुख़्तार नामा ज़र्री व किरी सुपुर्द जनाब आलिया के हुआ। आखिर इस्तखारा जाते रुक़्क़ा साथ लिया। पांच रुक्क़े निकले। १४ शव्वाल रोज सशंबा सन् १२७२ हिजरी, १२ बजे रात को जनाब आलिया सवार हुईं। वक्तेरुख्सत अजीब हश्रो-नश्र महर से बरपा हुआ, नारये अलफ़िराक़ व अलविदा मुखज़्ज़िरात उस पर्दये शब में महीते कररये आलम हुआ। हरएक की आंख से मुसल्सल दुर्रे-अश्क बह रहे थे। सुबह जहाज़ ने लंगर उठाया। ज़ेरे कोठी शाही गुज़रा। बादशाह सुल्ताने आलम फ़र्ते बेक़रारी से बरामदे में खड़े हुए। जनरल साहब ने व मिर्ज़ा वली अहद ने आदाबोसलाम बादशाह से किए। खुदा हाफ़िज़ कह के रुखसत किया। सब लोगों को अजीब सदमये रूहानी हुआ। मैने ग़म में दो वक्त खाना नहीं खाया। जाने आलम ने कहा भी मगर मैं रोती रही। जो हाल पुर मलाल हम पर गुज़रा वो तुमको लिख दिया।

रुख्सते सैरे बाग़ भी न हुई।
यूँ ही जाती रही बहार अफ़सोस॥

* * *

[नबाब मुन्नाजान के नाम वाजिदअली शाह का पत्र, २२ रजब, १२७३ हिजरी]

हम हैं कलकत्ते में और आलमे तनहाई है!

जानेमन राहतेजां, दिलेसंदल दर्दे सर मुजमहल, बाइसे आबादी, शहरे आशिका, बहारे रियाज व चमनिस्तान, मुन्नाजान तफ़रीह बख्श गुंचये ख़ातिर अख्तरे मुज्तर रहो। ख़त तुम्हारा दिल से अज़ीज़ जान से प्यारा बस्त वीकम शहर हाल मार्फ़त कन्ज़रुद्दौला बहादुर के करीदे कुफ्ल मसर्रत हुआ। अहले शहर की

बेकरारियां मालूम हुईं। इनकी ईज़ायें सब मफ़ऊम हुईं। वल्लाह जाने जां, इनसे ज्यादा बेकरार हूँ। घर छोड़ा इनके लिये साकिनों यार निक्बत आसार हूँ। आगे जो मुक़द्दर ज्यादा हसरत हमाग़ोशी।

*   *   *

[नवाब फ़रख़न्दा महल का ख़त जाने आलम के नाम सन् १२७३ हिजरी।]

आप वो चेहरये रौशन जो दिखादें बख़ुदा।
बेक़रारी दिले बेताब हरगिज़ न रहे ॥

मेहरो गुलज़ार, रैनाइये तदूर, कोहसारे बेवफाई यज़ाद-उल-हुस्नऊ! यहां का अजीब हाल है। दिन दूनी रात बद अहवाल है। लखनऊ में ताज़ा रूहदाद हुई जिससे तबीयत कुछ-कुछ शाद हुई। आठवीं को इस महीने की यकशंबा दोपहर से फ़ौजे फिरंगी तकसीम पर कारतूसों के बिगड़ गई। जंगोजदल की ठहर गई। सब फ़ौज मूसाबाग़ में ईसाइयों के कत्ल को यकजा हुई। अव्वल हैबतों पर हैबत ग़ालिबेसिवा हुई। कितना मलदेमा फ़ौज को समझाया लेकिन लोगों के खयाल में न आया। आखिर इन अहमक़ों ने कई सौ योरोपियन निकाले और क़रीब शाम क़त्ल की सिम्त को रवाना किया। ऐशबाग़ में १५०० आदमी जमा हो चुके थे। वक्ते तहरीर अब तक मजमा बहुत कसीर है। उलमाये आलम मुहम्मदी उठाने को हैं। देखिए क्या होती इसकी आख़िर है। बेढब हुआ ये बिगाड़ है। अब तो ईसाइयों को मूसाबाग़ जाना पहाड़ है। इत्तिलान लिखा है, आगाह तुमको किया है, और ऐ जाने आलम, मालूम नहीं यहां के अख़बार हररोज़ तुमको मुताले से गुज़रते हैं या अहलकार पोशीदा करते हैं—जैसा हो वैसा लिखो। हम यहां से तहरीर क्या करें ? अखबार और हाल मुफ़स्सिल तहरीर करें। इजहार आप की चहीती नवाब सरफ़राज़ बेगम भी यहां के हाल से आपको आगाह कर रही हैं।

*   *   *

[जाने आलम वाजिद अली शाह का ख़त बनाम शैदा बेगम साहबा]

मर्ग सूझे हैं आजकल मुझको।
बेकली से नहीं है कल मुझको ॥

मेहरे सिपहर, बेवफ़ाइये माह समाये-दिलरुबाई, गौहरे ताज, आश्नाइये जौहर, शमशीरे यकता, हमेशा खुश रहो।

मालूम हो गया हमें लैलो निहार से।
एक वज़ा पर नहीं है ज़माने का तूर आह ॥

मालूम हुआ अवध में कुछ बलवाई लोग जमा हुये हैं और सरकार अंग्रेजी के खिलाफ हो गये हैं। कम्बख्तों से कहो, हम चुपचाप चले आये तुम लोग काहे को दंगा मचा रहे हो ? मैं यहां बहुत बीमार था। सफरा की तिब ने दिक़ कर दिया था। आखिर तबरीद के बाद सेहत हुई। जिस क़दर नज़रो नियाज मानी थी की गई। जल्सा रात भर रहा, नाच गाना होता ही रहा। कोई चार घड़ी रात बाक़ी थी, गुल पुकार होने लगा। हम ग़फ़लत में पड़े थे। आँख खुलते ही हक्का-बक्का रह गये। देखा कि अंग्रेज़ी फ़ौज मौज दर मौज टिड्डी दल चारों तरफ़ से आ गई। मैंने पूछा ये क्या गुल है ? इन में से एक ने कहा अली नक़ी क़ैद हो गये। मुझको गुस्ल की हाजत थी। मैं तो हम्माम में चला गया। नहा कर फ़ारिग़ हुआ कि लाट साहब के सेक्रेटरी ओंमग़टम साहब (?) हाज़िर हुए, और कहने लगे, मेरे साथ चलिए। मैंने कहा आखिर कुछ सबब बताओ। कहने लगे गवरमेन्ट को कुछ शुब्हा हो गया है। मैंने कहा मेरी तरफ़ से शुबह बेकार है। मैं तो खुद ही झगड़ों से दूर भागता हूँ। इस कश्तो खून और खल्के खुदा के क़त्लो ग़ारत के सबब से तो मैंने सल्तनत से हाथ उठा लिया। मैं भला अब कलकत्ते में क्या फ़साद करवा सकता हूँ ? उन्होंने कहा मैं सिर्फ़ इतना जानता हूँ कि कुछ लोग सल्तनत के शरीक हो कर फ़साद फैलाना चाहते हैं। मैंने कहा, अच्छा अगर इन्तज़ाम करना है तो मेरे चलने की क्या जरूरत है, मेरे ही मकान पर फ़ौज मुक़र्रर कर दो। उन्होंने कहा मुझको जैसा हुक्म मिला है वह मैंने अर्ज़ कर दिया। मैंने कहा, फिर आख़िर मैं साथ-साथ चलने पर तैयार हूँ। मेरे रिफ्का भी चलने पर तैयार हैं। सेक्रेटरी साहब ने कहा सिर्फ़ आठ आदमी आपके हमराह चल सकते हैं। फूफा मुजाहिदुद्दौला, जिहानतुद्दौला सेक्रेटरी साहब और मैं एक बग्घी में सवार होकर किले में आये और क़ैद कर लिये गये। मेरे साथियों में जुल्फ़िकारुद्दौला, फ़तेहुद्दौला, खजाँची काज़िम अली, सवार बाक़रअली हैदर खाँ 'कूल', सर्दार जमालुद्दीन चपरासी, शेख इमाम अली हुक्के बरदार, अमीर बेग ख़वास, वली मुहम्मद मेहतर, मुहम्मद शेर खां गोलन्दाज, करीमबख्श सक्क़ा, हाजी क़ादर बख्श कहार, इमामी गाड़ी पोंछने वाला—ये क़दीम मुलाजिम नमकख्वार थे। ज़बरदस्ती क़ैदखाने में आ गये। राहते सुल्ताना खासा बरदार, हुसैनी गिलौरी वाली, मुहम्मदी खानम मुग़लानी, तबीबुद्दौला हकीम भी साथ आया। देखा-देखी आया था, घबरा गया और कहने लगा खुदा इस मुसीबत से जल्द निजात दे। मैंने बहुत कुछ हक़ जताये कि तुमको बीस बरस पाला है मगर

फिर भी वो अपनी जान छुड़ा कर भाग गया। जिस क़िले में हम क़ैद किये गये थे, उसको क़ली-ये-बाब कहते हैं। ये खत 'करबलाई' आबखासा बरदार के भाई के साथ भेज रहा हूँ।

हुआ है अब तो ये नक्शा तेरे बीमारे हिज्राँ का।
कि जिसने खोल कर मुँह उसका देखा बस वहीं ढांका ॥

* * *

[शैंदा बेगम का खत जाने जाने आलम के नाम--तारीख २६ जमादुर-आखिर सन् १२७३ हिजरी।]

हामिये रिआया, नासिर बर आया, तुम पर खुदा का साया, इश्तियाक़ नामा १७वीं का लिखा हुआ ऐन इन्तज़ार में आया। हमने देखते ही आँखो से लगाया, कलेजा मुँह को आया। असीर ने पढ़ कर सुनाया। जुदाई ने वो सदमा दिखाया ग़म ने ऐसा रुलाया कि खून आँखों ने बरसाया। पीरे फ़लक ने अजीब रंग दिखाया। आप कहीं हैं और हम कहीं। खुदा जल्द मुसीबत टाले। तुम्हारी सूरत रश्के खुरशीद दिखलाये, यानी तुमको हमसे मिलाये। सबबे तरद्दुद जाये। दिल को तस्कीन आये। रक़ीयाबानो बेगम को जुकाम है।

(नोट : ऐन हङ्गामे के दिनों में, पत्र की सबसे बड़ी सूचना के तौर पर रक़ीयाबानो बेगम का जुकाम भी बतौर नमूना पेश है।)

* * *

[शैंदा बेगम का खत बनाम जाने आलम।]

सोज़े तपे फ़ुरक़त से अजब रंग हैं दिल के।
तहरीर नहीं होते हैं जो ढंग हैं दिल के ॥

आशनाये दरियाये मुआनिसत, इखराशे सनावर, कुलज़ुमे मसादिक़त, मिर्ज़ा जाने आलम बल्कि जाने जहां से बढ़कर सुल्ताने आलम, यज़ीदुल्लाह लुत्फहू।

तेरे फ़िराक़ में क्यों कर ये दर्दनाक जिये।
मरे तो मर नहीं सकता जिये तो खाक जिये ॥

चर्खे नाहंज़ार मुस्तइद आज़ार है, कोई मूनिस है न गमख्वार है। ज़िन्दगी से यास है, जीने की किसे आस है। दिल में दर्द है, आहे सर्द है। सीना मातम सरा है, जिस्म खुश्क, जिगर हरा है। जोशे वहशत की शिद्दत है, जीने से जी बेज़ार दुनिया से नफ़रत है।

काश के दो दिल भी होते इश्क़ में।
एक रखते एक खोते इश्क़ में ॥

पिया जाने आलम, जब से आप लखनऊ से सिधारे ख्वाब हराम है। रोना धोना मुदाम है। यहाँ शबोरोज़ आहोबुकां में गुजरती हैं, मगर दूसरी मेरी हमजिन्सें खुश-खुश इठलाती फिरती हैं। आपके बाद से फ़िरंगियों के खिलाफ़ ज़हर उगला जा रहा है। नई नई बातें सुनने में आ रही हैं। दिल को हौल है कि देखिये फ़लक़ क्या क्या रंग दिखलाता है। घासमंडी में मौलवियों का जमाव है। सुना है एक सूफ़ी अहमदुल्ला शाह आये हुए हैं। नवाब चीनाटीन के साहबज़ादे कहलाते हैं। आगरे से आये हैं। ये भी सुना है कि उनके हज़ारहां मुरीद हैं और वो पालकी में निकलते हैं। आगे डंका बजता होता है, पीछे अज़दहां बड़ा होता है। वहशतेनाक ख़बरों की गर्म बाज़ारी है। सरकार सुल्ताने आलम अब आप अपना हाल लिखिये। दिल को शाद काम कीजिये।

*　　　*　　　*

[जाने आलम का जवाब शैदा बेगम को, तारीख १० रजब सन् १२७३ हिजरी।]

जानेजां, जाने आलम नवाब शैदा बेगम साहबा हुस्नहा व जमालहा। दो तशफ़िये नामे तुम्हारे अंजमुलदौला बहादुर ने नवीं रजब को लाकर दिखाये। दिल शाद हुआ। तबीयत में क़ूवत आई। जान ताज़ा पाई। मगर ऐ जानी, अब हम वो नहीं रहे। हम अपना हाल लिखते हैं। इससे मालूम होगा कि हम पर क्या गुज़र रही है। इश्को-आशिकी सब मफ़कूद है। रंज ने हालत तबाह की। हम क़िले फ़ोर्ट विलियम में नज़रबन्द हैं। लार्ड रंग (?) का मेरे पास खत भी आया कि अफ़सरान आपके एज़ाज़ में फ़र्क़ न करेंगे। मगर मेरी ज़िन्दगी दुश्वार हो रही है। आठ दिन बाद, क़िले में एक कोठी है उसमें आये। अब सिर्फ २३ आदमी हमराह हैं। परिन्दा तक पर नहीं मार सकता। क़ैदखाने के दरवाज़े बन्द कर लिये गये। हमारा दम घुटता है। मुजाहिदुद्दौला मिर्ज़ा ज़ैनुलआब्दीन, दियानत दौला, मुत्तदीनुलमुल्क मुहम्मद मोतमिद अली ख़ां, अमानते जंग कुमेदान हरवक्त परवानावार जांनिसार थे। फ़तेहुद्दौला बख्शिये मुल्क ज़ईफ़ी के सबब चिराग़े सहरी थे। वे २८ सफ़र सन् १२७३ हि० को हमसे रुखसत हो गये। हमको फ़ुरकत में छोड़कर खुद राही जन्नत बन गये। मोहतमिमदौला बहादुर और जुल्फ़िक़ारुद्दौला सैयद मुहम्मद सज्ज़ाद अली खां रिसालुद्दार हर वक्त़ शरीक़े रंजोग़म थे। आखिर मुसीबत-ओ-तकलीफ़ से आजिज़ आकर उकता कर मुझसे भी जुदा होना शुरू किया। पहले दियानतदौला ने कौंसल से इत्तिलात आरियात जाने की इजाजत

ली मगर इजाज़त मिलते ही क़िले से चल दिया। अब मोहतमिमदौला ने पागल बनकर हर एक को गालियां दी और मार पीट करने लगा। आख़िर निकाला गया। मुहम्मद शेर खां ने गोलन्दाज़ ने बाक़रअली की नाक काटी इसके बाद उसको सज़ा हो गई। जेल गया। करीम बख़्श सक्क़ा तपेदिक में मुब्तिला हुआ, तब मैं जाने से अजीरन हो गया।

* * *

[वाजिद अली शाह का पत्र किसी गुमनाम बेगम के नाम।]

आश्नाये दरयाये आशनाई, शनावर बहरे दिलरुबाई, गौहरे अकीर रिफ़ाकते जौहर, जमीले सदाक़त, महबूबये दिलनवाज़, यगीदुल्लाह मुज्दहू,—

फ़लक़ ने तो इतना हँसाया न था,
कि जिसके एवज़ यूं रुलाने लगा।

तुम्हारा मुहब्बतनामा बदस्त मुहम्मद जान चोबदार से मिला। हम लोग अभी कलकत्ते में मुकीम हैं। अइज्ज़ा की जुदाई, सल्तनत जाने का सदमा, शहरोदयार का छुटना, १४ शव्वाल को जनाब वालिदा और वली अहद बहादुर और भाई को लन्दन रवाना करना, अब सिर्फ़ नवाब ख़ास महल और चार बीवियां रह गईं। अभी अभी नवाब अलीनक़ी खां और मुनव्वरुदौला मेरे पास आ गये। घबराओ नहीं, ख़ुदा पर नज़रे हक़ीक़त रक्खो, वो मुसब्बिर असबाब है। कोई सबब मिलाने का निकालेगा। बिरजीस क़दर का खयाल रखना। रक़ियाबानो को दुआ।

बदकिस्मत—अख़तर

* * *

[शैदा बेगम का खत जानेआलम के नाम]

ऐ शाहँशाह शहरे हुस्नोजमाल, मांहेताबाने औज फ़ज़्ले कमाल, गुलशादाब गुलशन ख़ूबी, सर्वेआजादे बागे महबूबी! हक़ सदा मेहरबाँ रहे तुम पर। और अली की अमां रहे तुम पर। दर्दे जिगर से काम तमाम हुआ, मरना अंजाम हुआ। गिरिय़ा शोआरी है, आदत आहोजारी है। वहशत समाई, जुनू की भी चढ़ाई, दिल को इज्तराब है, जिगर कबाब है। न चश्मे ख्वाब है न दिल को ताब है।

तपे जुदाई से अब इस तरह नज़ार हूं मैं।
नज़र में खल्क की रश्के खते ग़ुबार हूं मैं॥

कभी बुका है, कभी हँसी है, अजीब मुसीबत में तबीयत फंसी है। ग़मों अरम ख़ुराक है वहशत के जोर में गरेबाँ चाक है। गला है और खंजरे फ़िराक़ है। मरने की ख़ुशी से जीना शाक है।

बेताबिये दिल किसे सुनायें,
ये दीदयेतर किसे दिखायें।

जाने आलम, ख्वाब में भी नहीं आते। जबसे मालूम हुआ है कि क़िले में कयाम है दिल को बड़ी बेचैनी है।

एक वज़ा पर नहीं है ज़माने का तौर आह,
मालूम हो गया हमें लैलो नहार से।

यहाँ नये गुल खिलाये जा रहे हैं। हजरत महल, आपकी महबूबा, सरकार से जोड़-तोड़ करके बाग़ियों की सरदार बनी हैं। नवाब मुहम्मद अली खां के बहकाने में आ गई हैं। शोरापुश्ती दिखा रही हैं देखिये किस करवट ऊँट बैठे।

वो खुश होवें कि जिनको ताक़तें परवाज़ हैं।

* * *

[फ़रखन्दाँ महल का जानेआलम के नाम ख़त। १० रमज़ान सन् १२७३ हिजरी।]

पहले तो ख़ूं निकलता था अश्के सियाह से।
अब लख्ते दिल ही आते हैं आँखों की आह से॥

अक्से आईना, इखतिसासे नक्श, निगार खानये इखरास मल्लाहे दरियाये आशनाई दिलबरीं खास लहजये वफ़ा परवरी, महर गुस्तरी मादामे गौहर मुराद हमकनार बाद जाने आलम, तुम्हारा मुहब्बत नामा आया। पयामे उल्फ़त पाया। हाल नवाब ख़ास महल के चले आने का मालूम हुआ। तुम्हारा हाथ बाँध के समझाना मफ़ऊम हुआ। वे तो ऐसी बेवफा नहीं थीं। तुम पर हज़ार जान से फिदा थीं। अब बेसबब वो तुमको छोड़ती हैं बेवजह मुँह मोड़ती हैं। कुछ तो उन्होंने रंज पाया जो चला आना यहां का पसन्द किया। जो तुमने लिखा कि लानतुल्लराहे अला अहले हिन्दुस्तान (अहले हिन्दुस्तान पे लानत हो)। इस लिखने के वक्त तुम्हारा ध्यान था कि सकाने हिन्द कैसे कैसे और शहरों में लोग ऐसे ऐसे हैं। अलल् ख़ुसूस लखनऊ में किस किस तरह के दीनदार है। सदहा आलम आलिमो फ़ाज़िल और मुफ्ती व अबरार हैं। हरचन्द बदकार भी बेशुमार हैं लेकिन उनमें कुछ अक्लमंद है कुछ होशियार हैं। बक़ौल शख्से "न हर ज़न ज़न अस्त, न हर मर्द मर्द, ख़ुदा पंजे अंगुश्त यक सा न कर्द।" मगर इस मुक़ाम पर क़तये सादी ने कतये कलाम किया लिहाज़ा ये नामा इस पर तमाम किया।

चूअज़ क़ूमे यके बेदानिशी कर्द
नके राह मज़िलत बाशद न महरा।

नमी बीनी कि गाव दर अल्फ़ज़ार
बियाला यद हमा गामा दहे राह ॥

(अक्लमन्द को भुनगा भी दिखाई देता है । मगर तुमको दरवाज़े में आई हुई गाय भी नहीं दिखाई देती ।)

* * *

[सरफ़राज़ बेगम का ख़त जाने जां बेगम के नाम]

मजनूं का दिल हूँ महमिले लैला से हूँ जुदा
तनहा फिरूं दश्त में जो नारये बुका ।

दवाये दर्दमंदा व इत्तिहाद शफ़ाये मुस्तमिनदां हमेशा बा मुराद रहो । लखनऊ की हालत सुल्ताने आलम के बाद से तबाह व बरबाद हो रही है । नये नये फ़ितने उठ रहे हैं । लोग पागल हो रहे हैं । मुतवाहिश ख़बरें उड़ती हैं जिससे दिल हौल खाता है । देखिये क्या रंग फ़लक़ दिखाता है । लखनऊ में तिलंगों ने उधम मचा रक्खी है । यों समझिये फ़ैजाबाद से मौलवी अहमद उल्ला शाह ने आकर लूट-मार कम की है और जगह-जगह अपने चौकी पहरे बिठा दिये हैं । बहुत से सरफिरे इनके ख़ैरख़ाह साथ हैं । उधर सुल्ताने आलम के ख़ैरख्वाह ये चाहते हैं कि इनका तख़्त ख़ाली न रहे । मिर्ज़ादार-उस-सितवत को बादशाह बनाने की तजवीज़ है । तीन रात नज़राना तलब किया था मगर दार-उस-सितवत कहने लगे कि नवाब शुजा-उद्दौला अंगरेज़ों से मुक़ाबला न कर सके तो हम क्या कर सकते हैं । राजा जवाहर सिंह ख़ल्फ़ दर्शन सिंह नवाब ख़ासमहल की ड्योढ़ी पर आकर कहने लगे कि मिर्ज़ा नौशेरवांक़द्र को मसनद नशीं रियासत कर दें । शमशेरुद्दौला दारोग़ा ने कहा वो लड़का सब तरह माज़ूर है और नवाब ख़ासमहल और बादशाह की मंज़ूरी बग़ैर ये काम कैसे हो सकता है ? महमूद ख़ां और शेख़ अहमदहुसैन ने राजा मानसिंह और जवाहर सिंह से मिर्ज़ा बिरजीस क़दर के वास्ते कहा तो उसने जवाब दिया, फ़ौज को मंज़ूर है मगर बेगमाते महल शाही राज़ी हों तो अलबत्ता मुमकिन है । इस वक्त महमूद ख़ां राजा को अपने साथ लाये । पीर वाजदअली को बुलाया, सब बेगमात जमा हुईं । बाज़ ने कहा कि वाजिद अली शाह के होते हुये किसी को बादशाह न बनाओ, ये शगूने बद है । सरफ़राज बेगम भी ये सुन रही थीं । बाज़ बोलीं कि सुल्ताने आलम का बेटा उनके सामने तख़्त पर बैठ रहा है और बाप को तख़्तोताज दिलाने का सामान कर रहा है । हज़रत महल ने सबसे हाथ जोड़ कर कहा, ये लड़का तुम्हारा है जैसा तुम मुनासिब ख़याल करो, वैसा करो ।

नवाब खुर्द महल ने अज़राह फ़रासत कहा कि अगर हम तुम्हारे राज़ी नामे पर मुहर कर दें, कलकत्ते में अँग्रेज़ नवाब वाजिद अली शाह को मार डालें तो क्या हो ? तब राजा रुख़सत होके चला गया। हज़रत महल मायूस हुई मगर महमूद खां के तिल तलवों को लगी हुई थीं। उसने हज़रत महल से फ़ौज के सरदारों को ख़त लिखवा दिये। १२ ज़ीकात बरोज़ यकशम्बा १२७३ इत्तिफ़ाकन पानी शिद्दत से बरस रहा था। राजा मय अफ़सरान फ़ौज कसरुलखां में आकर बैठे। मिर्ज़ा रमज़ान अली खां अलमुरक़िब मिर्ज़ा बिरजीसक़दर तामज़ाम सवारी हुज़ूरे आलम पर सवार आये, और सिन जलूस जन्नत आरामगाह पर आके बैठे। किसी ने कहा कि छोटा है, किसी ने कहा कि ऐशो इशरत में पला है फिर गाफ़िल न हो जाये। आख़िरकार शहाबुद्दीन और सैयद बरकात अहमद १५ रिसाले के रिसालदार ने उठकर मुन्दीर मिर्ज़ा बिरजीसकद्र के सर पर रख दी। मुबारक बाद दी गई। अफ़सरान ने तलवारों की नज्र दिखाई। जहांगीर बख़्श सूबेदार ने तोपख़ाना फ़ैज़ाबाद से २१ तोप की सलामी सर की। शहर में एक गुरगुरये मसनद नशीनी हुआ। गर्मी की शिद्दत थी, मिर्ज़ा बिरजीसकदर दाख़िले महल हुए। घमण्डी सिंह सूबेदार कलमाते ला-तायल बकता रहा। नायबे दीवान हिसाम-उद्दौला को बनाना चाहा, मगर वो रज़ामन्द न हुए। शाहंशाह महल ने मुफ्ताहु-द्दौला से कहा, वो भी तैयार न हुए, तो नवाब शरफ़ुद्दौला मुहम्मद इब्राहीम खाँ की तजवीज़ हुई। मम्मू खां बिगड़ बैठे। फिर सफ़ाई हो गई। जनाबे आलिया को ११ अशर्फ़ी नजरे अक़ीदत दी गई। नवाब हिसामुद्दौला ने उठकर बेगमसाहबा के हाथ में रख दी। सैयद बरक़ात अहमद कासिम जान ने इनकी तारीफ़ की। बिरजीस कद्र ने दूसरे दिन ख़िलअत नायाबत इनायत किया। ख़िलअत दीवानी महाराजा बालकृष्ण को अदा किया। तीसरा ख़िलअत कोतवाली मिर्ज़ा अली रजा बेग, चौथा मीर यावर हुसैन मुहतमिमरविन्द को, पाँचवां ख़िलअत जनरैली-हिसामु-द्दीन बहादुर को, फिर तमाम ने मिर्ज़ा बिरजीसक़द्र और हज़रत महल को और शाहंशाह महल को नज़रे दीं। दारोगा दीवाने ख़ास मम्मू खां, अली मोहम्मद ख़ां बहादुर रवाना हुये। मुंशी कचहरी ख़ास अमीर हैदर, दारोगा ड्योढ़ियात मीर वाजद अली, अख़बारे मुल्की मुहम्मद हसन ख़ां दामाद नवाब शरफ़ुद्दौला को दिया गया। जनरल हिसामुद्दौला को हुक्म भरती १३ पलटन नजीब का हुआ। और अँगरेज़ों से लड़ाई शुरू कर दी। बेलीगारद पर हमला कर दिया जहां अँगरेज जमा थे। मौलवी अहमदुल्ला शाह ने बड़ी बहादुरी की। बेलीगारद के फाटक तक

पहुँच गये। मगर कोई और साथी उनके साथ न था। बेचारे ज़ख्मी होकर लौट आये। मैं महलात से उठकर शहर में आ गई हूँ। ये मेरा ख़त जाने आलम तक पहुँचा देना। वो क़िले में नज़रबन्द हैं। मेरे नाम भी ख़त आया था जो बमुश्किल मिला।

* * *

[यास्मीन महल का ख़त बनाम जाने आलम]

क्या लिखूं ओ बुते बेरहम तेरी दूरी से,
कौन सा दिन था कि मैं दीदये गिरियां न हुआ।

जौहरे तेग़नाज़ो नियाज़ क़तरये सब्ज़ ग़मज़ओ अंदाज़ हमेशा गुलशन खूबी शादाब। जाने आलम, एक साल हो गया, सब चहीतों को नवाज़ा, मुझ निगोड़ी को कभी भूल के भी पुर्ज़ये काग़ज़ से न किया खुश अफ़जा। यहां दिन रात आतिशे फ़िराक़ में घुल रही हूँ। वहां बेखबरी वो हैं जो जान रही हूँ।

आतश भरी हुई है मेरे जिस्मेज़ार में।
पारे का है खवास दिले बेकरार में॥

हम हैं और गमें दिलदार है सीना है और आहे शररबार है। महलात में बिरजीस क़दर को देख लेती हूँ, दिल शाद कर लेती हूँ। तुम्हारी फबन इसमें पूरी है। सूरत भी बाप की सी गोरी है। अल्लाह हज़रत महल की कोख को ठंडी रक्खे। मुझपर वह मिहरबान है मुझको भी वह प्यारा दिलोजान है। कल उसकी ११वीं सालगिरह थी, यह तो सुन ही लिया होगा कि वह तख्तनशीं है। तमाम लोग उसके फ़िदाकार हैं। शब में रक्सो पुरन् की महफ़िल थी एक तवायफ़ ने ग़ज़ल पढ़ी, एक शेर याद है

ग़ैरते महताब है बिरजीस क़दर।
गौहरे नायाब है बिरजीस कदर॥

खुदा नज़रेबद से लाड़ले को बचाये, दुश्मन का मुँह काला हो जाये। सुनते हैं मौसमे खिज़ां जा चुका है अब बहार आई है। बुलबुलों ने गुलिस्तां में खुशी मचाई है। अपनी तो हालत है कि हूँ बुलबुले तस्वीर—परवाज़ की ताकत नहीं और यासे चमन है। जाने आलम अपनी खैरियत से इत्तिला कीजिये और सोजे महजूरी से निजात दीजिये।

मौत सी अब तो जीस्त है कि बहुत,
दर्दे दिल का इलाज कर देखा।

जीते जी मौत की सी लज्ज़त को,
खूब देखा कि तुम पे मर देखा।

* * *

[जाने आलम का ख़त सरफ़राज़ महल पंजवारी (पाँचवीं बीबी) के नाम ।]

शोलये बर्क दूरी नाइरें नार महजूरी आतिशे हुस्न दो बाला हो। जियो।

वह कौन है जो मुझ पे तअस्सुफ़ नहीं करता,
पर मेरा जिगर देख कि मैं उफ़ नहीं करता।

यहां का हाल क्या लिखूं ? दिल बेक़रार है। सीना फ़र्तेनाले से रश्के रूबाब है। लखनऊ से मेरे साथ ५०० आदमी आये थे। मोचीखोला में मुकीम हैं। वली अहद बहादुर की माँ मलकये ख़ास महल, जनरल की वालिदा मलकये मुल्क आली जनाब ताजुन्निसां बेगम, तीसरा महल महबूबा ख़ास मल्कये आशिक-नुमा जानेजां बेगम हैं। ये आजकल बीमार हैं। ख़ुदा इसको शफ़ा दे। महल चहरुंम बड़ी बेगम आशिके सुल्तान मुमताजे आलम क़ैसर बेगम न मनकूला थीं न ममतूआ बल्कि सिर्फ दोस्ती में चली आई थीं। उसने खर्च को माँगा। ११ हज़ार रुपये दिये वो रुपये पाते ही कलकत्ते से चल दी। पंजुम ख़स्तामहल, शिशुम ममतूआ ज़ाफ़री बेगम अजीब चुलबुली तबीयत नाज़ुक मिजाज, खिल-दंड़ी, चंचल, जंगजू, तुंदखू, तेगज़बान, दरिश्त कलाम हमको क़िले विलियम में अक्सर गिलौरियां भेज दिया करती थी। वह ऐसी महबूब थी कि एकदम हमारी नज़र से जुदा न होती थी। अब महीनों से उसके फ़िराक में तड़पता हूँ। उनके गम में दिल पानी-पानी हो गया। गुंचये दिल कुम्हला गया। दिल हजार सम्हाले नहीं सम्हलता। सबा भी हम क़ैदियों की पैगामबरी नहीं करती। हर तरफ़ पहरा है। दो रफ़ीक़ हैं, एक खौफ़ दूसरा हिरास। एक कैदखाने में हम पड़े हुए हैं चारों तरफ़ हिरासत है। हमारे साथ १२ आदमी मुसीबत झेल रहे हैं। हर एक अपने दीन से बेजार है क़ैद गम में गिरफ्तार है। भिश्ती व खाकरू आते हैं, उनके साथ एक एक अंग्रेज़ भी आता है। मजाल क्या है जो मुँह से बोल सकें। क़ैदख़ाने की कोठी बहुत वसीह है, मगर अपने किस काम की ? हर वक्त दरवाजा बन्द, गरमी से दिल तंग परेशान हालते तबा हूँ। जब दरवाजे खुलते हैं तो धूप की शिद्दत से जान बेजार होती है। कई मर्तबा लाट साहब को भी शिकायती खुतूत भेजे मगर किसी का जवाब नहीं आया। तुम ख़ुदा का शुक्र करो, आजाद हो। अपनी नींद सोती हो, कोई पूंछने वाला नहीं। शैदा बेगम का खत आया

उसका भी जवाब लिख दिया। उसको मिला भी होगा या नहीं

वो बुलबुले मरदूदे बहार और खिज़ां हूँ,
जिसका कि ठिकाना न चमन में न क़फ़स में।
किया है अख्तरे बे पर को उसने मक्र से क़ैद,
कहीं भी होता है ऐसा शिकार का असलूब ?

* * *

[सरफ़राज़ बेगम का खत बनाम अख्तर महल]

मलिका मुल्के खूबी, पुश्ते पनाह विलायते महबूबी, अकामुल्लाह जमालहा व इक़बालहा। मेरी मल्कये आलम रफ़ीक़े सुल्ताने आलम, मैं लखनऊ के वाक़याते हालतेज़ार जाने आलम के वास्ते लिख रही हूँ। यहां का हाल दिगरदूँ है। देखा नहीं जाता। बुरा शगुन है। एक दिन मशहूर हुआ कि कल या परसों फ़ौज बेलीगारद पर धावा करेगी। साहबाने महसूर को ज़ेरे तेग़ करेगी और वहां की जमीन को खोद कर बराबर कर देगी। ये खबर गोशज़द साहबाते महल हुई। आपस में कहने लगीं कि जिस वक्त यहां सबको क़त्ल किया तो जितने कलकत्ते में हैं उनकी जान काहे को रहेगी। एक ने कहा कि हम तुम ही न बचेंगे, इस वास्ते कि फिरंगियों का जाल मिस्ल घास की जड़ के है, जितना काटो उतना ही बढ़ती है। गरज़ कि नवाब फ़ख्र महल, बंदियेजां नवाब सुलेमान महल, नवाब शिकवा महल, नवाब फ़रखन्दामहल, यास्मीनमहल महबूबमहल और कई महल जमा होकर हजरतमहल से कहने लगीं और नवाब खुर्दमहल और सुल्तानजहां इनकी शरीक थीं—कहा कि तुम सब तरह अच्छी रहो। तुम्हारा बेटा बादशाह हुआ मुबारक हो। मगर हम सब बेवारिस हुये जाते हैं। कल फ़ौज का ये इरादा सुना है अब तुम्हीं इंसाफ करो, फिर बादशाह और महलात वगैरह जो कलकत्ते में हैं जिन्दा बचेंगे या सब फांसी दे दिये जायेंगे। तुम ऐसी सल्तनत को चूल्हे में डालो। जनाबे आलिया ने बरहम होकर जवाब दिया, मालूम हुआ तुम सब हमारा बुरा चाहती हो, बल्कि इस सल्तनत के होने से जलती हो। गरज कि जनाबे आलिया बिरजीसकदर को लेकर अन्दर दालान में चली गईं। ये खबर अफ़सरों को लग गई। मुफ्ताहुद्दौला वगैरह हजरत-महल के पास आये और कहा कि महलात जो फ़िरंगियों से मिली हुई हैं उन्हें निकाल बाहर कर दो। तब बेगम बोलीं सब्र से काम लो। दूसरे दिन बेलीगारद पर हमला करने चले मगर पहले शहर पर हाथ साफ़ किया, लूटमार की। बिरजीसक़द्र ने खुद घोड़े पर बैठ कर तिलंगों को बुलवा कर कहा 'बहादुरों हम तुमसे बहुत खुश हुए,

खूब लड़ते हो, मगर अफ़सोस ये है कि तुम शहर को लूटते हुये सब रिआया से बददुआ लेते हो।' सब अफ़सरों ने दस्तबस्ता अर्ज की कि जनाब अब शहर न लुटेगा। और देहली सफ़ीर रवाना किया कि हुजूर बादशाह से सनद मसनद नशीनी ली जाय। मैं नहीं समझती थी कि हजरतमहल ऐसी आफ़त की परकाला है, खुद हाथी पर बैठ कर तिलंगों के आगे-आगे फ़िरंगियों से मुकाबिला करती है। आंख का पानी ढल गया है और इसको हिरास मुतलक नहीं है। गरज़ ये कि आलमबाग पर बड़ा मुकाबला रहा। अहमदुल्ला शाह से भी हज़रतमहल ने मुलाक़ात की। हरदू ने बड़ी जाफिशानी दिखाई मगर किस्मत को क्या कीजिये। २२ दिसंबर सन् ५७ का रोज था, फिरंगी सरदार जनरल औटरम और जनरल हैवलाक मुकाबिल थे। ४०,००० फ़ौज यहां जमा थी। पानी बड़े ज़ोर का बरसा। तारीगी हो गई, पर फिरंगियों की तोप ने और भी गोले बरसाये। तिलंगे पलटे, मम्मूख़ां और अशरफुद्दौला ने हट कर नाका चारबाग़ लिया। राजा मानसिंह ने बड़ी बहादुरी दिखाई। नौ हज़ार जमीयतं से ऐसा मुकाबिला किया कि फिरंगियों के छक्के छूट गये। शाम हो गई थी, जनावे आलिया ने राजा मान-सिंह बहादुर को जाफिशानी व जांबाजी पर ख़िताबे फ़रजन्दी दिया। ख़िलअत दुशाला, रूमाल और मलबूते ख़ास दुपट्टा इनायत किया और बहादुरी की बहुत तारीफ की। मगर ये सब तदबीरें उलटी रहीं। आखिर हमको शिकस्त उठानी पड़ी। कानपुर से नानाराव पेशवा आया। देहली से जनरल बख्त ख़ां रुहेला ये रिश्तेदार मलकये खास का है। शाहजादा फीरोज़शाह आये। अहमद रज़ा ने बड़ी बहादुरी दिखाई। फिरंगियों ने जान तोड़ कर तिलंगों को पस्पा किया।

कैसर बाग़ के महलात पर गोले बारूद गिरे। बेगमात भागीं। बड़ी इफ़रात फरी थी। खुदा वो दिन दुश्मन को भी न दिखाये—पा बरहना सरासीमां परेशां हाल दामन बड़े पायचों के अपनी पतली कमरों से बाँधे हुये पानदान और बेशबहा कीमत यानी एशिया साथ लिये भागती फिरती थीं। जनावे आलिया सरासीमा परेशान पा-पियादा मय साहबाते महल और शागिर्द पेशाग़ोल औरात मुलाज़मीन बाग के कोठों पर से घसियारी मन्डी के फाटक से बाहर निकलीं और हल्क़ये औरात सफ़ेबस्ता उनके बीच बिरजीस क़दर एक सैयद की गोद में कंधे से चिमटे हुये और गालीचा चाँदनी रफ़्ये एहतिमाल को डाले हुये। जिसने रास्ते में काफ़ि-लिये नामूसे शाही को देखा बेइख्तियार पीटने और रोने लगा। ये इनक़लाब का जमाना था। बहरहाल गलियों में गिरती पड़ती टीलेशाह पीर जलील से गुजर के

पुल मौलवीगंज में जवाहर अली खां के यहाँ पहुँची । वहां से पीनस में सवार होकर गुलाम रज़ा खां के घर उतरीं, फिर शरफ़ुद्दौला के यहां गईं । रात को शाह ज़ी के मकान में ठहरीं । जनरल औटरम ने कहला भेजा : तुम अपने महल में आराम से रहो । हम बाग़ियों को निकाल कर तुम्हारा एहतिराम करेंगे । हज़रत महल ने मुसीबत उठा कर हिम्मत न हारी । २९ रजब को करीब शाम मय बिरजीस क़दर के पीनस में सवार होकर नाका आलमबाग़ की तरफ़ से मय मम्मू ख़ां, घोड़े पर सवार लखनऊ से रवाना हो गईं । रास्ते में राजा मर्दन सिंह ज़मींदार तुमरदी से पेश आया । मौलवी अमादुद्दीन देवी उर्फ मौलवी मुहम्मद नाज़िम बिसवांने बाड़ी तीन कोस से इस्तकबाल जनाबे आलिया के वास्ते आये । बड़ी धूम और नक्कारा और निशान जलूस सवार से मिर्जा बंदा अलीबेग के इमाम बाड़े में उतारा । राह में फुक़रा के दो हज़ार रुपये खैरात किये । जब दाखिलये शहर हुईं तोपें सलामी की चलीं । वहां से मशविरा हुआ कि बरेली (?) को चलें । चुनांचे ये काफ़िला आगे को रवाना हो गया । मेरी छोकरी यास्मीन साथ थी । वह लौट आई । और उसने सब हाल कहा जो जाने आलम को सुनाने के लिये तुमको लिख रही हूँ । अब यहां फिरंगियों का मामला मौलवी अहमदुल्ला शाह से हो रहा है । देखिये क्या अंजाम हो ? मैं भी अपनी भांजी के यहां खैराबाद जा रही हूँ । देखूं ये ख़त मेरा पहुँचता है या नहीं । मुफ़ताहुद्दौला के आदमी के हाथ भेजती हूँ वो यहां से भाग कर कलकत्ते जा रहा है ।

* * *

[शैदा बेगम का ख़त बनाम जाने आलम, सफ़र १२७४ हिजरी ।]

आपके जाने के एक साल के बाद वह वह बलवाए आम हुये, वह वह मुसीबतें आईं जो ख़ुदा दुश्मन को भी नसीब न करे । हज़रत महल ने ऐसी बहादुरी दिखाई कि दुश्मन के मुँह फिर फिर गये, बड़ी जीदार औरत निकली, सुल्ताने आलम का नाम कर दिया कि जिसकी औरत ऐसी जो मरदानावार मुक़ाबला कर सकती है तो मर्द कैसा बहादुर और शुजा होगा, जब ही खौफ़ से हुज़ूर को आँखों आँखों में रक्खा । नवाब सरफ़राज़ महल ने मुफस्सल हालात लिख भेजे हैं तकरार लाहासिल है । जाने आलम फ़िरंगियों ने बड़ी बेदर्दी से हज़रत बाग़ पर गोले बरसाये हैं। महलात के साथ मैं भी जान बचा कर भागी, सब सामान हजरत बाग़ में छुट गया, और जो कुछ बचा था वह सब मुसाफ़िरत में लुट गया । अब सरेदस्त यह हाल पहुँचा है कि जब किसी से नहीं कर्ज़ा बहम पहुँचता है तो

नौबत फ़ाकाकशी की आती है। देखिये किस्मत क्या दिखाती है। खुदा के वास्ते जिस सूरत बने हमको अपने पास बुलाओ और अगर नहीं तो जिस तरह होगा मैं खुद, चली आऊँगी। यह सदमा कहाँ तक उठाऊँगी। ऐ जाने आलम, हाल मेरी वाल्दैन की गुरबत का तुम पर हुवेदा है, न वसीक़ा है न वज़ीफ़ा। मैं ही उनकी मदद कर देती हूँ।

* * *

[हूर बेगम का जाने आलम के नाम खत, दोम ज़ीक़ाद १२७३ हिजरी।]

हाल गर्दिशे लैलो नहार से बहुत परेशान है, लबों पर जान है। जब से सब महलात के साथ निकलीं शाहजादी को लिये लिये नंगे पाँव चली, रास्ते में सब से मुफ़ारक़त हुई। बदुशवारिये तमाम सआदत गंज पहुँचने की नौबत हुई वहां बड़ी तलाश से एक मकान खाली पाया। उसमें दो दिन की बसर। तीसरे दिन वखौफ़े जानों ग्राबरू वहां से सफ़र। गर्ज़े कि यूँ एक दिन कहीं रही और दो दिन कहीं रही। इस ग्रावारगी में ताकत जीने की भी नहीं रही। आसनाये राह में कभी खाना मिला और कभी फ़ाक़ा हुग्रा। एक दम भी न रंजो अलम से इफ़ाक़ा हुग्रा। ग्राखिर को उफ्तां वा खेजां इफ़ाका हुआ हर क़रियो क़सबे में फिरती हुई अपने घर मआली खां की सरा में आई। शाहज़ादी रहीम ग्रारा बेगम बीमार हुई, हमारी हालते दिलज़ार हुई, वह सदमा फिर किस मुँह से बयान करूँ कि राहते जान हमारी रमजान में कज़ा कर गई। खुदा शाहिद है कि मैं जीते जी मर गई। अब तक जब उसकी सूरत याद आती है, टुकड़े छाती हो जाती है, ऐ जाने आलम खुदा व रसूल गवाह है सबसे ज्यादा मेरी हालत तबाह है। खाने पीने को हैरान हूँ। घर तक जाता रहा, बेमकान हूँ। हर घड़ी सदमा सहती हूँ। इस वक्त हमारा कोई पुरसाने हाल नहीं। किसी को हमारा ख्याल नहीं, हमको तबाह देख कर सबने मुँह मोड़ा।

* * *

[पिया जाने ग्रालम के नाम नवाब फ़खमहल का खत रमज़ान १२७४ हिजरी]

..........................हर एक मकान वीरान है, कालों ने ऊधम मचाई है, गोरों ने मात खाई है। दो चार दिन में देखिये क्या हो.........................?

* * *

[राक़िम जान ग्रालम अख्तर का खत बनाम नवाब निशात महल साहिबा।]

..........……फ़रंगियों की बे एतनाई हद से ज्यादा है। मेरे हालात जो साहिबाते महल तक पहुँचे होंगे, मसाय बर्क तफ़सील उससे हवेदा है।

हैफ़ समझा है न वह क़ातिले नादां वरना ।
बेगुनह मारने के क़ाबिल यह गुनहगार न था ।।

* * *

[बनाम जाने आलम मेहरुन्निसां खानम का खत ।]

.........................लखनऊ पर खुदाई कहर नमूदार हुआ, हम सब का अजीब हाल हुआ, आतिश बारी से की खानावीरानी, हर कस था मुब्तलाये हैरानी । गैर जगह का रुख करके वतन छोड़ा, बजब्रो इक़राह घर से मुँह मोड़ा । बहाले तबाहो खस्ततो खराब कानपुर पहुँचे । बादिले मुज्तरब बेताब नावकिफ़ों ने अजराहे करम बैठने को जगह दी । मैने अपना किस्सए कुलफ़त सुनाया, हरएक का जी भर भर आया । जब कि उन्हें यह मालूम हुआ कि बादशाहे अवध की दीगर कनीज़ों में से एक क़नीज़ होने का शर्फ़ रखती हूँ तो सबने आँखों पर बिठाया— ।

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

२९८३२
D ९३९ JJ